ओ३म्

अहमदी युक्तियों

का

खण्डन

अर्थात्

पं० लेखराम जी आर्य पथिक कृत

तकज़ीब बुराहीन अहमदिया का

हिन्दी भाषान्तर

लक्ष्मण आर्योपदेशक

आर्य्य साहित्य पुस्तकालय देहली के लिये

मूल्य १॥)



विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव
यद्भद्रं तन्न आसुव । यजु० अ० ३० । मं० ३

हे सत्यविज्ञानमय, हे नित्य आनन्द स्वरूप, अनन्त सामर्थ्ययुक्त, आनन्द व दयामय, विज्ञान विद्याप्रद परमेश्वर आप समस्त संसार और सब विद्या के प्रकाश करने वाले हो, और सब आनन्दों के दाता, सर्व जगत् उत्पादक हो, हमें दुष्कर्मों, दुश्चिन्ताओं से पृथक करके सब सुखों से युक्त भद्र कल्याण को प्राप्त कीजिये, आपकी कृपा से ही सब विघ्नों का नाश होता है, ऐसी सहायता दीजिये कि हम पूर्ण उद्योग से सत्य के प्रकाश में तत्पर हों।

परमात्मा ने मनुष्य को इस असार संसार में कर्म करने में स्वतन्त्र बना कर स्वाधीनता से सुशोभित किया, पर साथ ही दूरदर्शी बुद्धि भी प्रदान की मानो मनुष्यों को उपदेश दिया कि स्वाधीनता तुम्हारे ईश्वर आज्ञापालन के नियम में ही सीमित रहने वाली है अर्थात् ईश्वर भक्ति तुम्हारे मनोरथ सिद्धि के द्वार की ताली है, मनुष्यत्व की सीमा से बाहिर स्वतन्त्रता का फल केवल अशान्ति है और वास्तव में वह स्वतन्त्रता नहीं किन्तु आवागमन की भ्रान्ति है।

परम दयालुता और महानकृपालुता से परमात्माने सृष्टि की आदिमें मनुष्य मात्र की शिक्षा और पूर्ण शान्ति के लिये अपने प्रकाशमय ज्ञान को श्री अग्नि, श्री वायु, श्री आदित्य, श्री अंगिरा जी महात्माओं के आत्माओं में प्रकाशित किया, वही ज्ञान ४ वेद के नाम से आज तक जगत का पथ-प्रदर्शक है उस सर्वज्ञ परमात्मा की ओर से अत्यावश्यक था कि मानव जाति की आवश्यकताओं के लिये सच्ची भक्ति का मार्ग दिखाने वाले पूर्ण ज्ञान का प्रकाश करता। अतः उस सर्वान्तर्यामी ने अपने अनन्त विद्या के कोष से हम पर अमृत वर्षाया और पवित्र वेदों का दर्शन दिखाया।

जानले हक़ (१) की अगर पहिचान है। वेद हर इक दर्द का दरमान (२) है
वेद अक़दस (३) राज़दाने (४) गैब है। वे निशाँ का महरमे लारेब (५) है
रास्ती जुज़ वेद के नापेद (६) है। वेद क्या है रूह का बस वैद्य है
जो शक़ी (७) महरूम (८) होवे वेद से। दूर है वोह दौलते जावेद (९) से

जिन दिनों पवित्र वेदों का सूर्य्य हमारी अविद्या रूपी मेघ से आच्छादित हो गया था और हिन्द का जहाज़ सफलता के किनारे से दूर हो चला था तब परमात्मा ने प्राणप्रद वायु भेज कर परम दयालुता का परिचय दिया अर्थात्

(१) सत्य (२) औषधि (३) पवित्र (४) गुप्त भेदों का जानने वाला (५) निस्संदेह जान कार (६) गुप्त (७) दुष्ट (८) शून्य (९) नित्य।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को उत्साहित किया जिनके जगत पुरुषार्थ से हमें वैदिक सूर्य्य की किरणों से प्रकाश मिला और थोड़े ही दिनों में भूली भटकी नौका को सफलता का तट दिखाई दिया और नौका वालों को अपने गये दिन फिर आने की आशा लगी, इस सारे परिवर्तन का कारण संक्षिप्त रूप से यही है कि चिरकाल से आर्य्यावर्त रूपी जहाज के कप्तान विषय भोग में पड़ कर अपने कर्त्तव्य पालन को भूल गये थे और उस सच्चे राजाधिराज से जो शिक्षायें तथा आज्ञायें मिली थीं स्वार्थ और प्रमाद से उन्हें लोभ के रूमालों में बांध कर छिपा रखा था ज्योंही स्वामी जी ने सत्य की धर्म ध्वजा को उठाया और पवित्र वेद का व्याख्यान सुनाया, अविद्या का फरेरा थरथराया, मूर्खता के भंवर को चक्कर आया।

चो सीतश दर अफ़वाहे दुनिया फिताद। तज़लज़ल दर अकवामे जोहला फिताद।
कुरानी किरानी पुरानी तमाम। फितादन्द हर यक ज़ि बुनयादे खाम।
नियावर्द बोहतां अर्जा सिदक़ ताब। बले साया बिगुरेज़द अज़ आफताब।
बसा पंडितो मौलवी पादरी। बनाहक़ शमातत शुदा मुफ्तरी।
वलेकिन ब माह हरके तुफ़ अफ़गनद। हमाना हमां तुफ़ वरूयश फ़ितद।
न लग़ज़द सदाक़त ज़ि अफ़्सूं गरी। चि बाकस्त हक रा वई काफरी।
कसाने कि खुद शप्पराह तीनत अंद। ज़ि खुरशैद महरूम दर ज़ुलमत अंद।
बिया ऐ तलबगारे सिदको सफा। खुदारा बगुलज़ारे मानी दराआ।
ब चश्में खिरदवेदे अकदस बिबीं। मुनव्वर शौ अज़ नूरे दुनियाओ दीं।

(जब जगतान्दोलन में उसका सिंहनाद पहुंचा तो मूर्खों के समुदायों में हल चल मच गई। कुरानी, किरानी, पुरानी सबकी कच्ची बुनियाद गिर गई। असत्य उस सत्य के सामने ठहर नहीं सका क्योंकि छाया सूर्य्य से भागता है। बहुतसे प्रसिद्ध पंडित, मौलवी, पादरी अन्याय करके शत्रुता करने लगे मगर चाँद पर जो थूकता है निश्चय वही थूक उसके मुंह पर गिरता है। सच्चाई धोके या जादूगरी से डोलती नहीं, सत्य को इस अधर्म से क्या भय। जो लोग स्वयं चिमगादड़ के स्वभाव वाले हैं वोह सूर्य के प्रकाश से वंचित और अंधकार में हैं। हे सत्य और पवित्रताके अभिलाषी! आ, और ईश्वर के लिये सत्यार्थ की पुष्प वाटिका में पहुंच, बुद्धि के नेत्र से पवित्र वेद को देख और लोक परलोक के प्रकाश से प्रकाशित हो।



पुस्तक रचना का कारण

आज कल हम शास्त्रार्थों के मैदान में उतारू होरहे हैं और अविद्या काल के विपरीत अब हमें धर्म युद्ध का ज्ञान है इसलिये अन्य मतावलम्बियों की पुस्तकें पढ़ने का अवकाश मिलता है। इन दिनों एक पुस्तक **'बुराहीनुल अहमदिया'** (जिसके लेखक मिरज़ा गुलाम अहमद साहिब कादियां जिला गुरदासपुर के निवासी हैं) को हमने पढ़ा, अन्य अभिमान युक्त बातों के अतिरिक्त इसका लेखक उत्तरदाता को १०००० रुपये पारितोषिक देने की प्रतिज्ञा करता है और निर्धन होने पर भी अपने मन और मस्तिष्क में चीफ आफ कादियां (Chief of Kadiyan) अर्थात् रईसी व सर्दारी के भरे हुये घमण्ड पर मरता है, पाठक वृन्द! जिस प्रकार दूर के ढोल सुहावने होते हैं और सब सुथरे शाह जी कहलाते हैं वही हाल हमारे बड़े रईस का है, सारी सम्पत्ति केवल खयाली पुलाव और सारी मिलकियत निपट मन का अलाव है, जब इतनी भी मनकूला और ग़ैर मनकूला जायदाद विद्यमान नहीं तो "वल्लाह आलम खैरुल माकरीन" (खुदा जाने जो मकर करने वालों में बड़ा है) इस विज्ञापन से हजरत का अभिप्राय क्या है। सत्य है "इन्ना कैदू क़ादियाने अज़ीम" निश्चय कादियानियों का मकर बड़ा है। **बुराहीनुल अहमदिया** के लेखक ने रुपया कमाने का निराला ढंग निकाला है और ८ वर्ष का समय अनेक प्रकार के छल छिद्र और होले हवाले में टाला है इस पुस्तक में कहीं ब्रह्मो धर्म वालों से गाली गलोज हो रही है किसी जगह ईसाइयों को कोस रहे हैं किसी जगह मसीह को अल्लाह का नालायक बेटा बना रहे हैं, किसी जगह आर्यों को बुरा भला बता रहे हैं मुझे यहाँ और किसी से प्रयोजन नहीं और न किसी का मैं प्रतिनिधि हूं। हाँ आर्य्य धर्म को मानता हूं और वेदोक्त सिद्धान्तों पर प्राण न्यौछावर होने तक को अहोभाग्य जानता हूं। अतः मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि **बुराहीनुल अहमदिया** (अहमदी युक्तियों) को न्याय तुला पर तोलूं और उनकी परीक्षा करूं।

खुश बुवद गर महके तजरुबा आयद बमियां,
ता सियह रूये शवद हरके दुरोग़श बाशद

(अच्छा हो कि परीक्षा की कसौटी लाई जावे ताकि जिसका झूंठ सिद्ध हो उसका मुंह काला हो।)

विज्ञापन की सत्यता की पड़ताल

पहिले भाग में मिरज़ा साहिब ने व्यर्थ के दिखावे तथा धन कमाने के हेतु बड़े अक्षरों में एक विज्ञापन पूरे ८२ पृष्ठों पर लिखा है जिससे मिथ्या बड़ाई के अतिरिक्त कोई परिणाम नहीं निकल सकता। विज्ञापन में इतनी अत्युक्ति होना

सिद्ध करता है कि "तबले तही रा ख्वद बांगे दूर" (खाली तबले की आवाज़ दूर जाती है) न्यायशील सज्जन जानते हैं कि आडम्बर रचना पर मरना सत्य का मर्द्दन करना है। एक बुद्धिमान का कथन है कि "मुश्क आनस्त कि खुद बिबोयद न कि अत्तार बिगोयद" (मुश्क वह है जो स्वयंमेव सुगन्धि दे न कि अत्तार कहे) अभिप्राय आपका इन गप शप से केवल यही है कि किसी प्रकार रुपया हाथ आय और सांसारिक सुख प्राप्त हो जाय पर मिरज़ा साहिब को यह ध्यान नहीं है कि—

कलीदे दरे दोज़ख अस्त आं नमाज़। कि बर रूये आलम गुज़ारी दराज़॥

(वह लम्बी नमाज़ नर्क के द्वारकी नाली है जो तू दुनियां को दिखाकर पढ़ता है) इन चालबाजियों पर चाहे कोई मूर्ख लट्टू हो जावे और सत्य से हाथ उठावे पर बुद्धिमान इन हथकण्डों को सर्वथा घृणित मानते हैं और विद्वान इन धोकों को भले प्रकार जानते हैं, अविद्या का प्रवाह अब नहीं रहा, विद्या ने नेत्र खोल दिये हैं, मोहम्मद व ईसा के मोजजे अब मानने के योग्य नहीं रहे। मदारीपन (शोबदा बाज़ी) रोता है क्योंकि इसके प्रेमी नहीं रहे।

ज़माना बसाते नौ आईं निहाद। शुदां मुर्ग को खाया जर्रीं निहाद॥

(समय के फेर से नये ही नियम चल पड़े वह चिड़िया जाती रही जो सोने का अण्डा देती थी)

इस प्रकार के दाव घात में जातीय सहायता करना व्यर्थ है और अयुक्त लम्बी गप्पों से कुरान की रक्षा होना कठिन है क्योंकि हदीस में कहा गया है

'सतफ़तरको उम्मती अलासलासा व सबईनं फिरकातिन कुल्लहुम फिलनार इल्ला वाहिदू तिन'

(अर्थात् जितने सम्प्रदाय मुसलमानों के हैं सब नर्ककी अग्निमें जलेंगे और भाग्यहीन होने के कारण शोक करते हुये हाथ मलेंगे, पर एक सम्प्रदाय जन्नती कहलायेगा और मोक्ष पावेगा) इस पर और आश्चर्य यह है कि सुन्नी लोग शय्यां और शय्या सुन्नीका परस्परमें खाका उड़ा रहे हैं और मज़हबीजोशमें आकर रुधिर बहा रहे हैं प्रत्येक अपने सम्प्रदाय को स्वर्गीय और औरों को नारकीय जानता है और इसी कुरान से असत्य के सागर में भटकता हुआ अपने मत को सत्य मानता है जब कि 'वल्ला आलम बिल सवाव' (खुदा जाने जो सवाव वाला है) सभी नारकीय हैं और अविद्या व दुर्गति में पड़े हुये द्वेषाग्नि में जल भुन कर कबाब हो रहे हैं और मूर्खता के भंवर में घबराये हुये सोच विचार को खो रहे हैं गिलमान की भ्रकुटी की कटार से मानो सिर कटे पक्षी हैं और हूरों के नेत्रों के संकेतों पर जीजान से मोहित हैं किसी ने क्या ही सच कहा है कि

ज़ाहिद को कौन कहता है यह हक़परस्त (१) है,
हूरों पे मर रहा है यह शहवत (२) परस्त है,

मुझे सत्य असत्य के निर्णय होने का पारितोषक दरकार है न कि

(१) ईश्वर उपासक (२) व्यभिचारी

विज्ञापन वाला दस हज़ार क्योंकि ऐसे पारितोषिक छल रूपसे केवल प्रतिज्ञा मात्र और दिखलाने के होते हैं न कि देने और दिलाने के। यदि उत्तर युक्त हो तो निष्पक्ष पुरुष स्वीकार करें अन्यथा उनकी इच्छा।

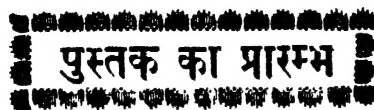
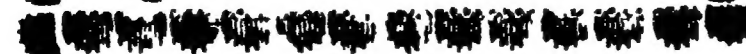
ऐशे दुनियाय दूं दमे चन्दस्त। जां ब ऐशे जहां न खुरसन्दस्त।
गर फरेबी व मकरे खुद आलम। गोयेदत खल्क कों हुनरमन्दस्त॥
पीर गश्ती ओ पा ब ज़ंजीरी। दिल ब इसियानो लब ब सौगन्दस्त।
हरज़मां वस्ले नौ हमे ख्वाही। बा तो ईं खास रमज़े दिल बन्दस्त॥
मू सिया कर्दी अज़ रहे तलबीस। आखिरत कार बाखुदावन्दस्त।
लान्तुल्ला ब माकरीं गोयन्द। कुनहज़र गर दिलत ब ईं पन्दस्त॥
बर रसूलां बलाग़ बाशदोबस। बिशनवद आंके रास्त पैवन्दस्त।

(इस असार संसार का सुख थोड़े समय के लिये है आत्मा जगत के भोगों से प्रसन्न नहीं। यदि तू अपने छल से मनुष्यों को धोका देवे तो जनता तुझे कहेगी कि यह बड़ा चतुर है। बूढ़ा होगया और पैर बेड़ियोंमें है। मनमें पाप है और वाणी से सौगन्द खाता है। हर समय तू नये से नया ही भोग चाहता है यह तेरी विशेष मन प्रिय चेष्टा है। केशों को तूने छल से काला कर लिया परन्तु अन्त में ईश्वर से ही तेरा वास्ता पड़ना है। छली पुरुषों पर परमेश्वर की धिक्कार कही जाती है यदि तेरा मन इस शिक्षा को श्रवण करता है तो छलछिद्र से बच। यह संदेश केवल ईश्वर के प्यारों परही भेजा जाता है इसे वह सुनता है जिसे सत्य का प्रेम है)

मुझे व्यर्थ की बात बढ़ाने से कोई प्रयोजन नहीं न व्यर्थ की प्रतिज्ञा से, सत्य से ही मुझे प्रेम है और असत्य से घृणा, अतः मिरज़ा साहिब की युक्तियों का दोष क्रमशः दिखाऊंगा और उनका झूठ अकाट्य युक्तियों से बताऊंगा। तलवार के दीन और प्यार के धर्म की तुलना करके न्याय तुला में रख कर जाति के लिये ऐनक और दूरबीन बनाऊंगा और अत्याचार व द्वेष को प्रेम और चाह के सम्मुख लाकर सत्यप्रिय बुद्धि से उसकी उत्तमता का प्रमाण चाहूंगा।

सत्यमेव जयते नानृतम्

असत्य चाहे कितना भी जोर शोर दिखावे अथवा दुहाई और वावेला मचावे अन्त में सत्य की ही जय होगी और असत्य की क्षय, परमात्मन्! सत्य का प्रकाश करो और असत्य का नाश।

पुस्तक का प्रारम्भ

बुराहीन अहमदिया के लेखक का आक्षेप

(पृष्ठ ८३ हाशिया १ जिलद २)

यह (आर्य्य) एक नया फिरका है जो हिन्दुओं में पैदा हुआ है

जो अपनी मजहबी मजलिस को आर्य्य समाज से मौसूम करते हैं इन दिनों में सरपरस्त बल्कि बानी मुबानी इस फिरके के एक पंडित साहिब हैं जिन का नाम दयानन्द है और इस वजह से हम इस फिरके को नया फिरका कहते हैं कि वो आम असूल जिनका यह फिरका पाबन्द है और वो तमाम खयालात तावीलात कि वेद की निस्बत इस फिरके ने पैदा किये हैं वह बहैसिअत मजमूई किसी कदीमी हिन्दू मजहब में नहीं पाये जाते, और न किसी वेद भाष्य और न किसी शास्त्र में इकजाई तौर पर उनका पता मिलता है बल्कि मिनजुमला जखीरा मुतफर्रिक खयालात के कुछ तो पंडित दयानन्द साहिब के अपने दिल के बुखारात हैं और कुछ ऐसे बेजा तसरुफात हैं कि किसी जगह से सिर और किसी जगह से टांग ली गई है, गर्ज़ इस किस्म की कारसाजियों से इस फिरके का कालिब तैयार किया गया है।

(उत्तर) विदित हो कि आक्षेप करनेसे पूर्व विपक्षियों की पुस्तकों का अध्ययन करना परमावश्यक होता है पर यह वादी ने नहीं किया। साथ ही इतिहास से भी सर्वथा अनभिज्ञ प्रतीत होता है, हजरत! आप को कहां से ज्ञात हुआ कि आर्य्य एक नवीन सम्प्रदाय है क्या साधारण मूर्खों की भांति आपको भी सत्य से परे हटना आवश्यक था। कोई वेदज्ञ पंडित आर्य धर्म को नवीन सम्प्रदाय नहीं कहता, परंच जगत् निवासी एक स्वर होकर कहते हैं कि आर्य धर्म सब से प्राचीन और श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम है, उसके समस्त सिद्धान्त प्राचीन ऋषियों और मुनियों की प्रबल युक्तियों तथा प्रमाणों से सिद्ध होते हैं।

पवित्र वेद—जो पुस्तकों की माता है आर्य धर्म उसी का सार है, आर्यों के सब नियमों का प्रमाण वेद से मिलता है और वो सर्व तंत्र सिद्धान्तों के सहित व्याख्या रूप में विद्यमान हैं। अब यहां पर सिद्ध करना उचित है कि आर्य धर्म वास्तव में नवीन सम्प्रदाय है या नहीं और हिन्दू प्राचीन हैं या नवीन? प्रथम तो स्वयं वेद के विषय में ही विचार कीजियें, कुरान, अंजील, जबूर, तौरेत और वेद, कौनसी नवीन पुस्तक है और कौन प्राचीन, किस में ज्ञान की शिक्षा और गूढ़ अर्थ है और किस में भिन्न २ प्रकार के किस्से कहानियों की काट छांट का अनर्थ है।

नौशेरवां बादशाह के समय अरब में आप के पैगम्बर साहब उत्पन्न हुये थे जिनका नाम मोहम्मद है और जब संसार के ऊंच नीच देखते और व्यापार के लेन देन में लाभ व हानि भरते उनकी आयु ४० वर्ष की हुई तब पुरानी मूर्ती पूजा से मन घबड़ाया और इसी घबराहट में कुरान का ध्यान आया जिस को आजकल समय १३०३ वर्ष का व्यतीत हो रहा है मानों १३०३ वर्ष से मोहम्मदी धर्म और कुरान है जिसकी सत्यता पर आपको इतना अभिमान है। १८८६ वर्ष से अंजील है जो मसीह की शिक्षापर दलील है अर्थात् १८८६ वर्ष से ईसाई मत चला है जो आप के दीन से ५८३ वर्ष बड़ा है। दाऊद से पूर्व जबूर न थी और मूसा से पूर्व तौरेत का अभाव था, जरदश्त से पूर्व खुदा का रसूल था और पारसियों के कथनानुसार खुदा तक

पहुंचा हुआ और उसका मक़बूल (प्यारा) था, उसकी नबूव्वत (पैगम्बरी) को अनेक यवन विद्वान भी स्वीकार करतेहैं और उसकी सच्चाई, सत्यता तथा मोजिजों (सृष्टि नियम विरुद्ध काम) के वर्णन का विस्तार। फाजल शहरोजी, अल्लामा शीराजी अल्लामा दवानी, मीर सदरुद्दीन आदि उनमें से विशेष व्यक्तियां हैं और उनकी पुस्तकों में इस विषय की साक्षियां, ३२०० वर्ष से पूर्व मूसा का निशान न था ४०७० वर्ष से पूर्व जरदस्त की ज़िन्दावस्था विद्यमान न थी, राजा युधिष्ठिर की राजगद्दी पर बैठने का सम्बत ४६२८ वर्ष से वर्तमान है और गयासुल्लुगात की रदीफ 'फ़' से वह शब्द आपकी शिक्षा का प्रमाण "विदाँकि पेश तर दर हिन्दियां, सम्बते राजा युधिष्ठिर रिवाज दाश्त। राजा मजकूर निज़देपर्शां, दरआग़ाजे कलजुगे हाल बूदा। व तमा ा जहान रा ज़र कुशादा, व ता ईं जमान अज़ सम्बते अयालते ओ चहार हज़ार व नो सद य विस्त व हश्त साल गुजश्ता" (विदित रहे कि पूर्व काल में हिन्दियों में राजा युधिष्ठिर का सम्बत प्रचलित था यह लोग मानते थे कि वह राजा इस कलियुग के आरम्भ में हुआ, उसनेभूमण्डल में अधिकार पाया, और उसके राजतिलक के समय से इस समय तक ४६२८ वर्ष व्यतीत हुये हैं)।

आजतक जंत्रियांमें भी यह लिखाजाता है और हमारी सत्यता और प्राचीनता का प्रमाण दिलाता है, इससे अधिक यह कि नूह की बाढ़ और युधिष्ठिर के राज्यतिलक का सम्वत् एक ही है जिससे पक्षपाती विपक्षियों का मन अत्यन्त दुःखी है और उस रदीफ (फ़) ने भी हमारे ही पक्ष की पुष्टि कराई है, जो विपक्षी की जान के वास्ते चारों ओर से आपत्ति लाई हैं "तारीखे तूफान सरे आग़ाज़ अज़ हादिसाए तूफान गोरन्द, साले शमसी हकीकी व माहे कुमरी इबतिदाय साल अज हमल गोरन्द—ताईं साल चहार हज़ार व नोसद व विस्त व हश्त साल गुज़श्ता॥ (तूफान की तारीख़ तूफान की दुर्घटना के आरम्भ से लेते हैं शमसी हकीकी साल और कुमरी मास का आरम्भ गर्भ से गिनते हैं। अब तक ४६२८ वर्ष व्यतीत हुये हैं) पारसियों की धर्म पुस्तक अर्थात जिन्दावस्था में जरदश्त पैगम्बर बतलाता है कि यही हुकम जो मैंने तुमको बतलाये हैं यज़दान अर्थात् खुदा ने मेरे से बहुत पहिले वेद में नाज़िल फरमाये हैं और अब आपके लिये मुझे पहुंचाये हैं जिस से कि मैं तुम को सुनाऊं और सन्मार्ग पर लाऊं। उसी उस्ताव जन्द के अन्तिम दसातीर में लिखा है कि व्यास नामक ब्राह्मन हिन्दुस्तान से आया और जरदश्त से वादाविवाद करके कुछ बातें पूछीं। पारसियों के यज़दान ने जरदश्त को व्यासजी के सन्मुख उत्तर में योग्य न जानकर व्यास जी के विषय में कहा कि:—

ब्राह्मने व्यास नाम अज़ हिन्द आयद, बमदाना कि बरजमीने हिन्द कम कस चुनों बूदा। दर दिल दारद कि न बुदा अज़ ा पुरसद, कि यज़दान चिरा-कुनिन्दा व कर्द, गर नज़दीक हस्त दर हमह हस्ती गिरिफ्तगां, यानी एज़द तआला कि बरहमंह चीज़ कादिरअस्त अकूल राचिरा वसायते वजूदे मौजूदात गरदानोद, व खुद बेवास्ता दीगर अज़ बहरवि आफरीद। बिगो ओरा कि

यज़दान कुनिन्दा वा साज़िन्दाए हमह चीजहास्त, बाईं दर फिरो वारे हस्ती बर फरिश्ता सालार व सरवशीद दीगर इकरारे दरमियान नेस्त, व दीगरां रा इकरारहास्त याने वास्ता हस्त।

(व्यास नाम ब्राह्मण हिन्द से आता है बहुत बुद्धिमान ऐसा कि हिन्द में कम ही ऐसे पुरुष होंगे, उसके मनमें है कि पहिले वो तुझसे पूछे कि यज़दान ने क्यों और किस लिये बनाया यदि वो सब प्राणीमात्र में व्यापक है अर्थात् यज़द तआला ने जो सर्व शक्तिमान है क्यों १० फरिश्तों को पदार्थों की उत्पत्ति का साधन बनाया और आप दूसरे हर एक पदार्थ से जो उसने पैदा किया निरलेप रहा, उसे कहो, यज़दान सब वस्तुओं के रचने व बनाने वाला है बावजूद इसके सालार और सरवशीद फरिश्ते पर मौजूदात का बोझ डालने में कोई दूसरा दरमियान में नहीं है और औरों का बहुतों से ताल्लुक है। सारांश यह है कि यह बात क्या इतिहास व क्या सिद्धान्त सर्व प्रकार से सिद्ध है कि संसार की सब पुस्तकों में वेद पुराने हैं, और वेद की प्राचीनता को वेदानुयायी तथा वेद विरोधी दोनों मानते हैं।

"तेरह सौ सालों से यह फ़ुरक़ान है, वेद के आगे वो अबजदख़ान (१) है।"

अब ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र से विदित होता है कि वेद के अनुसार हमारा नाम आर्य्य है न कि कुछ और।

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।

ऋ० मंडल १ सू० ५१ मं० ८॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि 'हे जीव तू आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ और दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभाव युक्त डाकू आदि नामों से प्रसिद्ध मनुष्यों के दो भेद जानले, और सत्यका आचरण कर और असत्य से बच।' सृष्टि की आदि में जगत उद्धारक परमात्मा की ओर से ईश्वरीय न्याय के द्वारा बहुत उचित प्रकारसे दर्शाया गया, कि श्रेष्ठ और दुष्ट केवल अच्छे और बुरे कर्मों में हैं न कि किसी प्रकार के शारीरिक भेद के कारण क्योंकि, वेदोंमें सिवाय एक आर्य धर्मके वर्णनके और किसी मत का खंडन व निषेध नहीं है, इससे यहभी स्पष्ट विदित होता है कि उस समय भूमंडलपर कोई मत न था, हाँ परमात्मा सर्व शक्तिमान ने अपनी सर्वज्ञता से सत्य की पूर्ण रूप से व्याख्या करके अकाट्य युक्तियों और प्रवल प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है उसके विपरीत सर्व प्रकार के असत्य से सावधान रहो, और सत्य के अमृतसरोवर के द्वारा मन की कृषि को आन्तरीय शुद्धता से सींचो।

सजातू भर्माश्रद्दधान ओजः पुरोविभिन्दन्न चरद्वि दासीः।
विद्वान वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्य्यं सहो वर्धया द्युम्न मिन्द्र। ऋ० १, १०३, ३

परमेश्वर आदेश करते हैं कि सेना के स्वामी सांसारिक पदार्थों के धारण करने वाले विद्वान को चाहिये कि देश को रक्षा और बचाव के लिये दस्यु अर्थात् दुष्ट मनुष्यों को जो बस्तियों में विनाश करते हुये विचरते हैं, अत्यन्त

(१) अ, ब, पढ़ने वाला-नव सिखुआ

दंड देने के कारण सुख के बढ़ाने वाले या शान्ति को स्थापित करने वाले वज्रशस्त्र को पराक्रम से प्रयोग में लावें अर्थात् श्रेष्ठों के बल व धन की वृद्धि करें।

यह मंत्र राजनीति विद्या सम्बन्धी है। भावार्थ इसका यही है कि "राजा को देश के प्रबन्ध में धर्मात्मा और अपने काम में प्रीति करने वाले की सहायता करनी व दुष्टों को दंड और श्रेष्ठों को पारितोषिक देना चाहिये"। चारों वेदों में अनेक स्थानों पर आर्य्य शब्द पाया जाता है। परन्तु बुद्धिमान् के लिये यह दोनों प्रमाण पर्य्याप्त हैं यह सिद्ध करने के लिये कि वेद के मानने वाले तथा वेदोक्त धर्म वाले का नाम आर्य्य है। हठधर्म और पक्षपात से तो वेद सर्वथा रहित है और मिथ्या कल्पनाओं तथा तूफान सम्बन्धी गाथावों से शून्य। अब इसी को मनुस्मृति से भी सिद्ध करता हूं और फिर प्रचलित इतिहास से भी साक्षी दिलवाऊंगा। मनुस्मृति के अध्याय २ श्लोक १६ से २१ में इस पर विचार किया गया है।

> सरस्वती दृषद्वत्यो देव नद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते (१६) तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्य्य क्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां, स सदाचार उच्यते (१७) कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः, एष ब्रह्मर्षि देशो वै, ब्रह्मावर्तादनन्तरः (१८) एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्व मानवाः (१९) हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्य देशः प्रकीर्तितः (२०) आसमुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः (२१)

महाराज मनुजी आदेश करते हैं कि सरस्वती और दृशद्वती जो कि दो देवताओं की नदियां हैं उनके मध्य के देश को ब्रह्मावर्त देश कहते हैं॥ १६॥

इस आर्य्यावर्त की पवित्र भूमि के सब निवासी अपने धर्म कर्मको अर्थात् व्यावहारिक और पारमार्थिक रीति नीति को ब्राह्मणों अर्थात् वेदज्ञों से प्राप्त करें (१७) आर्य्यावर्त के समीप मत्स्य, पांचाल और सूरसेनादि निकटवर्तीय जो प्रान्त हैं वे ब्रह्म ऋषियों के हैं। इस कारण इन प्रान्तों को जनता पवित्र देश जानती है॥ १८॥ सब वर्णों और आश्रमों का व्यवहार इस देश में प्राचीन काल से प्रचलित है (मनुजी कहते हैं कि) भूमंडल भरके सब मनुष्य इस देश के ब्रह्मवेत्ताओंसे विद्या प्राप्त करें और * यहांके ब्रह्मवेत्ता भिन्न २ देशों में जाकर सत्य धर्म और विद्या का प्रचार करें॥ १९॥

---

*सृष्टि के आदि से युधिष्ठिर के समय तक इसी आर्य्यावर्त के निवासी विद्याओं में सब प्रकार से कुशल होते रहे और बड़े २ हकीम इसी के शिष्य होने से प्रसिद्ध हुये। नौशेरवाँ का मंत्री बुज़ुर्गमेहर यहीं की राज नीति से ही अपूर्व विद्वान् कहलाया और उसी पर आचरण करने से नौशेरवांने 'आदिल' नाम पाया, जिस पुस्तकसे अनवार सहेली लिखी गई है वह अब तक संस्कृत में मौजूद है जिसका नाम पंच तंत्र प्रसिद्ध है फीसागोरस या

हिमाचल और विंध्याचल के मध्य और मत्स्य से पूर्व तथा प्रयाग से पश्चिम में जो देश स्थित हैं उनको मध्यदेश कहते है ॥ २० ॥

पूर्वीय महासागर से पश्चिमीय महासागर तक और हिमालय और विंध्याचल के बीच में जो देश हैं वे प्रायः आर्य्यावर्त कहलाते हैं॥२१॥ आर्य्यावर्त दो शब्दों से बना है, एक आर्य्य दूसरा आवर्त अर्थात् आर्य्यों के निवास का स्थान या आर्य्यों के रहने की जगह। आर्य्य जाति के लक्षण मनुजी ने इस प्रकार किये हैं

कर्तव्यमाचरन् कामाः अकर्तव्य मना चरन्
तिष्ठति प्रकृत्वा चारे असावार्य्य इति स्मृतः॥

"अर्थात् कर्तव्य कर्मों का करना और अकर्तव्य को न करना जिस का स्वभाविक गुण है वह आर्य्य है"।

वर्तमान भूगोलके ज्ञाता यदि तनिक ध्यानसे देखें तो स्पष्टतया जान लेवेंगे कि उस समय की सीमाबन्दी से इस समय की सीमाबन्दी का अधिक अन्तर नहीं है। मनुजी अपनी स्मृति में अनेक स्थानों पर आर्य्यावर्त और आर्य्यजाति दोनों का वर्णन करते हैं। वे महात्मा स्वयं आर्य्य होने पर गर्व करते हैं यद्यपि अन्य स्मृतियां अर्थात् सांसारिक नियमावलियां मनुजी के पश्चात् लिखी गई हैं परन्तु सब एक स्वर होकर आर्यधर्म और आर्यसंतान होनेको स्वीकार करतीहैं।

रहस्य

एक विद्वान से किसी ने प्रश्न किया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कहते हैं कि यह देश आर्य्यावर्त है और यहां के निवासी आर्य्य हैं। मुसलमानादि कहते हैं कि देश हिन्दुस्तान और निवासी इसके हिन्दू हैं जिस के अर्थ चोर व लुटेरा व ग़ुलाम के हैं। वास्तविक आशय इसका क्या है? और यथार्थ कौनसा है? और किस प्रकार कहना चाहिये? उसने उत्तर दिया कि भाई जब तक विद्या

पथियागोरस (यह शब्द 'पथ गुरु' का अपभ्रंश है) जिसे यवनाचार्य भी कहते हैं। यहां की फिलासफी से कृतकार्य्य हुआ, और कई वर्ष यहांके पंडितों का शिष्य होकर दार्शनिक विषयों में प्रवीण कहलाया। यही यवनाचार्य्य आवागमन की पुस्तकों का पहिला अनुवादक है और इसी महान पुरुष के द्वारा यूनान, इटली, मिश्र आदि की ओर इस पवित्र सिद्धांत की शिक्षा पहुंची। यही वह हकीम है जिसके मरने के बहुत काल पीछे उसके शिष्यों के शिष्य अफलातून हकीम ने गणित; फिलासफी, न्याय तथा आवागमन की शिक्षा के सिद्धांत सीखे और स्वयं भी आर्य्यावर्तमें आने का संकल्प किया पर कारण विशेष से मार्ग से ही लौटगया और यह कामना उसके मनमें रही। सार यह है कि उपदेश की यह शृंखला जैमिनी जी के समय तक जारी रही, जैसा कि व्यास जी के स्वयं पाताल (अमेरिका) हिरोडोस (योरुप) चीन, जापान, ईरान आदि देशों में जाने का वृत्त भारत के प्रत्येक इतिहासवेत्ता पर प्रकट हो सकता है। जैमिनी जी महाराज भी एक दो बार वेद धर्म के उपदेश के लिये यूनान, मिश्र, ईरान आदि की ओर गये और लोगों की अनेक शंकाओं का समाधान करते गये। जहाज़ चलाने की विद्या में भी पुराने आर्य लोग अत्यन्त निपुण होते थे। और व्यापारके लिये यहां के व्यापारी दूर देशों में जाते थे। रेखागणित विद्या भी इस देश से पहिले चीन में गई और वहाँ से मिश्र, यूनान में इसका प्रचार हुआ।

का प्रचार, आविष्कारों की उन्नति, सत्यधर्म की ओर रुचि, वेदानुकूल आचरण, मिथ्या भ्रमजाल से छुटकारा, एक परमेश्वर की पूजा प्रचलित रही, मनुष्य कर्म कांडी विद्वान् बिना पक्षपात के पढ़ने पढ़ाने वाले रहे तब तक यह देश आर्य्यावर्त और यहां के निवासी आर्य्य या आर्ज रहे। परन्तु जब से इन्हों ने दासता का जुआ पहिना, मूर्ती पूजा को ग्रहण किया, एक को त्याग अनेक मुर्दों व शहीदों के दास बन गये, सहस्रों लक्षों तथा करोड़ों के सन्मुख मस्तक झुकाने लगे, असली पुस्तकों पर नकली पुस्तकों और झूठी कथाओं अर्थात् वेदों से पुराणों को बढ़िया समझने लगे, तब से यहां के निवासी हिन्दू बन गये और देश हिंदुस्तान मुद्दई भी सच्चा, और मुद्दाअलय भी सच्चा है झूठा केवल काज़ी है।

आर्य्यों की प्राचीनता का ऐतिहासिक प्रमाण

अब इतिहास पर विचार करना चाहिये। लैथब्रृज साहिब की अङ्गरेजी तवारीख़ हिन्द [जो सन् १८८० ई० में प्रकाशित हुई,] के पृष्ठ १६ से २६ तक आर्य्यों का इतिहास संक्षिप्त रूप में लिखा गया है। आर्य्यों के मन्तव्य में वेद की पुस्तकें अत्यन्त पवित्र [प्रामाणिक] हैं, हिन्दुओं, फरंगियों तथा रूमियों के आदि पुरुषा आर्य थे। सार यह है कि आर्य्य जाति सरस्वती नदी तथा पंजाब की अन्य-नदियों के तटों पर कई सहस्र वर्ष तक निवास करती रहीं, उस समय में उनका शासन किसी राजा या किसी विशेष शासक के आधीन नहीं था, किन्तु प्रत्येक कुल का वृद्ध पुरुष ही अपने २ कुल का नेता हुआ करता था, और वही उस कुटुम्ब का पुरोहित भी होता था। आर्य्य पुरुषों को जब कभी आवश्यकता होती थी तो वे यहांके असभ्य (वहशी) निवासियों से लड़ा भिड़ा भी करते थे, आर्य्यलोग उनकी अपेक्षा बड़े शूरवीर थे, और शस्त्र भी अच्छे रखते और कवच भी लगाते थे, इस लिये अपने शत्रुओं पर विजय पाते थे। आर्य्य लोग दिन प्रति दिन संख्या में बढ़ते और सुख सम्पत्ति प्राप्त करते गये। अन्त मे यह हुआ कि जो प्रांत पंजाब से भी अधिक उपजाऊ और गंगा और उसकी सहायक नदियोंसे सींचा जाता है उसके विजय करने को उन्होंने कमर बांधी। अंत में शत्रुओं अर्थात् वहशी लोगों को भगाकर और अपनी सामूहिक शक्ति बढ़ा कर बड़े बलवान् होगये। आर्यलोग सरस्वती और ब्रह्म पुत्र नदी के मध्य वर्तीय प्रदेश को ब्रह्मर्षि देश और जो प्रान्त उसके पूर्व इलाहाबाद तक है उसको मध्य देश और समस्त देश को आर्य्यावर्त कहा करते थे। आर्य्यों के प्रतापी राजा रामचन्द्र ने दक्षिणी भारत, लंका द्वीप पर आक्रमण करके उस पर विजय पाई। आर्य्यों के विषय मे यूनानियों ने लिखा है कि एशिया के देशों में जितनी जातियों से हमको काम पड़ा उन में आर्य्य ही अधिक वीर थे। वे वचन के भी बड़े सच्चे थे। उन्हों ने उनके विषय में यह भी लिखा है कि वह मांस मदिरा का सेवन नहीं करते थे, मर्य्यादित, शांन्तिप्रिय

तथा सरल स्वभाव और धर्म भाव में प्रसिद्ध और न्यायालय में जाने के विरुद्ध थे।

भारत इतिहास के पृष्ठ ५६७ में लेखक लिखता है कि वेदों का मुख्य सिद्धान्त यह है कि ईश्वर एक है। अनेक स्थानों पर वेद में लिखा है कि वास्तव में केवल ईश्वर ही एक है जो सब से महान् और परम आत्मा और सारे लोकों का स्वामी है, उसी ने सारे लोकों को उत्पन्न किया है। ब्रह्मा, विष्णु, और शिव का बहुत कम वर्णन पाया जाता है और उनको कुछ महत्व नहीं दिया गया और न वे पूजा के योग्य समझे गये।

ऐतिहासज्ञ कोलब्रुक साहिब लिखते हैं कि मुझको वेदों में कोई ऐसा स्थान नहीं मिल सका जिससे इन तीनों का अवतार होना सिद्ध हो। ऋग्वेद के एक मन्त्र का अनुवाद भी (वेदोक्त एकेश्वर वाद के प्रमाण में) यह लेखक साक्षीके तौरपर प्रस्तुत करताहै कि परमात्मा पूर्ण सत्य और आनन्दस्वरूप है, वह अद्वितीय और नित्य है, वह ही यथार्थ रूपसे एक है। वाणी में इतनी शक्ति नहीं कि उसका वर्णन करे न बुद्धि में उसके ग्रहण करनेकी सामर्थ्य है, वह सब में प्रकट और सब का अधिपति है। अपनी अनन्त विद्या और असीम ज्ञान के कारण वह आनन्द स्वरूप है, देश और काल से रहित है, उसके पैर नहीं परन्तु अति वेग से चलता है, उसके हाथ नहीं परन्तु सारे ब्रह्मान्ड को धारण किये हुये हैं, बिना नेत्रों के वह सब वस्तुओं को देखता है, और बिना कानों के सुनता है सब का ज्ञाता है और किसी अन्य ज्ञान दाता की उपेक्षा नहीं करता, उत्पादक रक्षक, और सकल पदार्थों का प्रवर्तक (निर्माता) वही है।

उसी इतिहास के पृष्ठ ६१ पर आर्यों की साधारण अवस्था की यूनानियों से तुलना करके कहताहै। 'यदि उन दोनों जातियों के राज्य नियम, शासनशैली और साधारण सभ्यता तथा आचार व्यवहार और नियमबद्धता की तुलना की जावे तो विदित होता है कि आर्य लोग यूनानियों की अपेक्षा सभ्यता और शिक्षा में बहुत बढ़े हुये थे। आर्यों की राज्यनैतिक सभाएं यूनानियों की अपेक्षा अधिकसभ्य होती थीं और वे शत्रुओं से बहुत दयालुता का व्यवहार करते थे और सर्व प्रकार की विद्याओं में उनको अधिकयोग्यता प्राप्तथी और परमेश्वर के गुण,कर्म और स्वभाव के ज्ञान का प्रकाशभी उसी समय में उनको इतना प्राप्त हो गया था जितना ऐथन्स की उन्नति काल में भी वहां के बड़े से बड़े बुद्धिमान विचारकों को न हुआ था'।

लैथब्रज साहिबके भारत इतिहाससे यह भी विदित होताहै कि आर्य लोग प्राचीन काल से दार्शनिक ज्ञानके प्रेमी रहे, और दर्शन शास्त्र, गणित विद्या और पदार्थ विद्या के आदि गुरु भी यही हैं। छै भिन्न २ कालों में छै दर्शन उन्होंने रचे हैं:—(१) कपिल रचित सांख्य (२) पतंजलि कृत योग (३) गौतम रचित न्याय, (४) कनाद लिखित वैशेशिक (५) जैमिनी कृत मीमाँसा और (६) व्यास कृत वेदान्त।

उपरोक्त कथनानुसार प्रत्येक बुद्धिमान जान सकता है कि आर्य धर्म, आर्य जाति, और उनके ग्रन्थ सबसे प्राचोन हैं। क्योंकि यह साक्षियां हमारे पक्ष में अन्य जातियों की हैं। अतः न्याय होना चाहिये कि आर्यधर्म व आर्यजाति किस प्रतिष्ठा और महत्व के अधिकारी हैं।

अब हिन्दू शब्द के विषय में यह विचार करना अरुचिकर न होगा कि यह शब्द किस भाषा का हैं और किन पुस्तकों में लिखा गया है और कौन इसका प्रयोग करते हैं। संस्कृत कोष में तो हिन्दू शब्द का नाम मात्र भी नहीं हैं और न इसके कुछ अर्थ बन सकते हैं। वेदों के समय से लेकर राजा भोज के समय की लिखित पुस्तकों क्या गत १०० या ८० वर्ष के भीतर रची हुई पुस्तकों अर्थात् सत्यनारायण की कथा, व गणेशमहात्म्य के समय तक भी यह शब्द किसी संस्कृत पुस्तक में नहीं मिलता और फ़ारसी लुग़ात के देखने से इसके अर्थ चोर,काला आदि के पाये गये। देखो ग़यासुल ग़ात रदीफ़ (हे) "हिन्दु मनसूब व हिन्द, दरीं लफ्ज़ वाव बराये निस्बत अस्त व ईं निस्बत खुसूसियत ब जिन्स अक़्ल दारद व लफ्ज़ हिन्दू दर मुहावराये फ़ारसियां बमाने दुज़्द व रहज़न व ग़ुलाम में आयद, [अज़ ख़ियाबां] व हिन्दूजन ज़ने साहिरा रा गोयन्द (अज़ सिकन्दर नामा)[हिन्दू हिन्द शब्द से सम्बन्ध रखता हैं इसमें वाव सम्बन्ध के लिये हैं और यह सम्बन्ध विशेष रूप से मनुष्यों के लिये आता है और फ़ारसियों की परिपाटी में हिन्दू शब्द का अर्थ चोर, लुटेरे और दास है (ख़ियाबान) हिन्दू औरत जादूगर औरत को कहते हैं (सिकन्दरनामा)] फ़ारसी की पुस्तक ऐसी कोई विरली ही होगी जिसमें इस शब्द को बुरे अर्थों में प्रयोग न किया हो। गुलिस्तां से बदरचाच व दुर्रानादरी आदि तक प्रत्येक पुस्तक में इससे भी बुरे भाव मे इस का प्रयोग किया गया है। अतः अधिक अनुसन्धान करने और उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि एक ओर तो इस शब्द से ही सर्वथा इनकार है और दूसरी ओर का अर्थ निर्विवाद रूप से स्वीकार है, जिससे पूर्णतया सिद्ध है कि यह नाम हमारे लिये म्लेच्छ बादशाहों ने रखा था। आर्य्य के अर्थ श्रेष्ठ व नेक तथा आस्तिक और समाज के अर्थसभा, इन दोनों शब्दों की योजना से आर्य्य समाज के अर्थ हुए—वेदानुयायी, आस्तिकों वा श्रेष्ठों की सभा, जिस पर कोई दोष नहीं आसकता। अब विदित नहीं होता कि वह कौनसी बात है जो आर्यलोग वेद के विरुद्ध करते हैं। मेरे विचार में तो कोई ऐसा कार्य नहीं जिसके करनेकी आज्ञा वेदतो न देते हों, पर आर्यलोग धार्मिक रीति से उसे करते हों और विपक्षीने भी कोई बात नहीं बतलाई जिसका उत्तर देना हमारे ज़िम्मे होता। अतः युक्ति शून्य प्रतिज्ञा स्वयंवादी की हानिका कारण है जिसे विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्व वेद में प्रत्येक शारीरिक और आत्मिक विषय की उत्तमता से शिक्षा दी गई हैं जिसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं और न इस पर किसी प्रकार का आक्षेप हो सकता है। हां उनकी एक २ श्रुति सत्यप्रिय तथा जिज्ञासु मनुष्यों को कल्याण मार्ग दिखातीहैं। इन्हीं दोनों विषयों

का पूर्ण रूप से प्रकाश करना ईश्वरीय ज्ञान पर आधार रखता है और अधूरा तथा अपूर्ण न छोड़ना उसकी पूर्णता का प्रमाण और उसके महत्व का निशान है, शतपथ, ऐतरेय, सामविधान और गोपथ इन चारों ब्राह्मणों में (जो वेदों की व्याख्या हैं) भी विस्तार से आर्य धर्म का स्पष्टी करण किया गया है। छै दर्शनों में और दश उपनिषदों में भी इन्हीं सिद्धान्तों पर आर्यावर्त के विद्वानों के व्याख्यान हैं जो कि सत्य धर्म की सच्चाइयों के प्रमाण हैं।

वादी—यह बहैअत मजमूई किसी क़दीम हिन्दू मज़हबमें नहीं पाये जाते।

प्रतिवादी—हिन्दू धर्म की प्राचीनता के विषय में इसके अतिरिक्त मैं क्या कहूं।

यके बर सरे शाख़ो बुन में बुरीद। ख़ुदावन्दे बुस्तां निगह करदो दीद॥
बिगुफ़्ता कि ईं शख़्स बदमे कुनद। न बा मन व लेकिन ब ख़ुदमे कुनद॥

(कोई मनुष्य टहनी पर बैठा उसकी जड़ काट रहा था, उद्यान के स्वामी ने उसकी ओर देखा और कहा कि यह मनुष्य बुराई करता है मेरे साथ नहीं प्रत्युत अपने साथ करता है)

हज़रत! आपका प्रश्न सर्वथा असत्य ही नहीं केवल भ्रान्तिमात्र है

वादी—और न किसी वेद भाष्य तथा शास्त्र में एक स्थान पर उनका पता मिलता है।

प्रतिवादी—न जाने किसको पता नहीं मिलता, मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब इलहामी को या संस्कृत के विद्वान पंडितों को। यदि पहिली बात है तो हम इसे स्वीकार करते हैं और उसका उपाय योग्यता की अपेक्षा करता है। मिरज़ा साहिब संस्कृत से सर्वथा अनभिज्ञ और शून्य हैं अतः उनको वेद भाष्य और शास्त्रों से पता न मिलना सर्वथा उनकी अपनी भूल व दोष है और इस अवस्था में उनका आक्षेप करना सर्वथा अनुचित है। यदि दूसरी बात है तो वह केवल मूर्खता है। एक स्थान पर यदि पता न मिलता तो लाखों विद्वान् व पंडित क्यों एक निर्धन भिखारी संन्यासीके अनुयायी होते, और मौलवी मोहम्मद कासिम व सय्यद अबु मंसूर जैसे क्यों पश्चाताप करते हुये सिर धुनते और रोते। जिस मनुष्यने सच्चे दिल और गूढ़ दृष्टि से सत्य धर्म विचार (मेलाचांदापुर) और सत्यासत्य विवेक (शास्त्रार्थबरेली) और प्रश्नोत्तर (शास्त्रार्थ जालन्धर) तथा शास्त्रार्थ काशी इत्यादि शास्त्रार्थ स्वामी जी महाराज के देखे हैं वह स्वामीजी के सत्यभाषण और उनके व्याख्यानों के विद्वत्ता पूर्ण होने को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता। हम इस स्थान पर सत्य प्रिय पाठकों के लिये कुछ पंक्तियां उद्धृत करके प्रार्थना करते हैं कि वे इन्हें न्याय दृष्टि से अवलोकन करें।

शास्त्रार्थ चांदापुर से उद्धृत

विदित हो कि यह मेला केवल दो दिन रहा, मेला आरम्भ होने के पूर्व कुछ मौलवी साहिब स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के निवासस्थान पर पधारे और कहने लगे कि अच्छा हो यदि हिन्दू और मुसलमान मिलकर पादरियों के मत का खंडन करें। स्वामी जी ने कहा कि इस मेला में उचित प्रतीत होता है कि कोई किसी

का पक्षपात न करे, प्रत्युत मेरे विचार में तो यह अच्छी बात है कि हम और मौलवी और पादरी तीनों पक्ष मिलकर प्रेम से सत्य का निर्णय करें। किसी से विरुद्धता करनी उचित नहीं। बुद्धिमानों ने सत्य कहा है'—

बिनायकार बिनेहबर सबाबो एमिन बाश।
कि हर बिना कि बर अमजस्त पायदार बुवद॥
दर तरद्दुदे रहे नजात मदां। हेच खसलत बेअज़ सबात मदां॥
मैल दारी ब रफ़अते दरजात। दर मुशाना सबात वरज़ सबात।

(अपना काम सत्य के आधार पर कर और निश्चिन्त रह क्योंकि जो नींव यथार्थ पर है स्थिर रहतीहै। मोक्षमार्ग की खोजमें लगे हुये धृतिके स्वभाव से ज़्यादा अच्छा कोई स्वभाव नहीं। यदि तू उन्नति करना चाहता है तो सत्य पर स्थिर रह और सत्य को ही पसन्द कर।)

पाठक वृन्द! क्या ऐसे समयपर स्वामी जी का सचाई और सत्य धर्म पर दृढ़ रह कर कपट और छल में सम्मिलित न होना इस बात को सिद्ध नहीं करता कि सचाई के तत्व रस को पूर्ण मात्रासे उन्हें प्राप्त हो चुकी थी और असत्य से उनका मन सर्वथा घृणा करता था

मिरज़ा ने जितना भ्रम जाल का तूफान उठाया उसको नूह के तूफान से बढ़ा दिया और सत्य पूछो तो सत्य का ख़ून कर दिया।

वादीः-बल्कि मिनजुमला उन ज़खीरा मुतफ़र्रिक ख़यालातके कुछ तो पंडित दयानंद साहिब के अपने दिल के बुखारात हैं और कुछ ऐसे बेजा तसरुफ़ात हैं कि किसी जगह से सिर और किसी जगह से टांग ली गई हैं। ग़रज़ इस क़िस्म की कारसाज़ियों से इस फ़िरके का क़ालिब तय्यार किया गया है।

प्रतिवादी—मिरज़ा साहिब इस्लामी पक्षपात के बुखार निकालने से बाज़ नहीं रहते और इसी जोश में जो मुंह में आता है कहते हैं—हज़रत! घबराइये नहीं, यह पंडित जी के मन के बुखार नहीं हैं किन्तु सच्ची आज्ञायें और पवित्र वेद की शिक्षायें हैं। सत्य शास्त्र के आदेश हैं और विद्या सम्बन्धी गूढ़ विषयों के समावेश। उपाधि व्याधि से हम पूर्ण घृणा करते और भ्रम जाल से सर्वथा बचते हैं। व्यर्थ के हस्ताक्षेप का दोष लगाना और छल से कार्य्य सिद्धि करने का कलंक लगाना सूर्य्य को पट से छिपाना और चांद पर धूल उड़ाना है। परन्तु वास्तव में आपका किंचितमात्र भी दोष नहीं केवल अपने मत के पक्षपात का फितूर या इस्लाम का इलहामी नूर है जो आपको सत्य की ओर से रोकता है और असत्य के भंवर में झोंकता है, अतः उचित समझता हूं कि आप को इसका पूरा २ जवाब सुनाऊं और अनेक उद्धहरणों का सारा दफ्तर आपके सम्मुख लाऊं, लेख चुराना और मुर्गों का सिर और टांग उड़ाना किसी और का काम है न कि स्वामी जी का, ध्यान पूर्वक पढ़िये।

मूसा व इस्माइल, व इस्हाक, व इबराहीम व लूत व यूसफ व याकूब आदि के किस्सों को मूसा की तौरेत से लिया। दाऊद वा सुलेमान व अयूब आदि के वृत्तों को समवाईल और अयूब की पुस्तकों से कंठ किया, आदम व हव्वा और

शैतान के बहकाने को कथा को तालमुद से और मूसाकी उत्पत्ति की पुस्तक से चुरालिया। इबराहीमका मुर्तियोंका तोड़ना, और जिन्नों केकिस्से,फरिश्तोंका वर्णन कबर के प्रश्नोत्तर, जहन्नुम का सात भागों में विभक्त होना, कयामत के दिन हाथ पैर, जिह्वा आदि अङ्गों का बोलना और साक्षी दिलवाना, गुसल, और तहारत व तयम्मुम और रोज़ा खोलनेका वर्णन यह सब यहूदियों की हदीसों और तवातर से निकलवाया। यह सब बातें तालमूत व मीदारस व समा में वर्णित हैं, जो इस अंधकार को दूर करने के लिये एक प्रकार का प्रकाश युक्त दर्पण हैं।

ईसा का हिंडोले में बातें करना और बालन के मोज़ज़े जो आल उमरान मरियम और तहरीम की सूरतोंमें लिखे हैं और इसी प्रकार असहाब कहफ और रकीम का किस्सा जिन का सूरत कहफ़ में उल्लेख है वे मोहम्मदने ईसाइयों को हदीसोंसे लेकर कुरानमें लिखवालिया। इसका प्रमाण यह है कि इफराईम और अंजीले तफूलियत नामको पुस्तकों में विस्तृत रूप से कहे गये हैं। मीज़ान और पुलेसिरात की बातें पुराने आतिश परस्तों की गाथाओं से ली गई हैं और हैयद नामक पुस्तक से छांटा गया है। काबा और हज्जकी विधि (हज करने के नियम) पुराने कुरेशी और अरब के मूर्ति पूजकों से और बेतुलमुकद्दस की पूजा ईसाइयों और यहूदियों से चली। खिज़र का किस्सा जो कहफ में है वो भी यहूदियों की हदीसों का जोड़ तोड़ है। लुकमान और सिकन्दर के तर्क विरुद्ध किस्सों का यूनानियों के* इतिहासों से प्रकाश हुआ और कुछ सुनी सुनाई बातों पर आचरण किया गया और शेष निजु घरेलु बातें और नित्य प्रति के युद्ध तथा संग्रामों को भी अपने खयाल के अनुसार करके लेख में सजाया। सारांश यह कि भिन्न२ किस्सों कथाओं और बयानों को अपने घरेलू झगडोंसहित एकत्रित किया और कुछ अरबके मुहावरे के अनुसार काफ़िया मिलाकर अपने यात्रासम्बन्धी विचारों को भी साथ मिला दिया, मानों किइसी प्रकार "कहींकी ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा"। तनिक विचार पूर्वक देख और न्याय पूर्वक कह कि यह आक्षेप किस पर घट सकता है किसका ढांचा छल छिद्र से तयार किया गया है और कौनसी पुस्तक उस ज्योतिस्वरूप ईश्वर का ज्ञान है कौनसा मत भिन्न २ विचारों का भंडार है और कौन परमात्मा को अपार कृपाओं का।

* एक दार्शनिक कहता है:—हमको निश्चय है कि मूसाई व ईसाई व मुहम्मदी मतों की बुनियाद आतिश परस्तों के मत से कायम हुई है क्योंकि शैतान व जबराईल का अस्तित्व पारसियों से हुआ और वही उनको पुस्तकों में विद्यमान हैं। प्रमाण इसका पुस्तक सफरंग दसातीर से भले प्रकार मिल सकता है। पहिले हमारा विचार था कि पैगम्बरी की बुनियाद को मूसा ने कायम किया पर अब इन पुस्तकों से स्पष्ट होता है कि इस उपद्रव के मचाने वाले आतिश परस्त हैं या कोई इन आतिश परस्तों से भी पहिले होगा जिसका अनुकरण उन्होंने किया।

अब प्रत्येक बुद्धिमान् तथा न्याय प्रिय पुरुष जान सकता है कि इन किस्सों के एकत्रित करने के लिये कौनसे ईश्वरीय ज्ञान की दरकार है और किस नई बात का इन पुस्तकों से बढ़कर कुरान में आविष्कार है। यदि कोई बात ऐसी है जो इन पुस्तकों में अज्ञात है और कुरान में ललित और मधुर भाषा में विख्यात है तो वह अवश्य दिखाइये और कुरान का गौरव बढ़ाइये, अन्यथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी कुरान प्रामाणिक नहीं-उसके ईश्वरीय ज्ञान माने जाने का तो कहना ही क्या है।

वादी:—और पहिला उसूल इस फिर्के का यही है कि परमेश्वर रूहों और अजसाम का खालिक नहीं, बल्कि यह सब चीजें परमेश्वर की तरह कदीम और अनादि और अपने वजूद के आप ही परमेश्वर हैं।

प्रतिवादी:—आर्य्यसमाज का पहिला नियम यह नहीं है किन्तु कोई भी मनुष्य जिसे आर्य्यसमाज का किंचिन्मात्र भी ज्ञान है आप के कथन का अवश्य ही निषेध करेगा और आर्य्यसमाज के नियम देखकर आप को स्वयं ही लज्जित होना पड़ेगा कि ईश्वर कृपा से आप के आक्षेपों को बिस्मिल्ला ही गलत हुई। सच है धोखा देना इसी का नाम है और छल छिद्र में इतना प्रवीण होना आप का ही काम है। आर्य्यसमाज का पहिला नियम यह है:—

'सब सत्य विद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

कुफ़रस्त दर तरीकते मा कीना दाश्तन।
आईने मास्त सीना चो आईना दाश्तन।

(हमारे धर्म में मन में द्वेष रखना पाप है, हमारा व्यवहार यह है कि सीने को आईने (दर्पन) की तरह रखा जावे)। आर्यसमाज का वेदोक्त रीति से यह निश्चय है कि ईश्वर अनादि काल से सृष्टि रचता और पालन तथा प्रलय करता रहा है और इसी प्रकार करता रहेगा इसलिये कि उसके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं। ऋग्वेद में कहा है:—

सूर्य्या—चन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत। दिवंचपृथिवींश्चान्तरिक्षमथो स्वः। ऋ० अ० ८, अ० ८ व० ४८॥

परमेश्वर ने जैसे पूर्वकल्प में सूर्य्य, चन्द्र, विद्युत, पृथिवी अन्तरिक्ष आदि को बनाया, वैसे ही अब भी बनाया है और आगे भी वैसे ही बनावेगा। परमेश्वर के अनादि होने से अनादि काल से सारे जगत् को बनाना भी आवश्यक है, गुण, कर्म स्वभाव के अनादि होने से। अतः वेद का सिद्धान्त यह है कि परमात्मा अनादि काल से जगत का कर्त्ता है और सैंकड़ों मंत्र वेद में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में हैं कि परमेश्वर सदा से उसे उत्पन्न, धारण, और नाश (प्रलय) करता चला आया है और इसी प्रकार करता रहेगा क्योंकि वह सदा से उपरोक्त गुणों से युक्त है और उसी को आर्य लोग मानते हैं। पर मुहमदी लोगों की भांति उसे ५ सहस्र वर्ष से उत्पादक, पालक, स्वामी, न्यायकारी तथा सर्व-

शक्तिमान् नहीं मानते और न इतने काल से पूर्व उसे निकम्मा व अज्ञानी जानते हैं, क्योंकि यह मन्तव्य सर्वथा असत्य है और इस का मानने वाला सीधा नरक गामी होता है।

यहां आत्मा के अनादित्व पर कुछ युक्तियां लिखना भी आवश्यक प्रतीत होता है सो इस प्रकार हैं।

स्वयं सिद्ध सिद्धान्त

(१) जो वस्तु जहां होती है, वही वहां से निकलती है।
(२) जो वस्तु जहां नहीं होती वह वहां से निकलती भी नहीं।
(३) जो अवयवी में होता है वही उसके अवयव में होता है।
(४) जो अवयवी में नहीं उसका भाव अवयव में भी असम्भव है।
(५) यदि किसी नियत प्रमाण के समभाग किये जावें तो वह सब परस्पर में समान होंगे।
(६) यदि किसी नियत तोल या नाप से कई वस्तुयें एकसी तो ली जावें तो वह सब तोल में समान होगी।
(७) परस्पर विरुद्ध का मिलना असत्य है।
(८) अनादि पदार्थ के सब गुण अनादि होते हैं।
(९) गुण गुणी से पृथक् नहीं होसकता।
(१०) ज्ञान ज्ञेय के बिना नहीं होसकता।
(११) जो जन्मा नहीं वह मरेगा नहीं और जो जन्मा है वही मरेगा।

१—**प्रतिज्ञा:**—परमेश्वर अनादि है और उसके सब गुण और ज्ञान और इच्छा अनादि हैं अतः यदि ईश्वर को अनादि न माना जाय तो ईश्वर के गुणों का नाश होता है।

इस में हेतु यह है कि दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं कि परमेश्वर और उस के सब गुण और ज्ञान और इच्छा अनादि हैं, अतः इस पर विवाद करने की आवश्यकता नहीं और यदि इन्हें अनादि माना जावे तो पैदा हुआ मानना पड़ेगा। परमेश्वर मालिक, (स्वामी), पालक तथा ज्ञान, न्याय, दया, दान, आदि गुणों से युक्त है, क्या यह सब गुण उसके नये और पीछे से पैदा हुये हैं? कारण कि यदि जीव अनादि नहीं तो परमात्मा के सब गुण भी अनादि न रहेंगे, जो ८,९,१० सिद्धान्त के अनुसार असम्भव हैं। इसीलिये जीव अनादि हैं और अनादि परमात्मा के अनादि सामर्थ्य और अधिकार में विद्यमान हैं-पीछे से उत्पन्न हुए नहीं और यही हमारी प्रतिज्ञा थी।

२—**प्रतिज्ञा:**— जीव निरावयव चेतन है, इसलिये वह पैदा नहीं होता।

हेतु:— उत्पत्ति २ प्रकार की होती है। एक अपने आप से दूसरी किसी अन्य से। अपने आप से उत्पत्ति भी २ प्रकार की होती है एक

यथार्थ, दूसरी कल्पित वा मिथ्या—जैसे अंधेरी रात या निरजन स्थान में भूत प्रेत, या चुड़ेलों की मिथ्या भावना की कल्पना होती है। यदि कल्पना करके यह माना जावे कि ईश्वर ने जीव को पैदा किया तो झट प्रश्न उठता है कि क्यों और किस वस्तु से और कब ? यदि यह उत्तर दिया जावे कि अपनी शक्ति के प्रकट करने के लिये अपने शरीर से कोई भाग काट कर जब चाहा बना लिया अथवा जब से ईश्वर है तब से बनाया तो प्रश्न उठता है कि क्या परमेश्वर पर उससे पूर्व अपनी सामर्थ्य गुप्त थी या प्रकट ? पहिली अवस्था असत्य है और दूसरी अवस्था में क्रिया निष्प्रयोजन है। अपने शरीर से कोई भाग काटकर जीव बनाना वही बात होगी कि भूमि का दरिया बुर्द बरामद होना और सिद्धान्त धारा ३ के अनुसार प्रत्येक जीव ईश्वर होगा जो दोनों पक्षों के मन्तव्य के विरुद्ध होने से असत्य है। इसके अतिरिक्त ईश्वर में कमी आजाती है और आय के न होने से ईश्वर घटता है। और जब चाहा बना लिया या जब से ईश्वर है तब से बनाया यह दोनों कल्पनाएं ठीक नहीं, क्योंकि चाहना बिना इच्छा के नहीं होता और इच्छा अप्राप्त की होती है जिससे परमेश्वर में अपूर्णता और त्रुटि सिद्ध होती है जो दोनों पक्षों के मतानुसार असत्य है। जबसे ईश्वरहै तब से बनाया यह अनादित्व को सिद्ध करता है पर बनाने का निषेध, क्योंकि रचयिता और रचना में पहिले और पीछे का अन्तर होना आवश्यक है इसलिये बनाना सिद्ध नहीं होता (सिद्धान्त धारा २) क्योंकि ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता परस्पर में अविनाभाव सम्बन्ध रखते हैं और सिद्धान्त धारा९ के अनुसार गुण गुणी से पृथक् नहीं हो सकता और न धारा १० के अनुसार ज्ञेय के बिना ज्ञान हो सकता है; अतः सिद्ध है कि जीव अनादि हैं और उनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और यही हमें अभीष्ट था।

३ प्रतिज्ञा—अभाव से भाव नहीं हो सकता और न भाव से अभाव हो सकता है, इसलिये जीव अनादि हैं।

हेतु—अभाव के अर्थ हैं 'जो कुछ नहीं' और भाव के अर्थ हैं 'जो कुछ है' यदि जीव नहीं थे तो वह अवश्यमेव कहीं भी नहीं होंगे और धारा २ के अनुसार वह इस अभावालय से निकल भी नहीं सकते, कारण कि धारा १ के अनुसार जो वस्तु जहां होती है वही वहां से निकलती है। जीवों का अब भाव है इसलिये सिद्ध होता है कि वह पहिले भी कहीं थे अन्यथा अब भी न होते और अभाव उनका किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। अतः सिद्ध हुआ कि जीव अनादि हैं अभाव से भाव को प्राप्त नहीं हुए और यही सिद्ध करना हमारा उद्देश्य था।

४ प्रतिज्ञा—जीव अनन्त (अब्दी) है अतः अनादि भी है।

हेतुः—जीव का अनन्त होना दोनों पक्षों को स्वीकार है अतः इसकी व्याख्या अनावश्यक है। अब्दी का अर्थ है वह काल जिसका अन्त नहीं और अनादि का अर्थ है वह काल जिसका आदि नहीं। अब सोचना चाहिये कि जीव

क्यों अनन्त हैं? इसके कारण स्पष्ट हैं (१) वह सावयव नहीं कि मिलकर बने हों (२) वह चेतन और सूक्ष्म द्रव्य हैं इसी लिये नष्ट नहीं हो सकते, इत्यादि। अब इन्हीं कारणों को उलट कर देखें तो प्रकट होता है कि आदि भावना केवल उत्पत्ति की दृष्टि से है, अन्यथा जिस की उत्पत्ति नहीं उसका आदि नहीं। न जीव सावयव और विभक्त होने वाली वस्तु है तब उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई। प्रत्येक संयोगज वस्तु का नाश होना आवश्यक है और अभाव के पीछे भाव होने का नाम अनित्य है। पर जब जीव पर अभाव नहीं तो उनकी अनित्यता भी संगत नहीं; क्योंकि यह सिद्धान्त संख्या ११ के अनुसार असम्भव है। जैसे एक तट की नदी का होना असम्भव है, जैसे सूर्य्य में अंधकार का होना असम्भव है, वैसे ही अनन्त का सादि होना असम्भव है क्योंकि सिद्धान्त ७ के अनुसार परस्पर विरुद्ध का मिलना असत्य है। अतः सिद्ध हुआ कि जीव अनादि है और यही हमें अभाष्ट था।

५ प्रतिज्ञाः—जीवों में नाश या मृत्यु नहीं इसलिये जीव परमात्मा के अधिकार में सदा से हैं और सदा ही रहेंगे।

हेतुः—मृत्यु नाम जीव और शरीर के वियोग का है अन्यथा मौत और कोई वस्तु नहीं और जीवोंके लिये मृत्यु नहीं क्योंकि वह नित्य हैं और न जीवों में कोई ऐसा जड़ पदार्थ है जो कभी मिला हो या कभी उन से निकल सके इस लिये कि जड़ वस्तु में जीव नहीं; अतः सिद्धान्त संख्या २ के अनुसार इससे चेतनता निकल भी नहीं सकती। इसके अतिरिक्त जड़ व चेतन को एकना भी असम्भव है और यह सिद्धान्त ७ के अनुसार असत्य है। अतः जीव के स्वभाव से चेतन, मृत्यु से रहित और नाश से मुक्त होने के कारण इसका आदि नहीं। इसलिये सर्व प्रकार से सिद्ध है कि जीव अनादि है और यही सिद्ध करना हमारा कर्तव्य था।

अब प्रकृति (Matter) के अनादि होने पर भी कुछ युक्तियां लिखता हूं और मिर्ज़ा साहब से प्रार्थना करता हूं कि वह इन्हें विचार पूर्वक पढ़ें और सत्यासत्य का निर्णय करें।

(१) ईश्वर जड़ नहीं इसलिये जड़जगत् इससे निकल भी नहीं सकता। प्रत्येक पदार्थ से वही कुछ निकलता है जो पहिले उसके अन्दर विद्यमान हो और जो विद्यमान न हो वह किसी प्रकार निकल नहीं सकता (सिद्धान्त १,२) इसलिये प्रकृति अनादि है। (२) जगत् न केवल सामर्थ्य से बन सकता है न आज्ञा से, क्योंकि शक्ति शक्तिमानका गुण है और कोई गुण अपने गुणी से पृथक् नहीं हो सकता (सिद्धान्त ८) आज्ञा का बिना आज्ञा पाने वाले मनुष्य के माना जाना केवल धोखा है और आज्ञा केवल शब्द है। जगत का शब्द से बनना असम्भव है यह प्रकृति से ही बन सकता है। अतः प्रकृति अनादि है॥ (३) पदार्थ विद्या का पहिला नियम है कि कोई वस्तु अभाव से भाव में नहीं आती किन्तु भाव से, अर्थात

"नासतो विद्यते भावो न भावो विद्यते सतः"

जो नहीं है उसका किसी प्रकार भाव नहीं होता और जो है उसीका भाव और प्रकाश होता है। भाव से भाव होता है। इसके विपरीत भाव से अभाव या अभाव से भाव कभी नहीं हो सकता। इसलिये प्रकृति अनादि है।

(४) जब कहा जाता है कि जगत् का उत्पादक ईश्वर है तो झट प्रश्न होता है कि कहाँ से और काहे से? मुहम्मदी लोग इसका उत्तर देते हैं कि अपनी सामर्थ्य से अभाव में से ईश्वर ने बनाया। इस पर जब यह प्रश्न होता है कि अत्यन्ताभाव में से अत्यन्ताभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं निकलता और अभाव पर जो अधिकार है वह स्वयं अत्यन्ताभाव के बराबर है तो उत्तर यह मिलता है कि अपने से बनाया। इस पर प्रश्न होता है कि अपने से अपने बिना कोई वस्तु नहीं निकलती। अतः जो अपने में से हो वह अपना अंग है जिससे जगत् ईश्वर का एक भाग या कई भाग प्रतीत होता है। और स्थाली पुलाक न्याय के अनुसार जब यह जगत् ईश्वर का भाग और जड़ है तो जो कुछ अंग में हैं वही कुछ अंगी में होगा। (सिद्धान्त संख्या ३, ४.) जिस कारण यह जगत प्राकृतक और जड़ है इसलिये ईश्वर भी जड़ है न कि चेतन, ज्योतिस्वरूप, अविनाशी और सर्वज्ञ। पर यह निर्विवाद बात है कि ईश्वर चेतन, ज्योतिस्वरूप और सर्वज्ञ है। इसलिये जगत उससे नहीं निकला और न उसका अंग है। किन्तु प्रकृति से बना है और प्रकृति ईश्वर के अधिकार में अनादिकाल से विद्यमान है। शक्ति, ज्ञान और इच्छा अनादि हैं। अनादि नियमों के अनुसार ईश्वर इसका बनाने वाला है। क्योंकि कोई जड़ वस्तु न स्वयं बन सकती है और न बना सकती है। जीव चेतन, अविनाशी और निरावयव है।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयं तयापो न शोषयति मारुतः।

(अर्थ, शस्त्र उस को काट नहीं सकते, अग्नि उसको जला नहीं सकती, पानी उसको गला नहीं सकता, और वायु उसको सुखा नहीं सकती, क्योंकि वह निरावयव, सूक्ष्म और अविनाशी है जिसे दार्शनिक परिभाषा में बसीत (व्यापक) कहते हैं। वही अनादि जीव अनादि काल से परमात्मा के आधिपत्य, अधिकार, शासन और भक्ति में विद्यमान हैं। उनके कर्मों के अनुसार परमात्मा अपने अनन्त शक्तिमान और न्यायकारी होने से नाना प्रकार के शरीर प्रकृति से रच कर फल और दण्ड देता है। हां जीव और प्रकृति से सब पदार्थों के बनाने का ज्ञान उस पूर्ण ज्ञान स्वरूप में अनादि काल से मौजूद हैं और ईश्वर के आधीन तथा उसके अधिकार व शासन व भक्ति में अनादि काल से यह जीव तथा प्रकृति है। कोई समय ऐसा न था न हैं न होगा जिस में इन का अभाव हो या यह ईश्वरके अधिकार आदि में न हो। अतः अभावका भावमें आना वही बात है कि 'खुद ग़लत इमला ग़लत इनशा ग़लत। हस्त ई मज़मूं ज़िसरता पा ग़लत'। (है अशुद्ध लेखक, लिपी और लेखभी सारा अशुद्ध। आदसे है अन्ततक यह

विषय ही सारा अशुद्ध) अब पाठकों पर यह विषय स्पष्ट करता हूं कि कुरान में जीवके विषय में कौनसा नया ज्ञान दिया है। सूरत बनी इसराईल में है।

"हे मुहम्मद! यदि तुझ से जीवात्मा के विषय में पूछें, कह संक्षिप्त सा उत्तर परमात्मा की आज्ञा या गुप्त विद्या (हिकमत)" इस से भी सिद्ध है कि जीव अनादि है, पर समझना सुगम नहीं था। इस कारण से जनता को संशय में डाला, स्पष्ट रूप से सिद्ध है कि जब से शासक है तब से शासन है क्योंकि अनादि ईश्वर की आज्ञा, विद्या, वा इच्छा अनादि हैं और जबसे ज्ञानी है, तब से ज्ञान है इससे भी बढ कर यह जानो, परस्पर में सम्वाय सम्बन्ध रखते हैं, पर मिरज़ा साहिब आप इस विषय में क्यों साहस करते हैं, और किस प्रकार इसे समझ सकते हैं, जब कुरान स्वयं इसमें चुप है, सूरत बनी इसराईल में आया है "नहीं ज्ञान दिया गया तुमको पर अल्प, अधिक शंकाए न करो और न पूछो॥

पंजाबी कहावत है, 'एक नहीं और सौ सुख' अर्थात् एक इन्कारी और सौ आराम, तफसीर हुसैनी का लेखक कहता है। कि "इल्मे रुह मख़सूस अस्त बइल्मे खुदाये तआला,बग़ैरे हक़ सुबहानहुतआला कसे बदो दानानेस्त" (जीव का ज्ञान केवल ईश्वर के ज्ञान में है, और उस पूज्य परमात्मा के बिना कोई उसको नहीं जानता) वास्तव में यह वही प्रश्न है, जिस का उत्तर मक्का वालों ने यहूदियों के सिखाने पर हज़रत मुहम्मद से उसकी परीक्षा के लिये पूछा, और हज़रत ने बचन दिया, कि कल बताऊंगा, तत्पश्चात १८ दिन घर में या ग़ार में छिप कर सोचते रहे, पर कोई उत्तर बन नहीं पडा, अन्त में लाचार होकर यह वाक्य घड लिया, कि तुम को ज्ञान नहीं दिया गया, शंका न करो, और न पूछो, (देखो हाशिया कुरान पृष्ठ २१८ अनुवाद अब्दुलक़ादर साहिब देहली वाले, रचित १२०५ हिजरी)

पाठक वृन्द, क्या यह भी कोई उत्तर है, और क्या यही प्रतिज्ञा ईश्वर ने मुहम्मद साहिब को सम्बोधन करके कही। मिरज़ा साहिब जब कुरान जीव का वर्णन करने में असमर्थ है, तो बुराहीन अहमदिया की क्या स्थिति और सामर्थ्य है, कि उसकी कमी को पूरा करने का साहस कर सके, प्रसिद्ध कहावत है, कि "मुल्लाकी दौड़ मसीत तक" परहां आप भी तो चश्मेबददूर, खुदा हाफ़िज [आपको नज़र न लगे ईश्वर आपको बचाये] छोटे मोक्षवेत्ता हैं आपने विचारा होगा, कि अगर पिदर नतुवानद पिसर तमाम कुनद (यदि पिता न करसके तो पुत्र पूरा करे)। यदि जीव का चेतन और नित्य होना आपकी बुद्धि में ठीक नहीं आता, तो इस भ्रम मूलक गाथा वाली एक आयत के अतिरिक्त अपने सारे कुरान शरीफ से कोई और आयत तो बताइये, और कुरान के इस कलंक को मिटाइये यदि नहीं, तो "मुबारकबाद मर्गेनौ ब उस्ताद" (नई मौत के लिये अचारज को बधाई) उस दस हज़ारके पुरस्कारमें से कुछ मुद्रिका निकलवाइये, और ताला बन्द संदूकों को हवा लगवाइये, योग शास्त्र मंगवाइये, और

भटकते हुए मनको शांति दिलवाइये,और यदि स्वयं योग्यता नहीं रखते तो' न हो ईसासे बीना चश्मे सोज़न,(ईसा सूईकी आंखको प्रकाश नहीं देसका) अब उपाय होने में कठिनाई है और बूढ़े तोते की पढ़ाई विश्वास योग्य नहीं पाईहै, पर आप यत्न को न छोडिये, और "पीर शौ वियामोज़ " (बूढ़ा होने पर भी सोख) पर आचरण कीजिये, शोक आप समय पर न चेते, प्रमाद करके छःसात मील (गुरदासपुर और क़ादयां का अन्तर) की यात्रा का कष्ट न उठाया, दया व उपकार के सागर, सर्वगुणागर, तथा उजागर, हर्ष शोक से सर्वथा न्यारे, ईश्वर केप्यारे श्री स्वामी दयानन्दजी के चरणों में उपस्थित होकर अपने पक्षपात युक्त हठी मनकी शान्ति करते तो भटकना न पडता, और उनकी मृत्यु के पोछे टैं टैं करने का अवसर न मिलता, किसी विद्वान ने कैसा सत्य कहा है, ।

नूरे गेती फ़रोज़ चशमये हूर । खुश न बाशद ब चश्मे मुशके कोर ॥
शोर बख़्तां ब आरज़ू खाहंद । मुक्बिलां रा ज़वाले निअमतो जाह ॥
रास्त ख़्वाही हज़ार चश्मे चुनां । कोर बेहतर कि आफ्ताब सियाह ॥

[प्रकाश का भंडार जगत को प्रकाशित करने वाला सूर्य्य चमगादड़ की आंखको नहीं भाता, भाग्यहीन पुरुष यह इच्छा करतेहैं, कि भाग्यवान पुरुषों का ऐश्वर्य और अधिकार नष्टहो । सच पूछो तो ऐसो हज़ारा आंखे अंधी अच्छी हैं पर सूर्य का प्रकाश हीन होना ठीक नहीं ।]

यद्यपि वह महाराज परलोक को सिधार गये । पर उनके लगाये हुये शुभ पौधे अब हरे भरे उद्यान के रूप में हैं और ईश्वर कृपा से दिन प्रति दिन उन्नति कर रहे हैं। अब किसी प्रकार उन्हें उलटी पवन से हानी पहुंचने का भय नहीं । वेदकी शिक्षाओं पर इस उद्यानकी उन्नति का आधार है औरउस सच्चे गुरु की कृपा पर उनके जोवन का । बड़े २ विद्वान और दार्शनिक उन में विराजमान हैं और तन मन से सत्य धर्म पर बलिदान हैं ।

(१) श्री प० श्याम जी कृष्ण वर्म्मा दोवान रतलाम राज्य ।
(२) श्री राय मूलराज साहब एम० ए० मवजज तथा उप प्रधान परोपकारिणी सभा अजमेर ।
(३) श्री० पं० गोपालराव हरी देश मुख प्रधान आर्य समाज बम्बई ।
(४) श्री० पं० द्वारका दास साहब एम० ए० प्रिन्सीपल हिन्दू कालिज पटियाला ।
(५) श्री० पं० गुरुदत्त जी वर्मा एम० ए० असिस्टंट प्रोफेसर गवर्नमेंट कालिज लाहौर ।
(६) श्री० पं० उमरावसिंह जी शर्म्मा अध्यापक रुड़की कालिज और मन्त्री आर्य्य समाज रुड़की ।
(७) श्री० ला० सांईदास जी वर्म्मा प्रधान आर्य समाज लाहौर ।
(८) श्री० पं० नारायणकौल जी शर्मा, जज न्यायालय जम्मू ।

(९) श्री० राय नारायण दासजी वर्म्मा एम० ए० रईस रावलपिंडी ।
(१०) श्री० पं० भीमसेन जी शर्म्मा प्रयाग निवासी ।
(११) श्री० पं० रुद्रदत्त जी शर्म्मा उपदेशक आर्य समाज कलकत्ता ।
(१२) श्री० पं० गंगादीन जी रईस बिहार ।
(१३) श्री० मुं० ज्योति स्वरुप जी वर्म्मा मन्त्री आर्य समाज मेरठ ।
(१४) श्री० मुं० लक्ष्मण स्वरुप जी वर्म्मा प्रधान आर्य समाज मेरठ ।
(१५) श्री० मुं० आनन्द लालजी वर्म्मा सभासद आर्य समाज मेरठ इत्यादि, इत्यादि ।

परंतु आप की ओर ध्यान न देने का बड़ा कारण यही है कि हमें पहिले अपनी जाति का सुधार करना है . अव्वल खेशबादह्नु दरवेश (पहिले आप पीछे बाप) की कहावत प्रसिद्ध है । अन्यथा मुबाहिसे शास्त्रार्थ, का प्रत्येक आर्य्य समाज में खुला विचार है, और प्रत्येक नगरमें सद्धर्म्म का प्रचारहै। अब नतो वह समय है कि जो बोला सो मारा गया, कत्लुल काफ़रीन [काफ़रों को मार डालना] कह कर सिर उसका शरीर रूपी मंदिर से उतारा गया किन्तु मिरज़ा साहिब बरतानिया सरकार की ओर से प्रत्येक अपने मन के प्रचार के लिये स्वतन्त्र है ,विद्वान अब खोजना पर तत्पर हैं पर मूर्खों के हृदय में वही जहाद [लड़ाई] फिसाद का अंकुर है। श्री स्वामी दयानन्द जी ने प्रथम स्वयं वेद भगवान का स्वाध्याय किया तत्पश्चात जब देखा कि भारत में विद्याके प्रकाशका दिनों दिन ह्रास और मुहम्मदी , और ईसाइयो द्वारा आर्य्य सन्तान का नाश होरहा है । सत्य सहानुभूति के अभाव के कारण लज्जित हैं , और असत्य पक्षपाती हृदयों के कारण सुसज्जित हैं । लोग वेदों को छोड़ कर नाना प्रकार की कल्पित गाथाओं पर विश्वास ला रहे हैं और नान्ति २ के मिथ्या गुरुओं की पूजा को जीवन का आदर्श बना रहे हैं ,स्वार्थ सिद्धि ही इन का इष्ट , पेट पूजा और धोखा देना इन का काम है, और कोई नहीं सोचता, कि धर्म किस चिड़िया का नाम है, तब वह अपने गुरू श्री स्वामी वृजानन्द जी सरस्वतीकी आज्ञानुसार जगत के सुधार पर दृढ़प्रतिज्ञ हुये और पठन पाठन से लोगों को वेदाभिज्ञ बनाने लगे

बगोशे अहले भारत खुश सदाये रास्ती दादह ।
नवेदे वेद चूं आं राहनुमाये रास्ती दादह ॥
कुशादा पज़दी दारुल शफ़ाये वेद दर आलम ।
बदर्द जुमला कज फ़हमां दवाये रास्ती दादह ॥
रबूद अज दोनो दुनिया,ज़ंगे कज़बे ताज़ा मज़हबहा ।
चूं आं रौशन गरे सादिक़ जिलाये रास्ती दादह ॥
हमह आलामे,काज़िब सर निगूं गश्तंद दर आलम ।
निशां खुरशीद सां चूं अज़ नवाये रास्ती दादह ॥
इबादत,बा,बुतां करदन, मुराद अज़ मुर्दगां जुस्तन ।
बदफ़्ए ईं ज़लालत नेक राये रास्ती दादह ॥

तबरुक मासिवाये अल्ला ज़िकरो ताइतश करदन।
ज़ि दैरो क़ाबा बर गश्तन निदाये रास्ती दादह ॥
बदिल मकबूले अरबाबे अकूमो हक पसन्दां शुद।
चो दादे इल्मो दानिश दर अदाये रास्ती दादह ॥
जहे ओं काशिफे इसरारे इल्मे पाके रब्बानी।
पये बहबूदे आलम खुश अताये रास्ती दादह ॥

सद शुक्र आं महर्शी तसलीमे आर्य्यावर्त्त।
कज़ वेद बाज़ बख़शोद देहोमें आर्य्यावर्त्त ॥
ज़ां गंजे इलमो दौलत बाग़ाफ़िलां ख़बरदार।
शुद बाज़फख़ आलम इकलीमे आर्य्यावर्त्त ॥
सर मस्ते ख़ाबे ग़फ़लत खुफ़्ता चोबख़ते खुदबूद।
वेदार कर्दी बख़शोद ताज़ोमे आर्य्यावर्त्त ॥
हजदा पुराणो तन्त्र बर अक्से वेद यकसर।
तकज़ीबे आं नमूदा तफ़होमे आर्य्यावर्त्त ॥
अज़ वेदो जुमला पुस्तक कज़ फ़ेजे वेद हस्तंद।
फ़रमूद आं मुहक्कि़क़ तालीमे आर्य्यावर्त्त
नामे मुबारिके ओ नाज़माकिशुद दयानन्द।
करदा दयाओ आनन्द तक़सीमे आर्य्यावर्त्त ॥

(अर्थ—जब उस सत्पथ प्रदर्शक ने वेद का सुसमाचार सुनाया, तो भारत निवासियों के कानों में सत्य की मधुर ध्वनि पहुंची। उस ने संसार में वेद रूपी ईश्वरीय औषधालय खोला और सब उलटी समझ वालों के दर्द को दूर करने के लिये सत्य की औषधी दी। नये २ मतों के झूठ का मल व्यवहार और परमार्थ से दूर हो गया, जब उस सच्चे चमकाने वाले ने सत्य की चमक प्रदान की। जगत भर के सारे झूठे विद्वानों के सिर झुक गये, जब सूर्य्यवत सत्यके नाद का उस ने प्रकाश किया। मूर्तियों की पूजा करना, मुरदों से मुराद मांगना आदि अन्धकार को दूर करने के लिये उस ने सत्यानुकूल शुभ सम्मति दी। ईश्वर के बिना और की बड़ाई वा स्तुति प्रार्थना करना, दैर और क़ाबा इन सब से बचने का सत्योपदेश दिया। इस प्रकार जब सत्य के प्रकाश करने में उस की विद्वत्ता तथा बुद्धिमत्ता की पूर्णता प्रगट हुई, तो विद्वानों और सत्य प्रिय पुरुषों के मनों में उस की महिमा घर कर गई। धन्य है वह ईश्वरीय ज्ञान के गुप्त भेदों का प्रकाशक! जिस ने जगत के उपकार के लिये सत्य का उत्तम दान दिया। आर्य्यावर्त्त के पूज्य उस महर्षि को शतशः धन्यवाद है, जिस ने आर्य्यावर्त्त को पुनः उसकी वेदरूपी सम्पत्ति दी। आर्य्यों का देश उस ज्ञान के भंडार के कारण प्रमादियों से सचेत हो कर पुनः जगत शिरोमणि हुआ। आलस्य प्रमाद की निन्द्रा में उन्मत्त अपने भाग्य की भांति यह सो रहा था कि उस ने इसे जगाया और आर्य्यावर्त्त का मान कराया। अठारह पुराण और तन्त्र ग्रन्थ सर्वथा वेद विरुद्ध थे, उस ने आर्य्यावर्त्त को उन की असत्यता भले

प्रकार समझा दी। वेदसे और सारे पुस्तकोंसे जो वेदानुकुल हैं, उस आलोचक ने आर्य्यावर्त्त को शिक्षा दी। मुझे अभिमान है कि उस का शुभ नाम दयानन्द हुआ, जिसने आर्यावर्त्त में दया और आनन्द का संचार किया)।

स्वामी जी स्वयं आर्य थे, और उनके गुरु भी आर्य, निस्सन्देह आर्यसमाजों के प्रवर्त्तक वही हैं, परन्तु वेद भगवान की शिक्षाओं द्वारा जैसा कि सनातन से आर्य्य महात्मा करते चले आये हैं, श्री स्वामी जी ने हमको एक नाश रहित गुप्त कोष का पता बताया, और ईश्वरीय प्रमाण के लिये अकाट्य युक्तियों का चमत्कार भी दिखाया। यहां तक कि कुरानी, किरानी, पुराणी, और जैनी सब के दांत खट्टे कर दिये। जिस का परिणाम यह हुआ कि वह अविवेकावरण जो कुछ काल से हृदयों और बुद्धियों पर पड़ा हुआ था, दूर होने लगा अर्थात् सैंकड़ों ईसाई मुसलमान और जैनियों ने वेदोक्त सत्य को स्वीकार किया और असत्य का परित्याग किया, और कर रहे हैं। प्रमाण यह है, कि मिरज़ा साहिब के गुरुदास पुर जिले में भी उसी सत्योपदेशक की कृपासे तीन चार उदाहरण हस्तामलकवत विद्यमान हैं, ईश्वर सब को सत्य मार्ग पर लावे।

(वादी) परमेश्वर उन के नज़दीक एक ऐसा शख़्स है, जो अपनी बहादुरी से या इत्तिफ़ाक़ से सलतनत को पहुंच गया है, और अपनी जैसी चीजों पर हकूमत करता है, उन्हीं के सहारे और आश्रय से उस की परमेश्वरी बनी हुई है वरना अगर यह चीजें न होतीं, तो फिर ख़ैर न थी।

(प्रतिवादी) मिरज़ा साहिब को मिथ्या भाषण से तनिक भी सन्कोच नहीं किन्तु इसे अपने मत का व्यवहार जान कर उस पर आचरण करने में गौरव मानते हैं।

अपने मन घड़त विचार भिन्न २ प्रकार से लोगों को दिखाते हैं, और विद्वानों को अपनी मूर्खता पर हंसाते हैं, अतः हमारा यह मन्तव्य नहीं, और न किसी वैदिक उपदेशक का यह वक्तव्य है, अतः आपकी प्रतिज्ञा अथवा आक्षेप केवल निर्मूल है, हां यह क़ुरान शरीफ़ के विषयमें संगत हो सकता है, जिस में ठीक इसी प्रकार का लेख है। देखो सूरत बकर,

'और जब तेरे रब्ब ने फ़रिश्तों को कहा कि मैं उत्पन्न करने वाला हूं, पृथ्वी में अपना नायब। फ़रिश्तों ने कहा कि तू रखेगा, उस में उस मनुष्य को जो शान्ति भंग और वध करे, और हम तेरी माला फेरते हैं, और याद करते हैं, तेरी पवित्र ज़ात को। खुदा ने कहा कि मुझ को ज्ञात है, जो तुम नहीं जानते। खुदा ने आदम को सारी वस्तुओं के नाम सिखलाये, फिर फ़रिश्तों को खुदा ने कहा, कि बताओ मुझ को नाम उनके यदि तुम सच्चे हो। फ़रिश्तों ने कहा, कि तू सबसे निराला है. हम को कुछ ज्ञान नहीं, पर जो कुछ कि तू ने सिखलाया है, निश्चय तू ज्ञाता और गुप्त भेदों वाला है। खुदा ने कहा, 'हे आदम बतलादे उनको नाम उनके।' फिर जब उसने बताये नाम उनके, कहा खुदाने मैंने

न कहा था तुमको कि मुझको ज्ञात हैं पृथ्वी और आस्मान के भेद, और मैं जानता हूं जो तुम प्रगट करते हो और छिपाते हो, और जब हमने कहा फ़रिश्तों को सिजदा (दंडवत) करो आदम को, वे दंडवत् के लिये गिर पड़े, पर इब्लीस ने न माना, और अभिमान किया, और वह था काफ़िरों से, और कहा हमने आदम को रह तू और तेरी पत्नी बहिश्त (स्वर्ग) में और खाओ बहिश्त से बहुत खाने जहां से चाहो, और निकट न जाओ, उस वृक्ष के कि अत्याचारियों और पापियों से हो जाओगे। सो फिसलाया इन दोनों को शैतान ने इस स्थान से और उत्तम पदार्थों से। और इसी प्रकार सूरत एराफ़ में है।

'निश्चय उत्पन्न किया हमने, फिर सूरत दी तुम को फिर कहा फ़रिश्तों को कि दंडवत करो आदम को। सबने दंडवत की, परन्तु शैतान न था दंडवत करने वालों से। कहा (खुदाने) तुम को किस बात ने रोका, कि दंडवत न किया जब मैंने आज्ञा दी। शैतान ने कहा, कि मैं इससे उत्तम हूं, मुझ को बनाया तूने अग्नि से और इसको बनाया कीचड़ से, कहा नीचे उतर जा आस्मान से, कि तुझे योग्य नहीं कि उस में आज्ञा भंङ्ग करे। सो बाहर जा, निश्चय तू भटकता है। कहा हे खुदा मुझे फ़ुरसत (आज्ञा) दे, जिस दिन तक जो उठें (क़यामत तक) कहा खुदा ने तुझे निश्चय आज्ञा दी गई। शैतान ने कहा, कि इस कारण कि तू ने मुझे कुमार्गी बनाया, मैं भी मनुष्यों के सीधे रास्ते में बैठूंगा, फिर उन पर आऊंगा, आगे से, पीछे से, दायें से बायें से और न पावेगा, तू उन में से बहुत सों को कृतज्ञ। कहा, निकल जा यहां से दुष्ट, पतित, जो कोई उन में से तेरी राह चला, मैं मारूंगा दोज़ख़ में तुम सब को इकट्ठे, अतः आदम तू और तेरी पत्नि स्वर्ग में रहो, फिर खाओ जहां से चाहो और न निकट जाओ उस वृक्षके, फिर होगे तुम पापियों से। फिर बहकाया शैतान ने कि खोले उन पर जो गुप्त हैं उनसे उनके दोष, और वह बोला. तुमको जो रोका है, तुम्हारे ईश्वर ने इस वृक्ष से सो इस लिये है कि कभी हो जाओ फ़रिश्ते या हो जाओ सदा जीने वाले और सोगन्द खाई कि मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूं। फिर गिराया उनको धोके से, और चखा दोनों ने वृक्ष, खुल गये उन पर उनके दोष, और लगे जोड़ने अपने ऊपर वृक्षों के पत्ते और पुकारा उनको उनके रब्ब ने कि मैंने रोका न था, तुम को उस वृक्ष से और न कहा था, कि शैतान प्रत्यक्ष शत्रु तुम्हारा है।" और यही कहानी सूरत बनी इसराईल में लिखी है, वही शब्द, वही अर्थ, वही तात्पर्य, और उसी पीसे हुए को चौथी बार सूरत कहफ़ में पीसा गया है, और इस कथन 'द्रोग़गोरा हाफ़िज़ा न बाशद,' (झूठे को याद नहीं रहता) के अनुसार सूरत "स्वाद" में भी वही कुछ पाया गया, मगर उस को इस लिये ज्यों का त्यों लिखते हैं, कि प्रति पक्षियों को गप्प हांकने का अवसर न मिले। सूरत 'स्वाद' में खुदाने फ़रिश्तों को कहा, निश्चय मैंने उत्पन्न किया आदम को कीचड़ से, अतः जब मैं सीधा करूं और फूंकूं उस में अपनी आत्मा को तब गिर पड़ो उसको दंडवत करते हुए। अतः सारे फ़रिश्तों ने दंडवत की, परन्तु

शैतान ने आज्ञा भंग की, और वह काफ़िरों से था। कहा खुदा ने, हे शैतान! किस बात ने रोका तुझे उस वस्तु को दंडवत करने से जिसको मैंने अपने दोनों हाथों से बनाया है, तू ने अभिमान किया, या वास्तव में तेरा पद ऊंचा है ? तू हांका गया है, और तेरे पर मेरी ओर से धिक्कार होवे प्रलय (क़यामत) तक। कहा मुझ को प्रलय तक अवकाश दे। कहा तुझ को अवकाश दिया गया नियत समय तक (क़यामत तक) कहा, कि मुझ को तेरी महिमा की सौगन्द, अवश्य ही सब मनुष्यों को कुमार्गी करूंगा" यह है शास्त्रार्थ शैतानी और रहमानी, जो कुरान के ईश्वर की महिमा और प्रताप की निशानी है, और इस पाप और बहकाने की आज्ञा पर मुसलमानी की नीव रखी गई है, और यह वृक्ष भी बायबल के पाप, पुण्य के पहिचान के वृक्ष की न्याई अदन के उद्यान में विद्यमान होगा। इस प्रहसन युक्त, अप्रमाणिक, अंड संड गाथा से जो मुहम्मदियों के ईश्वर और हज़रत शैतान के सम्बन्ध में है, निम्न लिखित भाव निकलते हैं।

(१) मुहम्मदियों का खुदा अज्ञानी, निर्बुद्धि, छलिया, धोखेबाज़ नटखट, तथा झूठे बहाने बनाने वाला भी है, और कारण प्रत्येक का स्पष्ट है।

(प्रथम) ईश्वर का फ़रिश्तो से आदम के उत्पन्न करने के वास्ते सम्मति पूछना। सर्वज्ञ और अन्तर्यामी, प्रत्येक कार्य्य अपने ज्ञान से करता है, न कि लोगों की सम्मति से जैसा कि मुहम्मदियों के खुदा ने अपना नायब बनाने के समय सम्मति पूछी, सो यदि यह वर्णन सत्य है तो वह अवश्य अज्ञानी है, कि स्वयं बुद्धि नहीं रखता, और दूसरों की सम्मति वरतता है, वह किसी प्रकार ईश्वर होने के योग्य नहीं।

(२) फ़रिश्ता से सम्मति पूछना, और फ़रिश्तों का ईश्वर को अत्यन्त युक्त तथा विद्वत्ता पूर्ण उत्तर देना तथा आदम के सारे आगामी दुराचारों और पापों से ईश्वर को सूचित करना उनके सर्वज्ञ होने का प्रमाण है। परन्तु ईश्वर की बुद्धि देखिये, वह उनके समझाने से भी न समझा, और उसके नायब बनाने पर उसी प्रकार हठ करता रहा। अन्त में वही हुआ जो फ़रिश्तों ने भविष्यवाणी की थी, इस वास्ते मुहम्मदियों का ईश्वर निर्बुद्धि है।

(३) खुदा ने फ़रिश्तों से छल किया, और उसका विस्तार यह है, जब फ़रिश्तों ने खुदा को लज्जित किया, और कहा, कि हम जो तेरी स्तुति करते और तुझे गाते हैं, क्या शांति भंग तथा वध करने वाले आदम को तू हमें छोड़ कर अपना नायब बनायेगा, जो तेरे स्वभाव तथा शान के सर्वथा विरुद्ध है। तब ईश्वर ने आदम को गुप्त रीति से उत्पन्न हुओं के नाम सिखाये और पुनः पारलीमेंट में आकर पारलीमेंट के सदस्यों (फ़रिश्तों) को कहा, कि यदि तुम बड़े हो, मेरी स्तुति करते हो, और अपनी बुद्धि पर अभिमान करते हो, तो सारी प्रजा (वस्तुओं) के नाम बताओ। ईश्वर के इस प्रश्न का उत्तर फ़रिश्तों से न बन आया, तब ईश्वर ने अपने पालतू तोते को कहा, कि हे आदम बतादे उनको नाम उनके। जब आदम ने सारे नाम बता दिये, फ़रिश्ते विस्मित

हुए, कि यह हम से कैसे अधिक विद्वान हो गया। तब कुशल मायावी (खुदाये-अहुलमाकरीन) ईश्वर कहता है, कि मैंने तुम को न कहा था, कि मुझ को पृथिवी और आसमान का सब भेद ज्ञात है।" प्रत्येक सत्य प्रिय मनुष्य जान सकता है, कि इस अपनी और आदम की बड़ाई करने और फ़रिश्तों को अपराधी मानने में खुदाने स्पष्टरूप से छल किया, धोखा दिया, दाव खेला, अतः ईश्वर इन्हीं गुणों से विभूशित है।

(२) शैतान की उत्पत्ति ईश्वर की इच्छा से नहीं हुई, किन्तु उसकी सामर्थ्य से बाहिर वा उसकी इच्छा के विरुद्ध हुई है, और न ईश्वर को ज्ञात है। कारण इसका प्रगट है, कि यदि होता ईश्वर को उसके जन्म का ज्ञान वा यह उसकी इच्छा से उत्पन्न होता, और इसी प्रकार यदि उसकी शक्ति से बाहिर न होता, तो सबसे प्रथम बिना सोचे समझे उसको अपने निकटस्थ फ़रिश्तों का अध्यापक न बनाता। जब भली भांति शैतानत्व की शिक्षा दे चुका, तो उस समय कुम्भकरण को नींद से मुहम्मदियों का ईश्वर न जागता।

अज़ीं मानीं किरा हैरत नज़ायद। तुअल्लिम कारे शैतानी नुमायद॥

(इस बात से किसे आश्चर्य न होगा, कि अध्यापक स्वयं शैतानी कार्य्य दिखाता है,)

खुदा साहिब को भविष्य में सोच विचार कर कार्य्यवाही करनी चाहिये, गुज़श्तारा सलवात आइंदा रा पहतियात (पिछली भूल आगे चेत) पर आचरण करें, और सामर्थ्य के परिमाण से पग बाहिर न धरें।

अब पछताये क्या होत जब चिड़ियां चुग गईं खेत।

(३) कुरानी खुदा अन्तर्यामी (मोक्षवेत्ता) भी नहीं है। यदि होता मोक्ष के जानने वाला और अपनी बुद्धि भी रखता, और यदि हूर और गिलमान के प्रेम से मुक्त होता, तो समय पर वा उससे पूर्व विचार करता। परन्तु वह तो मुहम्मद शाह रंगीले की भांति या वाजिद अली शाह की न्याईं प्रसूतागार में बैठा हुआ था यदि उसको पहिले विदित होता, यह वृत्तांत कि शैतान आदम को सिजदा न करेगा, और मुझे लज्जित होना पड़ेगा, तो कदापि यह शब्द कि तुझको हे शैतान किस बात ने रोका सिजदे से, ईश्वरीय वाणी से वर्णन न करता। जैसा कि किसी का कथन है, "चोदानी ओ पुरसी ख्वालत ख़तास्त" (जब तू जानता है और पूछता है, तो तेरा प्रश्न करना भूल है)

(४) मुहम्मदियों का खुदा, तर्क विद्या से अनभिज्ञ और वादाविवाद में असमर्थ है, और साथ ही जलदी रुष्ट होने वाला और पक्षपाती भी है, कि जो उसको युक्त रीति से झूठा लखे, वा उसकी असत्यता बतलाये, उस पर फटकार करने लगता है; जैसा कि प्रगट है। खुदा ने कहा, कि आदम की मूर्ति व शरीर को सब फ़रिश्ते दण्डवत (प्रणाम) करो। अन्य फ़रिश्ते केवल काठके पुतले थे, ज्योंही आदम की मूर्ति खड़ी हुई, सब उसको छोटा खुदा वा दूसरा खुदा समझ कर सिजदे में गिर पड़े। शैतान ने विचार किया, कि इस मूर्ति को दण्डवत करना अधर्म है और मेरी अपेक्षा इसमें कोई विशेषता नहीं है। इसी विचार

में मस्त खड़ा रहा। खुदा ने कहा हे इब्लीस तुझे सिजदा करने से किसने रोका। शैतान ने उत्तर दिया, कि अपनी बुद्धि ने। खुदा ने कहा, बुद्धि तुझे किसने दी, कहा तूने। खुदा ने कहा, कि आदम को प्रजाके नाम आने से विशेषता है। शैतान ने कहा, कि मुझे तेरे प्रेम में निमग्न रहने से बड़ाई है। खुदा ने कहा, कि आदम मिट्टी से है, और मिट्टी पवित्र है, अतः वह बड़ा है, उसको सिजदा कर। शैतान ने कहा, कि वह स्थूल द्रव्य से उत्पन्न हुआ है, और मैं सूक्ष्म द्रव्य से, सो स्थूल से सूक्ष्म को सदा विशेषता है। खुदा ने कहा कि इसको मैंने अपने दोनों हाथों से बनाया है, तू इसे सिजदा कर। शैतान ने कहा, मुझको तूने अपनी सामर्थ्यसे बनाया है, नमित्तिक से स्वाभाविक बात सदा उत्तम होती है, मैं इसे सिजदा नहीं करता। खुदा ने कहा, कि क्या वास्तव में तू प्रतिष्ठित है या तू ने अभिमान किया। शैतान ने कहा मैं उस विद्या और कुशलता के कारण कि जो आदम को कभी प्राप्त न होगी प्रतिष्ठित हूं, और आदम से उच्च। खुदा ने कहा; कि यहां विद्रोह न कर, चला जा तू काफ़िरों से है, मेरे साथ तर्क करता है। शैतान का काफ़िरों से होना सिद्ध करता है, कि शैतान से पहिले लोग भी काफ़िर हो चुके थे।

(५) खुदा से शैतान अधिक शक्ति भी रखता है, क्योंकि वह शैतान को गालियां देता और फटकार करता है, और शैतान का बाल बांका नहीं होता। शैतान का कहना है, "कि असमर्थ दुर्बल, गालियां निकालते हैं, और भीरु और ओछे बहाना करके टालते हैं, जब तक मेरा हाथ चलता रहेगा, तेरे मनुष्यों को कुमार्गी करूंगा, देख अब तू तर्क में भी रुक गया, और सत्य के विरुद्ध बोलने से निरुत्तर हुआ, और इसके उपरान्त अब रोता है, और गालियां देकर अपनी प्रतिष्ठा खोता है, यह मकान तेरा है इसलिये मैं ताज़ीरात हिन्द की धारा ४८८ के अनुसार अनुचित हस्तात्तेप और झगड़ा नहीं करता, और पग बाहर धरता हूं। मैं तेरी न्याईं थोथे हथियारों पर नहीं आता, और न गालियां सुनाता हूं, स्वयं ही मुझको कुमार्गी बनाया, और स्वयं ही गालियां सुनाता है और अपने छल छिद्र से लज्जित नहीं होता, मैं इस स्थान पर तो हस्तात्तेप नहीं करता, परन्तु स्मरण रख, जिस प्रकार तू ने मुझको कुमार्गी की उपाधी दी, उसी के अनुसार मैं आदम और उनकी सन्तान को (जिसके लिये तूने मुझे बहिश्त से निकाला) यहां से निकालूंगा, और अन्धकार में डालूंगा,

अब यहां पर जैसे को तैसा उत्तर देना उचित है अर्थात् हमको भी मिरज़ा ग़ुलाम अहमद के कथनानुसार कहना पड़ा कि मुसलमानों का खुदा एक ऐसा मनुष्य है, जो छल छिद्र या दैवयोग से राज्य को प्राप्त हुआ है, परन्तु विद्या और बुद्धि से सर्वथा शून्य है, अज्ञानियों और सरल हृदय मनुष्यों अथवा अपने जैसे मनुष्यों पर उसका शासन है, वीरता का उसमें चिन्ह मात्र भी नहीं और खुदाई करने का उसको तनिक भी ज्ञान नहीं। फ़रिश्तों के सहारे और आश्रय पर उसकी खुदाई बनी हुई है अन्यथा यदि वह सारे फ़रिश्ते अपने अध्यापक हज़रत इब्लीस सहित फ्रन्ट हो जाते, और हाथ उठाकर मुका-

चले को आते, तो अर्श* के सिंहासन से गिर पड़ता, और लज्जित होता, और यदि फ़रिश्ते उसके काम में सहायक और उसके गोष्ठी न होते, तो न जाने क्या बीतती, मानो मुहम्मदी खुदा सर्वथा फ़रिश्तों पर निर्भर है, और उसका राज्य उन्हीं के सिर पर है, अन्यथा उसकी खुदाई में आज नहीं तो कल अवश्य गड़बड़ है, अतः ऐसा मनुष्य किसी प्रकार खुदाई के योग्य नहीं, क्योंकि एक तो वह बुद्धिमान नहीं, दूसरे राजकीय कार्यों का अनुभवी नहीं। अब विचार का स्थान है कि हम आर्य लोग खुदा को शक्तिहीन, भीरु, अज्ञानी, या छलिया मानते हैं, या मुहम्मदी लोग, और हमारा ईश्वर दूसरों पर निर्भर है या आपका

वादी—और वह सब चीजें यानी अरवाह और अजज़ाये अजसाम अपने वजूद और बक़ा में बिलकुल परमेश्वर से बेतअल्लुक़ हैं, यहां तक कि अगर परमेश्वर का मरना भी फ़र्ज़ कर लिया जावे, तो उनका कुछ हर्ज नहीं है।

(प्रतिवादी) वादी जिस प्रकार आर्य्य धर्म के सिद्धान्तों से सर्वथा अनभिज्ञ है, उसी प्रकार झूठे दोष लगाने में भी निपुण है। आक्षेप करते समय उसका

---

*कुरान की सूरत हाक़ में लिखा है,

"और फ़रिश्ते उस आसमान के किनारे होंगे, और उठावेंगे; तेरे खुदा के सिंहासन को उस दिन आठ मनुष्य", तफसीर हसैनी में मुआलम के प्रमाण से लिखा है, कि आज कल अर्श के उठाने वाले चार हैं, परन्तु उस दिन चार और लगेंगे, सब आठ होंगे, शाह वली उल्लाह भी यही वर्णन करता है, बहुत सी तफ़सीरों में है, कि एक फरिश्ते की आकृति ऊंट की, दूसरे की गऊ की, तीसरे की उक़ाब की, चौथे की गधे की भांति है, जिन्होंने अर्श को अपने कन्धे पर उठाया हुआ है। परन्तु तफ़सीर हुसैनी वाला उनकी आकृति पहाड़ी बकरी की भाँति लिखता है। अब पाठक विचारें, कि जिस सिंहासन को चार फ़रिश्तों ने उठाया है, और उस पर खुदा बैठा हुआ है वह अवश्य सान्त वस्तु है, और सान्त में अनन्त की समाई नहीं, अतः वह परिमित सिंहासन जिस पर मुहम्मदियों का खुदा बैठा हुआ है, सिद्ध करता है, कि एक देशी है, सर्व व्यापक, अन्तर्यामी तथा सर्व शक्तिमान नहीं हो सकता। शोक कि लोगों को ऐसे खुदा से घृणा नहीं आती, और क्यों इस भ्रममूलक विश्वास को नहीं छोड़ते, और क्या ऐसा मत जिसके अनुसार सर्व स्वामी तथा विभु व्यापक पर नाना प्रकार के दोष आते हैं, पवित्र ईश्वर की ओर से हो सकता है, कदापि नहीं, स्थिर बुद्धि और धृतिशील पुरुष जो ईश्वर को मानेगा, वह ऐसे दूषित, घातक, तथा अत्याचारी मत से शीघ्र निकलने का यत्न करेगा, क्योंकि इन लोगों ने खुदा को एक देशी, अल्पज्ञ, अज्ञानी, छलिया, अन्यायी, अत्याचारी, आदि नामों की उपाधी दी है। मुहम्मदी विद्वानों! तनिक तो हृदय में विचारो, कि क्या सारे संसार का परमेश्वर सारे ब्रह्मांड का स्वामी संसार को भूल कर एक स्थान अर्श (आसमान) पर फरिश्तों के कन्धों पर चढ़कर बैठा है, और उसके शरीर धारी होने में किसी विद्वान को इनकार हो सकता है, अतः ऐसा शरीर धारी खुदा अवश्य नाशवान है। अविनाशी और नित्य नहीं है खुदा को सर्वव्यापी जानकर हे प्यारे मुहम्मदी विद्वानों विचार करो:—

तअस्सुब बलाएस्त बे हासली, को बेअन्द हा बिगुसली वासली।
पक्षपात व्यर्थ का पाप है जब तू सचाई में जोड़ तोड़ करता है

सारा आधार कल्पित बातें होती हैं, और यही कल्पना उसको वास्तविक कर्त्तव्य से खोती है। आर्य्यसमाज के किसी सभासद का यह मन्तव्य नहीं है, कि सारे जीव और प्रमाणु और पदार्थ उत्पत्ति और स्थिति में परमेश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। प्रत्युत हम आर्य्य लोग वेद भगवान की शिक्षा के अनुसार इस बात को अपना परम धर्म समझते हैं, कि परमेश्वर सब जीवों, जगत के प्रमाणुओं आदि का स्वामी है, और अनादि सामर्थ्य के कारण अनादिकाल से ही यह अनादि पदार्थ उसके स्वामीत्व में विद्यमान हैं। उसकी अनन्त विद्या तथा असीमित ज्ञान के कारण कोई उसके ज्ञान से दूर वा लुप्त नहीं मानते, किन्तु विचार और निश्चयात्मक रूप से जानते हैं कि उसके प्राकृतिक भण्डार में अनादिकाल से सारा कारखाना विद्यमान है न कभी ईश्वर का नाश हुआ न होगा। इसी प्रकार गुणी के साथ ही अनादिकाल से गुण 'अकाल' है, ईश्वर के अनादि ज्ञान और अनादि ईक्षा से अनादिज्ञेय और अनादि जीव विद्यमान रहते हैं। और जीवों के अनादित्व से कर्म्मों का क्रम भी प्रवाह रूप से अनादि है, जगत का कारण अर्थात् प्रकृति और प्रमाणु भी उस परमात्मा के अधिकार में अनादिकाल से विद्यमान हैं। यह सारा जड़ जगत उसी जड़ प्रकृति से ईश्वर ने उत्पन्न किया, और करता है। नास्तिकों (ईश्वर के न मानने वालों) को इसी स्थान पर तो चक्कर खाना पड़ता है, और यही स्थान है, जहां से डोल कर परमात्मा की ओर प्रेरित होते हैं, जड़ में चेष्टा तथा प्रबन्ध असम्भव होता है, और यह भी एक प्रमाण उसी उच्च देदीप्यमान परमात्मा पर घटता है। यह सारी वस्तुएं परमात्मा की महानता, शक्ति, प्रबन्ध तथा पूर्णता पर निर्भर हैं, और इन की अपूर्णता का रोग असाध्य है, जितना इनका सम्बन्ध परमेश्वर से है, उतना परस्पर में अन्य वस्तुओं का नहीं है। जैसे वेद मन्त्र में ईश्वर कहता है,

"यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।

स्वर्यस्य च केवलं तस्मैज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।" अ० का, १ सू० २३ मं, १

ब्रह्म परमात्मा, भूत, भविष्यत, वर्तमान इन तीनों कालों के ऊपर विराजमान और सारे जगत को अपने विज्ञान ही से जानने वाला और रचने तथा पालने वाला और प्रकृति में लय करने वाला, संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता है, जिसका केवल सुख स्वरूप है, जो सब सुखों का देने वाला है, और जो सबसे ज्येष्ठ है, उसको नमस्कार करनी योग्य है, किसी और को नहीं और न कोई उसके अतिरिक्त स्वामी है।" इस मन्त्र से परमात्मा ने पूर्ण रूप से प्रकट कर दिया है, कि सारे जीवों और पदार्थोंके प्रमाणु आदि जगतका स्वामी हो अपने अनादि सामर्थ्यसे सारे जगत के पदार्थों अर्थात जड़ जगत का ज्ञाता और रचयिता और जीवों को उनके कर्मों के अनुसार पूर्ण न्याय से फलदाता और पालन कर्त्ता है, उस में कभी दुख और भूल नहीं है, वह सत्य का आदि स्रोत और ज्ञान का भंडार है, संसार का एक प्रमाणु भी उसकी व्यापकता से बाहिर नहीं है, सब मनुष्यों को उसकी भक्ति

और उसी की प्रार्थना करनी चाहिये, न कि किसी और को, क्योंकि जगत का स्वामी वा अधिष्ठाता और कोई नहीं है।

जब यह मन्त्र स्वयं ही विरोधियों के मिथ्या तथा कल्पित आक्षेपों का सन्तोष प्रद व पूरा २ उत्तर है, तो हमें अधिक आवश्यकता नहीं है, कि कुछ और बढ़ावें। जो सत्य वचन को मिथ्या रूप में वर्णन करके लोगों को सत्य से हटाना चाहे, वह बुद्धिमानों के निकट झूठा है। और कुरान कहता है, 'झूठों पर ईश्वर का धिक्कार' और मैं छलिया और शांति भंग करने वाले पुरुषों को भी उन्हीं में ही समझता हूं। रही यह बात कि 'यदि परमेश्वर के मरने की भी कल्पना की जावे, तो उनकी कुछ हानि नहीं', इसका उत्तर यह है,

पाठकगण! अन्यायी अदूरदर्शी तथा कुदर्शी विपक्षी ने कितना बड़ा दोष लगाया है, और मन घड़न्तबाणी बनाई तथा मुंह फट होकर सुनाई है, न ईश्वर से डरा न झूंठ बोलने से लज्जा आई है। मौन रहना सत्यता से दूर है और जैसे को तैसा उत्तर देना जरूर है। यदि आप अपने को ही झूठा मान लें, तो सारा कथन ही असत्य होजावे। और ईश्वरीय प्रजा को धोखा देने का दोष आप पर न आवे। और यदि हम आपके जीते जी आपके क़ब्र में होने की कल्पना कर लें, तो भी हमारी कोई हानि नहीं, केवल बुराहीनुल अहमदिया के ग्राहकों को घाटा है, और आपसे ऋण लेने वालों को हानि और टोटा है। हज़रत कल्पना का क्षेत्र कल्पित है, कल्पना रूप या दैव योग से आपका नबी उत्पन्न हो न होता, तो हमारी क्या हानि थी। करोड़ों ख़ून न होते, लाखों दास दासी न बनते, करोड़ों घर नष्ट न होते और न देश का सत्यानाश होता। और इसी भाव के प्रगट करने को एक सत्य प्रिय ईरानी कवि कहता है,

ज़े शीरे शुतर ख़ुरदनो सोस्मार, अरब रा बजाये रसीदस्तकार।
कि ताजे कियां रा कुनद आरज़ू। तफ़ू बर तो ऐ चर्खे गरदां तफ़ू॥

(ऊंट का दूध पीते और छिपकली [पड़ा गोह] खाते, अरबों की यह नौबत पहुंची है, कि ईरानी ताज की इच्छा कर रहे हैं, हे फिरने वाले आस्मान तुझ पर धिक्कार! धिक्कार है! धिक्कार है।)

क्रोध की न ठानो, न इसमें कुछ स्वार्थ पहिचानो, किन्तु इस सब बात को कल्पित मानो, मानना वा न मानना अपनी इच्छा के आधीन जानो, मिरज़ा साहिब यदि कल्पना मात्र या ईश्वरेच्छा से ऐसा हो, कि जिन फ़रिश्तों ने ख़ुदा का डोला उठाया हुआ है, वह सब शैतान की न्याईं फूट होजावें, और मुकाबले को आवें, और सिंहासन के चोबों से कंधे सिरकावें, तो फिर आप तनिक यह बतलावें, कि मुहम्मदियों के ख़ुदा को किस गढ़े में गिरा पावें, और उस गिर पड़ने में मान लो, कि ख़ुदा मर जावे, तो आपका मौला कौन कहलावे। बुरा न मानिये, यह आप ही की इच्छा है, अन्यथा हमारी प्रतिज्ञा वास्तविक नहीं किन्तु कल्पित है।

शैतान के अभियोग का अन्तिम फ़ैसला।

मुहम्मदियों के कथनानुसार शैतान ने खुदा के दर्शन भी किये, और खुदा से बात भी करता रहा, और फरिश्तों का प्रथमाध्यापक भी था, इस पर खुदा के अतिरिक्त किसी को न मानता था। मानों एक ईश्वर का उपासक वा सूफी मतवाला था उसके अपूर्व विद्वान् होने में किसी को सन्देह नहीं। विद्वत्ता में उस के बराबर कोई फरिश्ता वा मनुष्य नहीं अतः इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि उसकी मुक्ति हो चुकी होगी, और वह स्वर्ग में सैर करता होगा। सब से बड़ा कारण मुक्ति का यह भी है, कि सारे आक्षेपों का उत्तर देने वाला है (देखो पुस्तक अयूब) आवश्यकताओं का पूर्ण करने वाला है। बुद्धि किसी प्रकार स्वीकार नहीं करती, कि इतने गुणी को खुदा धिक्कारे, और गाली गलौज से फटकारे। और विशेष कर आदम की सन्तान को उसका कृतज्ञ होना चाहिये, क्योंकि वही आदम की सन्तानोत्पत्ति का कारण हुआ, यदि वह आदमको गेहूं का दाना न खिलाता, और भले बुरे की पहिचान न कराता, तो बस 'अल्ला अल्ला खैर सल्ला' थी, उनको इस संसार में कौन लाता, वास्तव में यदि यह कार्यवाही कुछ सत्यता की गंध रखती है, तो हज़रत शैतान दयालु ईश्वर का पवित्र मनुष्य होगा। अब अकाट्य युक्तियों से सिद्ध करना उचित है, कि कुरान के अनुसार यह सत्य है वा असत्य। शैतान वास्तव में कोई व्यक्ति नहीं है और न कोई सिद्ध कर सकता है, परन्तु दुर्जन तोष न्यायवत् यदि शैतान है, तो जब आदम और उसकी सन्तान को शैतान ने बहकाया, तो फिर शैतान को किसने बहकाया और खुदा से विरोध करवाया? जिस अवस्था में (ईश्वर न करे) मुहम्मदियों के कथनानुसार पहिला दोषी वही है। अतः निर्णयतथा विचार करने योग्य २ प्रश्न हैं। (१) ईश्वर सर्वज्ञ है वा नहीं और दूसरे किसी उत्पन्न हुई वस्तु को सिजदा करना पाप है वा नहीं। जब यह बात सर्व प्रकार से सिद्ध है कि ईश्वर पूर्ण ज्ञानी है किसी का कोई गुप्त भेद उससे छिपा हुआ नहीं, और सबका स्वामी तथा सर्वोपरि वही है और इसके अतिरिक्त उस पवित्र प्रभु के विना किसी अन्य की पूजा करना कुफ्र तथा शिर्क (पाप) है। जब कुफ्र का करने वाला काफ़िर ठहरा, तब कुफ़र को आज्ञा देने वाला या कुफ्र कराने वाला काफिर तथा मुश्रिक क्यों नहीं।

"बिबीं दानाईये बानिये इस्लाम, अबस इल्ज़ामे शैतां बर खुदा बस्त।
बले ग़ालिब बकोले ओस्त शैतां, खुदाओ बन्दगानश रा कुनद पस्त॥

(अर्थ) इस्लाम के प्रवर्त्तक की बुद्धिमत्ता देखो, कि अकारण ही ईश्वर पर शैतान का दोष लगाया। उसके कथनानुसार शैतान विजयी है, जिसने ईश्वर और उसके बन्दों को नीचा दिखाया'। हे प्यारे मोमनो। अत्यन्त आश्चर्य का स्थान है, और निन्दनीय बयान कि वह शुद्ध भगवान् कुफ्र को व्यवस्था देवे।

और जो उसके कुफ़र को आज्ञा न माने, उसे धिक्कारे और फटकार बतावे, चूंकि वह परमेश्वर इस प्रकार की भ्रांति, दोषों तथा द्वेष भाव से रहित है, इसलिये सूक्ष्मवित् बुद्धि व्यवस्था देती है, कि यह आज्ञा उसकी नहीं है, और न शैतान कोई फ़रिश्ता ईश्वर की ओर से है, चोरी करने वाले का नाम चोर है, और कुश्ती करने वाले का नाम शहज़ोर है, जो चोर से विपरीत है, वह सदाचारी है, और व्यभिचारी का नाम दुराचारी है, इसकी पुष्टि में एक मौलवी साहिब कहते हैं,

हंसी आती है मुझे बस हज़रते इन्सान पर,
फेलेबद* तो ख़ुद करे लानत करे शैतान पर।

किताब वक़ाये निअ्मत ख़ां आली जिसका रचयिता एक उदार मुसलमान है, वह भी हमारी पुष्टि में लिखता है।

कथा

शेखदर खाबदीद ····· ·········बुवद काफ़िर

(अर्थ) शेख़ ने स्वप्न में दीन के लुटेरे और धर्म नाशक शैतान को देखा, पवित्रता से मन को दर्पण वत् बनाया, और ज्यांही उस दुष्ट को देखा पहिचान लिया। उसे झिड़कते हुए क्रोध किया, उसके सिर पर मुक्का मारा, और डाढ़ी पकड़ ली, कि, 'हे दुष्ट! तेरा क्या हाल है, जो तू ईश्वर के दरबार से धिक्कारा गया है, मनुष्यों को तू ने सन्मार्ग से हटाया है, और अन्धकार का जुआ गले में पहिराया है। यह सब भक्ति, कीर्तन, नमस्कार, मनुष्यों को बहकाने के लिये वा ईश्वरीय प्रजा को भटकाने के लिये ही थे। शैख़ ने जब दूसरी चपत लगाई, तो उस अपने हाथ की चोट से जाग पड़ा। जब झुंझलाकर अपनी मीठी नींद से उठा, तो देखा कि उसकी अपनी डाढ़ी उसके अपने हाथ में है। उस समय मन रूपी असुर से युद्ध याद आया। खिलखिला कर हंसा और अपनी डाढ़ी को छोड़ दिया। यदि यह आकाशवाणी नहीं तो और क्या है जो इसमें शक करे वह काफ़िर है।

निस्सन्देह यह बात सत्य है, कि "नफ़्स व शैतान हर दो यक तन बूदंद" (मन और शैतान दोनों एक ही वस्तु हैं)

अस्तु अब न्यायप्रिय सज्जनों से इस स्थान पर मेरी एक प्रार्थना है कि दो मनुष्य परम मित्र हों जिनमें से एक अविवाहित और एक गृहस्थी हो, अपने अविवाहित मित्र के प्रलोभन पर यदि गृहस्थी अपनी पत्नी को अपने मित्र से समागम करने की आज्ञा देवे, तो पत्नी (यदि पतिव्रता और लज्जावती हो) को इन दो बातों में से क्या करना उत्तम और उचित है। प्रथम क्या अपने निर्लज्ज पति के कथनानुसार उसके मित्र के पास चली जावे, और समागम करे, अथवा उससे कहे, कि हे निर्बुद्धि, निर्लज्ज पागलपन मत कर। और ऐसी

*बुरे कर्म

अनुचित आज्ञा न दे। और ऐसी आज्ञा के पालन की आशा मुझसे न रख। तेरी बात अत्यन्त बुरी है, अन्यथा मेरा गला और तेरी छुरी है। किसी लज्जाशील और बुद्धिमान् से आशा नहीं है, कि पहिली बात पर बल देवे, किन्तु सर्व साधारण से भी पूछा जावे, तो यही उत्तर मिलेगा, कि यदि उसको इस आज्ञा के न मानने से अपशब्द और फटकार आदि तो क्या बध कर देवे, पृथक् कर देवे, अथवा उसे छोड़ देवे, तो भी यह बात किसी प्रकार करने योग्य नहीं, हजरत सरमद साहिब के कथनानुसार।

सरमदा कार व इश्के हर्मो दैर मकुन। दरकूचे फ़िस्क चु गुमरहां सैर मकुन।
गर सिदूक बतोस्त राहबरी ज़े शैतां आमोज़। यक किब्ला गुज़ीं ओ सिजदा बागैर मकुन॥

(हे सरमद तू हरम और दैर के प्रेम से पृथक् रह, अधर्म की गली में भूले भटकों की न्याई सैर न कर। यदि तू सचाई पर स्थिर रहना चाहता है, तो शैतान को गुरु बना, एक किब्ला इख्तियार कर और किसी और के आगे न झुक।) अब एक प्रत्यक्ष असत्य का प्रमाण देता हूं, और वह यह है, कि साधारण मुहम्मदी मानते हैं, कि खुदा से नेकी और शैतान से बदी की उत्पत्ति है, अर्थात् भलाई का उत्पादक रहमान और बुराई का शैतान है, देखिये सूरत मायदा में लिखा है। इसके बिना नहीं है, कि चाहता है शैतान कि बीच तुम्हारे डाले बैर, और अप्रसन्नता, मदिरा और जूए के द्वारा और हटा रक्खे, तुमको ईश्वर की याद और नमाज़ से, अतः निश्चय उस समय तुम हट जाओ।

सूरत यासीन में है, 'हे आदम की सन्तान क्या मैं ने न भेजा तुम्हारी ओर कि मत पूजो शैतान को, निश्चय वह तुम्हारा प्रत्यक्ष वैरी है, और निश्चय उलटे भाव डाले शैतान ने तुम्हारे विषय में, बहुत सी जनता में, क्या तुम नहीं जानते थे, इत्यादि। इसी भांति सैकड़ों आयतें कुरान में विद्यमान हैं, और हमारे आशय के अनुकूल, क्या यह सम्भव है कि ईश्वरीय कार्यालय में इतना अन्धेर हो, और जान बूझ कर इस विषय में आना कानी की जावे। अज्ञानी, निर्बुद्धि के गहरे और सत्यप्रिय ज्ञानी पश्चात्ताप उठावे। वास्तव में शैतान की पाप युक्त कार्य्यवाही ने संसार का सत्यानाश कर दिया और इस संसाररूपी उद्यान में रक्त की नदी बहा दी। आदम से लेकर आज तक पैगम्बरों के बिना किसी ने शैतान को नहीं देखा और शैतान को पाचन गोली समझ कर पापों का त्याग छोड़ दिया। और साहस पूर्वक पाप करके शैतानके सिर चढ़ने लगे। और इसी भ्रमके कारण शैतान मानने वाली जातियों में पाप बढ़ने लगे। शैतान का नाम (प्रमाण पत्र की भांति) लेते ही, दोनों व्यवस्थापकों से झट छुटकारा है, और पापों तथा अपराधों की लाग से केवल "तौबा" पुकारने से मुक्ति और निबटारा है। ईसाइयों के समक्ष ईसा के अनुयाइयों को छोड़कर शेष सारी सेना शैतान की है। मुहम्मदियों के यहां मुहम्मद के अनुयाइयों को छोड़कर शेष सारी सेना शैतान की है, आतिश परस्तों के

मन्तव्य में "ज़रतुश्त" के अनुयाइयों के बिना शेष सारी सेना "अहरमन" अर्थात् शैतान की है। और हम आर्य लोग तो उसके अस्तित्व को नहीं मानते, इसलिये किसी को शैतानी सेना नहीं जानते। परन्तु जब मन में विचार करते हैं, तो स्पष्ट सिद्ध होता है, "कि खुदा की सेना से शैतान की सेना अधिक है, और शायद यही कारण है, कि कुरान में मुहम्मदी खुदा उससे मुकाबला करने में डरता है, अतः यहां पुनः हमें मिरज़ा गुलाम अहमद के कथनानुसार कहना पड़ा, कि मुसलमानों के यहां दो ईश्वर हैं, एक भलाई का ईश्वर, दूसरा बुराई का ईश्वर। और दोनों सर्वव्यापी और दोनों मुसलमानों पर विजयी, तथा उन से अधिक शक्तिशाली हैं, और सर्वज्ञ भी दोनों हैं, ...और अद्वितीय भी दोनों हैं। जगत् के स्वामी भी दोनों है और उत्तम छलिया भी दोनों। रचयिता भी दोनों हैं, और पालक भी दोनों हैं। और इसको लक्ष्य रखते हुए शैतान की सेना के जीव तथा शरीर आदि के परमाणु अपने अस्तित्व और स्थितित्व में मुहम्मदी खुदा से सर्वथा असम्बद्ध हैं, यहां तक कि यदि खुदा का मरना भी मान लिया जावे, तो भी मुसलमानों का कुछ हर्ज नहीं, और न हानि है। किन्तु ईश्वर कृपा से उसका स्थानापन्न विद्यमान है, जिसका नाम शैतान है

रहस्य।

"किसी मनुष्य ने एक काफ़िर को कहा, कि हे अमुक पुरुष मुसलमान हो, और मोमिन बनजा। उसने कहा कि यदि ईश्वर को मेरा मोमिन होना स्वीकार हो तो वह अपनी कृपालुता से मुझे धर्मात्मा बना देवे। उसने कहा, ईश्वर तेरा ईमान चाहता है, ताकि दोज़ख़ के हाथ से तेरी जान को, छुड़ावे, परन्तु दुश्मन और लानती शैतान तुझे अधर्म्म और पाप की ओर खींचता है। उसने कहा, हे भद्रपुरुष! जब वह (शैतान) विजयी है, तो मैं उसका मित्र हूंगा, जो अधिक बलवान् होगा।' मन और शैतान अपनी इच्छा पर चले, तब दया क्रोध हो गई और बुद्धि मारी गई।

बुराहीनुल अहमदिया भाग १ पृष्ठ ५६ से ६१ तक विज्ञापन में है

दफ्तर ५ मसनवी रूम में एक कविता है जिसका अनुवाद यह है।

हम उदाहरण के तौर पर इस जगह इसी किस्म की एक दलील (हेतु) 'दलाइल मुरक्किबा मुसब्बिता हक़ीक़त फ़ुरकान मजीद से तहरीर करते हैं, और वह यह है, जो तालीम असूल फ़ुरकान मजीद की दलाइल हिकमिया पर मबनी और मुशतमिल है यानी फ़ुरकाने मजीद हरएक असूले एतक़ादी को जो मदार नजात का है, मुहक्क़िकाना तौर से साबित करता है, और कवी और मज़बूत फ़िलसफ़ी दलीलों से बपायाये सदाक़त पहुंचाता है, जैसे वजूद सानेआलम का साबित करना, तौहीद को

बपायाये सबूत पहुंचाना, ज़रूरत इलहाम पर दलाइल क़ातेका लिखना और किसी अहक़ाक़हक़व अबताल बातिल से क़ासिर न रहना, पर यह अमर फ़ुरक़ाने मजीद के मिंजानिब अल्लाह होने पर बड़ी बुज़ुर्गदलील हैं, जिससे हक़ीक़त व फ़ज़ीलत उसकी ब वजह कमाल साबित होती है।

और फिर बुराहीन अहमदिया भाग ४ के पृष्ठ ४३१ पर लिखते हैं कि 'बनिस्बत मुक़ाबला व म्वाज़ना वेद व कुरान के जो नज़र डालेगा, उसे फ़िल फ़ौर दिखाई देगा, कि वेद अपनी इबारत में ऐसा कच्चा और नातमाम है, कि पढ़ने वाले के दिल में तरह २ के शकूक पैदा करता है, और खुदा तआला की निस्बत अनवाओ इक़साम की बदगुमानियां में डालता है, और किसी जगह इस दावे को ताक़तबयानी से बाज़ह करके नहीं दिखाता, और नापायाये सबूत तक पहुंचाता है; बल्कि यह खुद मालूम ही नहीं होता कि उसका दावा क्या है, और अगर कुछ मालूम भी होता है, तो बस यही, कि वह अग्नि और सूरज और इन्द्र की परस्तिश कराना चाहता है, और फिर उस पर कोई हुज्जत और दलील पेश नहीं करता कि कब से और क्योंकर इन चीज़ों को खुदाई का मर्तबा हासिल होगया।

युक्तियुक्त उत्तर तथा वेद और कुरान की तुलना।

प्रिय पाठक वर्ग! आर्यसमाज का चतुर्थ नियम है, कि "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये" प्रत्येक सत्याभिलाषी जानता है, यह नियम कितना उच्च आदर्शका बोधक है, और यदि तनिक गम्भीर दृष्टि से देखा जावे, तो बहुत सी सचाइयां और गुणों का पोषक है। मनुष्य के लिये शतशः आत्मिक उन्नतियां तथा सम्पत्तियों का पथ प्रदर्शक हैं, और बहुत सी आन्तरिक उलझन तथा अविद्या की समस्याओं का निवारक। वेदोक्त धर्म में अन्धाधुन्ध किसी का अनुकरण करना अनुचित हैं, और असत्य पर आक्षेप करना सर्वथा युक्त तथा उचित। जिस बात के समझने में बुद्धि असमर्थ है, उस पर विचार करना सर्व प्रकार से बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता है। इसी बात का इस नियम में समर्थन हैं, और इसी से आर्यसमाज में प्रत्येक असत्य का स्पष्ट खंडन है। जिस मत में प्रश्न करना या शंका करना पतनका चिन्ह हैं, उस बलात्कारी ईमान अथवा छल युक्त विश्वास की असत्यता स्वयं उसकी बाणी से ही स्पष्ट रूपेण सिद्ध हैं। इस पवित्र कथनानुसार हमें उचित है, कि सत्य को पाकर भी सत्य की परीक्षा करते रहें (अर्थात्) सत्य को समझ कर भी चुप न साधलें, किन्तु असत्य के निर्मूल करने में डटे रहें।

अतः वेद भगवान् को सत्य मानने पर भी हमें प्रत्येक मत के प्रति पादन करने वाली पुस्तक (जिसे वह अपना धर्म ग्रन्थ समझते हैं) कोदेखना तथा पढ़ना आवश्यक हुआ। कारण कि जब तक सत्य का मुकाबला न किया जावे, और असत्य को उस के सम्मुख ला कर अकाट्य युक्तियां द्वारा पराजित न किया

जावे तब तक सत्य के लाभ सर्व साधारण पर ज्यों के त्यों प्रकट नहीं होते, और पूर्ण रूप से उन की शंकाओं को खोते हैं।

कविता

कसौटी पर खरे सौने से खोटे को परखते हैं।
मुक़ाबिल वेद अक़दस इस लिये क़ुरआं को रखते हैं॥
भरा है वेद में ईश्वर का ज्ञान ऐ मेहरबां देखो।
सदाक़त और तौहीदे इलाही के निशां देखो॥
पुराने क़िस्सों का मजमुआ है क़ुरआं ज़िसर तापा।
असातीर अव्वलीं है यह ख़ुद उस का ही बयां देखो॥

यदि दुर्जन तोष न्याय वत् स्वामी जी अपने जीवन काल में अन्य मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ करनेको वेद भगवान् की सत्यता की सदा एक रस रहने वाली बहार न दिखाते, तो इस समय आर्य्य सामाजिक उद्यान में यह शुभ तरु कभी देखने में न आते और यदि अन्य मतावलम्बी उपदेशकों को स्वामी जी महाराज वेदोक्त युक्तियों से हमारे सामने खंडन न करते, तो आर्य्य समाज के सभासदों की दिना दिन उन्नति न देखने पाते। नित्य प्रति समाजों और आर्य्य धर्म के उत्तम फल भिन्न २ देशों में लाभ पहुंचा रहे हैं। और क़ुफ़र और शिर्क का अन्धकार दिनों दिन घटता जारहा है। वेदोंके पठन पाठन का सब छोटे बड़ों को ध्यान है, और वेदिक सिद्धान्तों तथा गुणों से प्रत्येक न्याय प्रिय प्रसन्न है। हमारे मिरज़ा साहिब को इस बात पर बड़ा गर्व है कि कुरान उपरोक्त चार हेतुओं से ईश्वर कृत है। चार युक्तियों को उन्हों ने एक ही युक्ति मोना है और मुरक्किबा व मुसब्बिता की व्याख्या से क़ुरान के ईश्वरीय होने के लिये बड़ा भारी प्रमाण जाना है, अतः हमें अत्यन्तावश्यक है कि न्याय और सत्य द्वारा मिरज़ा साहिब की प्रार्थनानुसार कुरान और वेद भगवान् की तुलना करें, उस से सत्य और असत्य को परख और निर्णय करें। अतः हम उन्हीं चार हेतुओं के आधार पर वेद तथा क़ुरान की तुलना करते हैं, और फ़ैसला उस का पाठकों के ज़िम्मे धरते हैं,

कुरान और वेद की तुलना

कुरान से सृष्टि कर्त्ता के अस्तित्व का प्रमाण	वेद से सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व का प्रमाण
सूरत त	तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः दिवीव चक्षुरा ततं। ऋ० १।२ ७।५
वहल अताका हदीसो मूसा······ अला गबमो वलीये फ़ोहा यारब्ब उखरा आई है तेरे पास बात मूसा को जिस	मोक्ष के लिये अन्तिम लक्ष्य या

वक देखी उसने आग। पस कहा वास्ते घर वालों अपनेके कि ठैहरो तहक़ीक़ मैं ने एक आग देखी है। मैं उम्मीद रखता हूं कि लाऊं उस आग से तुम्हारे पास आग सुलगा कर या पाऊं उस आग पर कोई जानकार मार्ग जानने वाला। जब आया उसके पास, आवाज़ आई। 'ऐ मूसा, तहक़ीक़न मैं तेरा रब्ब हूं। अतः उतार डाल जूतियां अपनी। निश्चय तू बीच मैदान पवित्र के है कि नाम उसका तवी है। और मैं ने पसन्द किया तुझको। अतः सुन जो कुछ वही किया जाता है। निश्चय मैं ही तेरा ईश्वर हूं। मेरे बिना किसी को न पूज। पूजा कर मुझे और कायम कर नमाज़ को वास्ते भक्ति मेरी के। निश्चय प्रलय आने वाली निकट है कि लुप्त कर हूं मैं उस को कि बदला दिया जावे प्रत्येक मनुष्य साथ उस कार्य्य के कि करता है। अतः नहीं।

बन्द करे तुम को उस की चिन्ता से वह पुरुष कि नहीं ईमान साथ उस के और चलताहै अपने मन की इच्छा के अनुसार पस मर जावे तू, और क्या है बीच दहने हाथ तेरे के है मूसा! बोला यह मेरी लाठी है इस पर टेकता हूं और पत्ते झाड़ताहूं इससे अपनी बकरियों पर और मेरे इस में कई काम हैं।

और थोड़े से अन्तर के साथ यही कथा सूरा कसस में भी है। पर सूरा नमल में इसका अद्भुत प्रकार से वर्णन है। जहां स्पष्ट लिखा है।

पस जब आया उसके पास पुकारा गया यह कि आशीर्वाद दिया गया जो परम उत्कृष्ट पद या सबके आश्रय योग्य सर्व व्यापक परमात्मा है। सब को पूरे उद्योग से उसकी प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये। उसके ज्ञान से परम आनन्द में रह सकते हैं। सत्य विद्या से ही उसका ज्ञान होता है। और ज्ञान से ही परमात्मा जाना जाता है। जिस प्रकार आकाश नेत्र और सूर्य की व्याप्ति असम्भ्रान्त व्याप्त है ऐसे ही ब्रह्म सब जगह परिपूर्ण एक रस व्यापक है। उसकी प्राप्ति से जीव सब दुःखों से छूटता है और किसी प्रकार नहीं।

इस मन्त्र में परमात्मा ने ४ उपदेश दिये हैं।

(१) ईश्वर के ही ज्ञान से मुक्ति है। इस मुक्ति से बढ़िया सुख, वास्तविक आनन्द अथवा उन्नति का उच्च आदर्श मनुष्य के लिये कोई नहीं।

(२) क्षण भंगुर सुख तथा मोह व अज्ञान जन्य भावों का इसमें नाम तक का भी अभाव है।

(३) ईश्वर न साकार है न शान्त, उसका कोई स्थान या सिंहासन विशेष नहीं है, और न उसको हाजिरी के लिये किसी अमीर वेगी की आवश्यकता है, किन्तु वह सर्वव्यापक है।

(४) विद्या ज्ञान का साधन और ज्ञान मुक्ति का कारण है अतः मुक्ति का परिणाम ईश्वर प्राप्ति है (पर इस सूक्ष्म बात को जानने के लिये एक इस से भी सूक्ष्म युक्ति की आवश्यकता थी जो ईश्वर की ओर से शिक्षा के रूप में दी गई।) परमेश्वर आज्ञा देता है कि जिस प्रकार आकाश में नेत्र की व्याप्ति

*कुछ कि बीच अग्नि के हैं और जो कोई कि उसके गिर्द है। और पवित्रता है लोकों के पालक को।

(२) सूरत फ़ातहा

यह अव्वल सूरत कुरान है,

अलहम्दु लिल्ला अलाज़ुल्आलीन

"तारीफ़ वास्ते अल्लाह के परवर्दगार आलमों का बख़शिश करने वाला मेहरबान, साहिब क़यामत के दिन का, तुझी को इबादत करते हैं हम और तुझी से मदद चाहते हैं हम, दिखा हमको राह सीधी, राह उन लोगों की कि नेमत की है तू ने ऊपर उनके, सिवाय उनके जो ग़ुस्सा किये गये ऊपर उनके और न राह गुमराहों को"

मिरज़ा गुलाम अहमद साहिब ने अपनी पुस्तक बढ़ाने को और इस सूरत की बड़ाई जताने को बुराहीनुल अहमदिया भाग ४ के ३० से कुछ अधिक पृष्ठ काले करके बहुत से ईसाइयों और ब्रह्मओं आदि के क़िस्से उसमें भर दिये हैं, और उनका दावा है और पर वह दृष्टिगत नहीं। दृष्टि अपना काम चला रही है पर दिखाई नहीं देती। जैसे सूर्य्य का प्रकाश आकाश में आसमन्त व्याप्त है और अधिक सूक्ष्म होने से यह आकाशस्थ पदार्थ उसके तत्व को नहीं जानते ऐसे ही एक महान शक्तिमान परमात्मा जगत का नियन्त्रण कर रहा है पर सूर्य की तरह जड़ नहीं और न एक देशी। क्योंकि नाशवान नहीं, इसलिये साकार भी नहीं पर सर्व व्यापक, चेतन और सर्व शक्तिमान है।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यानः प्रचोदयात्।

यजु० अ० ३६ मं० ३

(ओ३म्) सर्व जगत कर्त्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी, ज्ञानमय, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, ईश्वर, हिरण्यगर्भ, अविनाशी (भूः) प्राणों से प्यारा (भुवः) मुक्ति और सब सुखों का दाता (स्वः) सबका धारण करने वाला (सवितः) सब ऐश्वर्य का दाता, (वरेण्यं) जो स्वीकार करने योग्य

---

*अब कुरान के परिणाम पर विचार कीजिये, और झूठ सच को परीक्षा की कसौटी पर लाइये, सूरत "ता" की इस आयत में मूसा से आग ने बातें करके कहा 'हे मूसा! मैं तेरा परवर्दगार हूं' यद्यपि इन कुल उपरोक्त आयतों में बराबर अग्नि के चिन्ह मौजूद हैं, सर्व व्यापक और सर्वज्ञ को "अग्नि की एक चिङ्गारी" में समझना, तवी की भूमि में जूता उतारना, अग्नि की पूजा करना, 'आतिश परस्ती' नहीं है, तो और क्या है? और इसी वास्ते मूसा सोख्तनी कुरबानियाँ (आहुतियां) करके अग्नि देवता को प्रसन्न किया करता था, और उसी को पूज्य समझ कर उससे मुरादें मांगता था, जिससे पूर्णतया सिद्ध है कि मूसा अग्नि पूजक था और कामना करता था कि 'हे आग! फिरोन को जलादे, हे अग्नि नील नदी को सुखादे, हे अग्नि देवता मेरी कुरबानी कबूल कर, हे आग मृत्यु के पश्चात मुझे ख़राब न कर, अग्नेश्वर अपने पुजारियों की रक्षा कर, अग्निमय ईश्वर मेरे पापों को जलादे, हे जलाने वाले मौला दिलजलों का दुखड़ा सुन, सरदी से बचा, और गर्मी के कष्ट से रक्षा कर, आस्मान से उतर कर हममें व्याप्त हो, हे तीव्र रुद्र रूप मुझे मिश्र पर अधिकार दे।' देखिये, यहाँ पर कुरान ने ईश्वरको सिद्ध करनेके बदले एक नई बात निकाली, अर्थात आग को परवर्दगार बतलाया, और मूसा से सिजदा करवाया जिनको खुदा ने आँखें दी हैं, वह निश्चय रूप से देख सकते हैं, कि यह स्पष्ट पाप है।

इस सूरत के विषय में हद से बढ़ गया है, यहां तक कि उनके विचार में यह कुल कुरान की जान या जौहर--उल-कुरान है, इसलिये हम इसको परीक्षा करते हैं ।

"अलहम्दुलिल्ला रब्बिल आलमीन अर्रहमानिर्रहीम"

तारीफ़ वास्ते अल्लाह के परवर्दगार आलमों का बख्शिश करने वाला मेहरबान" यदि कुरानी खुदा इन दो आयतों में वर्णित गुणों से युक्त होता, तो अन्य मतावलम्बियों और पशुओं को मुसलमानों के हाथ से बध न करवाता, क्यों कि बध व घात करना, दयालुता और पालकता के विरुद्ध है, और किसी मनुष्य को विना अपराध के बध करवाना, सर्वथा निर्दयता, क्रूरता तथा घातकता है, न कि दयालुता व करुणा। जिनके हृदय में तनिक भी प्रेम तथा दया का चिन्ह होगा, वह अवश्य कहेंगे कि जो खुदा लोकों का स्वामी और दयालु तथा न्यायकारी है, कुरान उसका इलहाम व ज्ञान नहीं, क्योंकि 'नमे बाशद मुखालिफ़ कौलो फेले रास्तां आहम'

(सच्चों के बचन और कर्म में परस्पर विरोध नहीं होता) और इस बात को अधिक पुष्टि इससे होती है कि सारे संसार के मुसलमान जब किसी पशु को बध करते हैं, तो उस समय 'बिस्मिल्लाहिर्रहमान इर्रहीम' नहीं पढ़ते, किन्तु 'बिस्मिल्लाह अल्लाहो-अकबर' कह कर बध करते हैं, मानो अपने कच्चे विचार में उस समय मुहम्मदी खुदा को संसार का पालक अति श्रेष्ठ (भर्गः) शुद्ध और पवित्र करने वाला (देवस्य) सबके आत्माओं का प्रकाश करने वाला (तत्) उस परमात्मा को, (धी महि) हम धारण करें, (धियो यो नः प्रचोदयात्) जो सवितादेव परमेश्वर हमारी बुद्धियों को सत्य की ओर प्रेरणा करे, और बुरे कामों से बचावे।

इस मन्त्र में सर्वज्ञ जगदीश्वर ने इतनी महत्वपूर्ण प्रार्थना हमें सिखलाई है, जिसके पूरा २ वर्णन करने को एक पुस्तक चाहिये, दयामय परमेश्वर ने जितने आत्मिक ज्ञान सम्बन्धी उपदेश दिये हैं, उनको मनु महाराज और स्वामी व्यास जी व स्वामी शङ्कराचार्य तथा मुनि याज्ञवल्क्य जी ने व्याख्या सहित स्पष्ट करके लिखा है, परन्तु उन सबको समाई इस संक्षिप्त लेख में कठिन जान कर सार रूप से कुछ महात्म्य पाठकों की भेंट करता हूं, इस श्रुति में (ओ३म्) सर्वोत्तम नाम है, जो नाना उत्तम गुणों का भंडार और सर्व प्रकार की महत्ता का आदि स्रोत है, वह सर्व जगत कर्त्ता सर्वाधार और सर्व स्वामी आदि गुणों से युक्त है, जिनसे स्पष्ट प्रगट है, कि जगत का कर्त्ता और सबका आधार और सबका स्वामी एक ही है दूसरा कोई नहीं, इस सारे चराचर महान् जगत का जो बनाने वाला और बनाकर आधार रखने वाला अर्थात उसको नियम में चलाने वाला और सदा महान शक्ति से उसका स्वामी कहलाने वाला जो सारी श्रेष्ठता का आदि स्रोत और सर्वोपकारों का आदि मूल है, वही जानने योग्य है।

और दयालु और न्यायकारी नहीं मानते किंतु सच्चे हृदय से जानते हैं, कि वह गुण उसके दिखलावे के हैं, वास्तविक नाम उसके अत्याचारी, क्रूर, हिन्सक, अन्याई व पशुघातक हैं, जो इस प्रकरण के सर्वथा अनुकूल हैं, यदि वह जगत का पालक न होता, तो क़त्लुल काफ़रीन व अलमुनाफ़क़ीन (काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों को कत्ल करो) क्यों कहता ? उन्होंने उसका (खुदा) का क्या बिगाड़ा था जो विना कारण बलात्कार विश्वास न लाने के अपराध में मारे गये, खुदा को (पालकता) के भी यह बात सर्वथा विरुद्ध है, लोकों का पालक और दीन को तलवार और अत्याचार से फैलावे, काशिफ उलक़ुलूब (हृदयों का प्रकाशक) होकर वध करने को आज्ञा देवे, स्पष्टतया सिद्ध है कि यह आज्ञायें परस्पर विरुद्ध हैं, और एक असत्य बात को दूसरी बात के लिये प्रमाण मानना उसको असत्य ठैहराना है। अतः इस आपस के विरोध से हमें कुरान की सत्यता में बड़ी भारी शङ्का उत्पन्न होती और कुरान को सच्चे ईश्वरीय ज्ञान के पद से गिराना पड़ता है। (मालिके योमिद्दीन) साहिब क़यामत के दिन का, यह शब्द कुरान का अत्यन्त आश्चर्य युक्त है, जिससे ईश्वर पर एक दोष लगता है, क्या परमेश्वर प्रतिदिन न्याय नहीं करता, क्या आदम के समय से मरे हुए लोग सेशन सिपुर्द हैं, तथा नहीं मालूम कि ज़मानत पर हैं या ज्यूडीशल हवालात में, इसके उपरान्त इसी कुरान की सूरत बक़र में खुदा का नाम सरीहउल हिसाब (शो-

दूसरा महात्म्यः—ज्ञानमय, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, यह तीनों नाम ओंकार से प्रकाश होकर इस मन्त्र का दूसरा महात्म्य कहलाते हैं, सारे जगत के प्रत्येक परमाणु का जिसे ज्ञान है, कोई वस्तु जिसके ज्ञान से छिपी हुई नहीं, जो सारे जीवों के उपकार निमित्त अपने ज्ञान मय वेदों को प्रकट करता है जो शरीरधारी और एक देशी अर्थात अर्श पर या पानी पर बैठा हुआ नहीं है, और इसी लिये लम्बाई चौड़ाई व गहराई (प्रतिमा) से सर्व व्यापक होने के कारण पृथक है, अज्ञान और अविद्या से मुक्त और प्रमाद, व्याधि, छलछिद्र, से रहित है, जहां तक योगी जन और बुद्धिमान विचार सकते हैं, उससे भी उसका ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म है वह सर्वान्तर्यामी है, उसका अन्तर्यामी कोई नहीं है, अपनी आज्ञाओं का बदलना ज्ञानमय होने से उस पर लागू नहीं हो सकता आस्मान या किसी विशेष स्थान में होना सर्वव्यापक की निन्दा है, परमात्मा सर्वज्ञ है, सारे दोषों से पृथक, और हर प्रकार की व्याधियों से निर्विकार है।

तीसरा महात्म्यः—हिरण्यगर्भ, ईश्वर, अविनाशी, यह नाम तीसरा महात्म्य है सारे लोक, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि जिसके तेज से प्रकाशमान हैं और जिसकी सामर्थ्य में रह कर तनिक भी बाहिर नहीं जा सकते, जो सबको सदय न्याय से धन, यश, बल और ज्ञान का देने वाला और परिवर्तनशील संसार के विपरीत स्वयं

घ्र हिसाब करने वाला) रखा हुआ है, यदि वह शीघ्र हिसाब करने वाला है, तो "मालिके योमिद्दीन" नहीं और यदि "मालिके योमिद्दीन" है, तो सरीहउल हिसाब नहीं, न्यायी हाकिम का गुण यही है, कि जिस समय अभियोग की घटना की सूचना मिले तत्काल कार्यवाही आरम्भ करे, और अपराधियों को दन्ड देवे, मुहम्मदियों के कथनानुसार इस समय ईश्वर के न्याय का गुण सर्वथा निकम्मा प्रतीत होता है, और संसार का प्रबन्ध और न्याय सम्भव है कोई ख़तमुलमुरसलीन करता होगा, और शायद रब्बुल आलमीन निद्रा में होगा, अन्यथा मालिके योमिद्दीन के क्या अर्थ हैं, क्या वह परमात्मा वर्तमान और भूत भविष्यत् का स्वामी नहीं हैं क्या ईश्वर में निकम्मेपन का अभाव ठीक नहीं हैं. यदि कोई सत्यप्रिय तनिक विचार से देखे तो उस पर इस त्रुटि की वास्तविकता स्पष्ट होजावेगी।

"ईयाकानाबुदो इयाकानस्तईन"

"तुझ ही को इबादत करते हैं, और तुझी से मदद चाहते हैं" यह दो वाक्य देखने में तो अच्छे हैं, और वेद भगवान के कथन के अनुकूल हैं परन्तु 'सहायता चाहते हैं,' में कुछ व्याख्या नहीं की गई कि किस प्रकार की सहायता चाहते हैं बुराईयों में या भलाइयों में जैसे कि आजकल के लाखों पठान आदि मुसलमान चोरी वध और डकैती में 'इय्याक् नस्तईन' की माला फेरते हैं, या सहस्रों मुल्ला लोग जुआ खेलने वालों को यह वाणी सिखलाते हैं, कि यह पढ कर एक रस है जो किसी भांति शारीरिक और कार्मिक बन्धन में नहीं आता, जो अपने न्याय का भी न्यायाधीश, जो माता के गर्भ में कभी नहीं आता, किन्तु सारे संसार के गर्भ जिसके आश्रय हैं, जिसके समक्ष सिफ़ारिश व शफ़ाअत व रिश्वत व डाली ले जाना महा पाप है, जिसको जिब्राईल व मेकाईल आदि का वही वा रिज़क पहुंचाने का आश्रय लेने वाला बताना एक प्रकार की अविद्या है, जो उलटा काम नहीं करता और न कभी उत्पन्न होता और न कभी मरता है, सदैव एक रस अविनाशी है।

चतुर्थ महात्म्य:—यह साधारण नियम है, कि जो जिसको प्यार करता है दूसरे के हृदय में उसका प्रेम उतना ही अधिक प्रभाव डालता और सहानुभूति तथा प्रेम को बढ़ाता जाता है, मनुष्य को सबसे अधिक प्यारे प्राण हैं, जिसके आश्रय शरीर की सारी शक्ति हैं, ईश्वर को प्राणों से प्यारा जानना मानो शरीर और जान का उस पर न्योछावर करना है, और उपासना की यही पहिली सोढ़ी है जो परमात्मा के पवित्र 'भूः' नाम से प्रकाशित है, सच्चा प्रेम इसी से अभिप्रेत है, और वास्तविक भक्ति की यही नींव है, जो इस विज्ञान तत्व से तनिक भी परिचित हैं उनके वास्ते सच्चे आनन्द से कृतकृत्य होना सुगम है।

पांचवां महात्म्य:—संसार में सारे मनुष्य सत्य जिज्ञासुता का दम भरते हैं पर उसके लिये भिन्न २ प्रकार के साधनों का प्रयोग करते हैं, मानो

यदि जूआ खेलने बैठेगा, तो बहुत जीतेगा, जब कभी दैवयोग से कुछ जीतलिया, तो "कलाम" की बरकत से मुल्लाजी की हांडी गर्म होगई, अन्यथा इस प्रकार टाल दिया, कि अपवित्र होकर पढ़ा होगा। सारांश यह कि सहस्रों बदमाश इस भरोसे पर चोरी आदि करके कुछ हिस्सा खुदा के नाम या पीर साहब की नियाज़ (भेट) कर देते हैं, हमारा तात्पर्य यह है, कि बुराइयों के वास्ते खुदा से सहायता मांगनी न चाहिये।

"अहिदना अस्सिरातुल मुस्तकीम"

दिखा हमको राह सोधी, यह वाक्य भी अच्छा है, जब कि सोधी राह से बध करना, रक्त बहाना आदि से बचना और प्रेम सदूव्यवहार सेवा भाव और परमात्मा की प्रजा को सुख पहुंचाना (परोपकार) अभि प्रेत हो, अन्यथा आजकल सोधीराह एक और भी प्रसिद्ध है, यदि खुदा से सोधी राह चाहते हो, तो विद्या बुद्धि को क्यों काम में नहीं लाते, और बुद्धिमत्ता की बातोंसे क्यों भागते हो, कुरान में बुद्धि से तर्क करने को कुफ़र (पाप) मत जानो, और बुद्धि मत्ता की बात जहां हो सत्य मानो, क्या केवल मुसलमानी पथ ही सीधा है,या कोई और भी है यदि कोई और भी है, तो मुसलमान उसको मानने से क्यों चकराते हैं, विश्वास नहीं लाते। भाइयो तुलना करके देखो, और सत्य (अर्थात्) सिरातुल मुस्तकीम को ग्रहण करो, "सिरातल्लज़ीन् अनेअ्मत अलेहिम" उस एक सुख और आनन्द को लोग अपनी इच्छानुसार चाहते हैं, और यही कारण है, कि वञ्चित रह जाते हैं

साक़ो बमये नाब रबते दारद,
मुतरिब बचंगोदफ़ ज़ब्तेदारद।
फ़हमीद न कसे रमूज़े असली,
हरकस बख़यालेख़ेश ख़ब्तेदारद।

(मदिरा पान करने वाले को रुचि मदिरा की ओर है, रागी को तबले सारंगी का प्रेम है, वास्तविक तत्व को किसी ने कुछ समझा नहीं अपने २ ख़याल में प्रत्येक मस्त है) वैदिक परिभाषा में सारे दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है,जिस का दूसरा नाम पूर्ण सुख है, अनित्य अथवा विषय सुखों का वहां पर लेशमात्र भी नहीं क्योंकि यह सभी ईश्वर से इतर तथा वास्तविक आनन्द से हटाने वाले हैं, अतः सत्य ज्ञान से प्राप्त होने वाले सच्चिदानन्द का यथार्थ आनन्द ही वह सुख है जिसका इस पवित्र'भूः'नाम से सम्बन्ध है, सच्चे प्रेम का बढ़ाने वाला और वास्तविक योग के कराने वाला यही उपदेश है जिस से बढ कर सत्य के जिज्ञासु के लिये और कोई इच्छा नहीं।

छटा महात्म्यः—जब हम सृष्टि नियम पर दृष्टिपात करते हैं, और उस सर्वाधार शक्ति का ध्यान धरते हैं, तो अत्यन्त गूढ़ विचार से इस सारे का झुकाव एक विशेष केन्द्र की ओर प्रतीत होता है जो इस अपार संसार को धारण करने वाला है, यह गुत्थी जब तक ईश्वरीय कृपा सहायक न हो, खुल नहीं सक्ती,इस लिये परमात्मा ने महान दयालुता से उपदेश किया है, कि जितना जगत तुम देखते हो या वह

उनका मार्ग जिनपर तूने दया की है (ग़ैरिलमग़ज़ूब अलैहिम) उनके अतिरिक्त क्रोध किया गया ऊपर उनके (वलज़्ज़ालीन) और न भटके हुओंको, जब मुसलमान आवागमन को नही मानते, तब खुदा का किसी को सम्पत्ति, देना और किसी पर क्रोध करना और किसी को कुमार्ग में डालना के अर्थ क्या ? इससे न उसका न्याय कायम रहता है न उसकी दया न उसका ज्ञान, "अनअमत अलैहिम, मग़ज़ूबअलैहिम, वज़ाल अलैहिम सब की ज़मीरें (सर्वनाम) खुदा की ओर फिरती हैं, सो उन कार्यों का कर्त्ता खुदा है, न कि यह लोग, इस वास्ते यह प्रार्थना हानिकारक है, और खुदा पर दोष लगाने वाली है, इसी का अनुमोदन "तफ़सीर हुसैनी" वाला भी करता है, "न राहे आंकसाने कि ख़श्म गिरिफ्ताई बरेशां किब्लुल वजूद व मारिज़ें ग़ज़बे तो दर आमदह व बदां सबब बर कुफ़र इक़दाम नमूदा" (न उन मनुष्यों का मार्ग कि जिन पर तूने उनके जन्म से पहिले क्रोध किया और जो तेरे ग़ज़ब के पात्र बने और इस कारण से पाप कर बैठें। जन्म से पूर्व जब किसी ने कोई कार्य ही नहीं किया उसे बिना अपराध के खुदा के दण्ड का पात्र समझना खुदा को ज़ालिमों का ज़ालिम और मूर्खों का मूर्ख ठेहराना है छिः-छिः।

जो कि तुम्हारे दृष्टि गोचर नहीं है, (अर्थात) लोक लोकान्तर आदि, इन सबको सर्व शक्तिमान सर्वाधार जगदीश्वर ने ही धारण कर रक्खा है, और वह अपने काम में किसी से सहायता नहीं लेता।

सातवां महात्म्यः-'सवितुः' अर्थात् सब ऐश्वर्य का दाता है, प्रत्येक उस से कर्मानुसार फल पाता है, उसे छोड किसी और से मांगना बडी मूर्खता है। कारण कि इस गुण से सम्पन्न होने के योग्य और कोई नहीं। सर्व प्रकार की उन्नति का आधार इसी पवित्र उपदेश को जानना, क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त अन्यों से सम्बन्ध छोड़ने की इसमें आज्ञा है। वेद भगवान एक परमात्मा के अतिरिक्त और किसी को ऐश्वर्यदाता नहीं बतलाते। और न कबरों, शहीदों, और फ़रिश्तों की ओर भटकाते हैं, किन्तु सारे संसार को उस सच्चे दयावान की ओर झुकाते हैं और इसके अतिरिक्त अन्य से बड़ी स्वतन्त्रता से हटाते हैं।

आठवां महात्म्यः—प्रत्येक को भला बनने की इच्छा है, और अज्ञानी से अज्ञानी भी अपने को अच्छा समझता है, सत्य की खोज बहुत थोड़े हृदयों में प्रभाव डालने के कारण अपने चमत्कार दर्शाते हुए भी अज्ञानियों को आंखों में नहीं देख पड़ती, और इसी कारण लोग सत्य मार्ग व सद्धर्म्म तथा सत्य ग्रन्थों के समझने तथा अध्ययन करने से विमुख रहते हैं, किसी मुहम्मदी को यदि आप कितना ही कहें कि खुदा ने संसार के बहकाने को शैतान नियत नहीं किया, यह शिक्षा असत्य है, वह क्रूरता तथा अत्याचार और क्रोध तथा छल से रहित है अतः क़हार व जब्बार नहीं और न मक्कार है परन्तु वह किसी भांति नहीं मान सकते। क्योंकि कुरान की शिक्षा चाहे उसमें कुछ ही हो, उनको

र र प्रकार मान्य है, वैदिक धर्म्म या सत्योपदेष्टा यह उपदेश नहीं देता, किंतु औरों के विपरीत अत्यन्त सत्यता पूर्ण रीति तथा अपार कृपा से बतलाता है, कि यदि श्रेष्ठ बनना चाहो तो श्रेष्ठता का भण्डार स्वीकार करने के योग्य जो अति श्रेष्ठ "वरेण्यम" सर्वोत्तम है, दूसरा कोई नहीं, उसी की उपासना मनुष्य जन्म के वास्ते आनन्ददायक है।

नवां महात्म्यः—यह उपदेश वेदभगवानकी एक उच्च महिमा तथा पवित्रता और शुद्धता को दर्शाता है, शुद्धता (अर्थात् बुराइयों से बचना, पवित्रता, जीव को उसके ध्यान में लगा कर योग अर्थात् उपासना से जोड़ कर प्रार्थना करना, कि हे मेरे स्वामी! आप तेजोमय हैं, इस सर्वोत्तम अर्थात पवित्र तेज का मेरी आत्मा में प्रकाश कीजिये, आप अन्धकार से आच्छादित नहीं हैं, अतः मुझे भी अज्ञान से निकलने की सामर्थ्य दीजिये, ईद को बकरी और भेड़ें तेरा भोजन नहीं, और न तू इतना निर्दयी और अन्यायी है कि तेरे पेट के वास्ते निर्बल पशु वध किये जावें, न रक्त पीता है, और न वध को चाहता है तू भेड़ियों की भांति लहू नहीं पीता, और न क्षुधातुर होता है, खून तेरे दरबार में नहीं पहुंचता, किन्तु तेरे से दूर हटता है, पवित्रता की पूर्णता केवल तुझ में है, न कि किसी और में।

दसवां महात्म्य—इस पवित्राज्ञा से पूर्ण निश्चय होता है, कि वास्तविक प्रार्थना और शांति देने वाली उपासना वही है, जिस के करने से उपासक के हृदय में किसी भांति की शंका न रहे, जो उसकी प्राप्ति के साधन हैं, प्रथम उनका ज्ञान अत्यन्तावश्यक है, और यह बताना उस मतका कर्तव्य है, जो पूर्णता की प्रतिज्ञा करता है मुहम्मदी बेचारे क्या करें? और कहांसे लावें, जब कि कुरान में दूध, शहद, शराब, पानी की नहरों और हूर तथा ग़िलमान के अनार पिस्तानों और चन्द्रमुखियों के अतिरिक्त आत्मिक आनन्द का चिन्हमात्र भी नहीं है, और सैकड़ों स्थान पर इन्हीं प्रकार के प्रलोभनों का अज्ञान और मोहजाल फैलाने वाला वृत्त बार २ लिखा गया है, जिन से किसी सत्यप्रिय को सन्तोष होना स्वीकार नहीं किया जासकता, वास्तविक मोक्ष अथवा पूर्ण शान्ति देने वाली उपासना के परिणाम पूछने वाले के वास्ते उनके हां "ज़ुलफ़िकार" की युक्ति है, और युक्तियुक्त तर्क के बदले इन नेहरों के प्यासों की शान्ति के लिये मृगतृष्णा जल की प्याऊ एक अच्छी उक्ति है, परन्तु हे पाठकवृन्द! जिस प्रकार गंगा पर पहुंच कर तृषातुर मनुष्य तृप्त होते हैं, उसी भांति उस सब की आत्माओं के प्रकाश करने वाले प्राप्ति योग्य, ज्ञान के सागर परमात्मा से जो ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान की चार नेहरें, ऋग, यजु, साम, अर्थव वेद, प्रकाशित हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य्य से प्राप्त होकर सर्व प्रकार की शान्ति, उपलब्ध होसकती है और उससे सिद्ध है, कि सर्व श्रेष्ठ गुणों का अधिष्ठाता, सर्वोत्कृष्ट दानों का निर्माता, दयानिधान सर्वोपकार की खान, प्राप्ति योग्य और सर्व ज्ञान दाता एक परमात्मा है दूसरा कोई नहीं।

ग्यारहवां महात्म्यः—संसार में जितने मत हैं, बुद्धि को संदूक में बन्द कर ताला लगाना अपना पहिला नियम जानते हैं, और इन मतों में से * फ़स्ट नम्बर दीन मुहम्मदी का है. "एजाज़ मुहम्मदी के लेखक ने पृ० १११ पर लिखा है, शरा वालों ने दर्शन शास्त्र तथा पदार्थ विद्या के अध्ययन से मना किया है।

इल्म दीं फ़िक़ा अस्तो तफ़सीरो हदीस।
हर कि खानद ग़ैर अज़ीं गरदद ख़बीस॥

'इस्लामी विद्या फ़िक़ा, तफ़सीर और हदीस है, जो कोई इस के अतिरिक्त पढ़ता है काफिर होता है।' परन्तु वेद में आज्ञा है, कि सदा ज्ञानमय बुद्धि विधाता परमेश्वर से बुद्धि की वृद्धि और ज्ञान पूर्वक आत्मिक शान्ति बढाने की प्रार्थना करनी चाहिये, क्योंकि उस पूर्ण ज्ञान स्वरूप के सारे काम ज्ञान में सम्मिलित हैं, जब बुद्धि न्याय, और सत्य व ज्ञान पूर्वक विचारती है, तो सैंकड़ों सूक्ष्म रहस्य जो अज्ञानता से समझ में नहीं आते, अत्यन्त स्पष्ट और उत्तम रूप से दिखाई पड़ते हैं, प्रत्येक बुद्धिमान् जानता है, कि सत्य और असत्य की कसौटी बुद्धि के अतिरिक्त और कोई नहीं और बुद्धि का प्रकाशक ज्ञान है, या दोनों परस्पर में समवाय सम्बन्ध रखते हैं इस वास्ते पूर्ण बुद्धिमान, पूर्ण ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ने "धियो यो नः" से उपासना का उपदेश दिया है।

बारहवां महात्म्यः—उस सर्वज्ञ ज्ञान स्वरूप ईश्वर की ओर से बड़ी युक्त रीतिसे इस सच्ची प्रार्थना की स्वीकृति का विश्वास दिलाया गया है, और यही विश्वास प्रेमी भक्त के लिये शान्ति का कारण है, प्रत्येक सत्यप्रेमी जीव "प्रचोदयात्" के पवित्र शब्द से आत्मिक योग का पाठ सीख सकता है, जो भक्तिभाव तथा सच्ची भक्ति के लिये परम आवश्यक है, सच्चे हृदय तथा सद्भाव और उचित साधनों को युक्त रीति से प्रयोग में लाकर अपने दयामय स्वामी का साक्षात् करके इसी पवित्र तथा उत्तम क्रम से प्रार्थना करना वह परिणाम दिखलाता है जिस से दिन प्रतिदिन आत्मिक दुर्बलता व शारीरिक निर्बलता तथा अपवित्रता दूर होकर उस ज्ञानमय विधाता को अपनी स्थिर बुद्धि से मनुष्य जानता है, और यही इस मन्त्र का भावार्थ है।

---

* एक मौलवी गुलामअली साहिब अरबी भाषा के बड़े विद्वान् अमृतसर में रहते हैं, एक बार उनसे भेंट करने को गया, उस समय मौलवी साहिब मसजिद में अपने एक शिष्य को पाठ पढ़ा रहे थे, कि "यशिया" नबी ने सायंकाल हो जाने के कारण सूर्य को कहा, कि खड़ा रह मेरे काम में हर्ज होता है अतः वह खड़ा रहा अस्त न हुआ" मैंने निवेदन किया, कि आप विद्वान् हैं, और युक्तायुक्त से भिज्ञ है, तब इन बातों की आप कैसे शिक्षा देते हैं, पहिले तो मौलवी साहिब टाल मटोल करते रहे, थोड़ी देर के पश्चात स्पष्ट मान लिया कि यदि हम न मानें, तो लोग हमें काफ़िर जानें, प्रत्येक बुद्धिमान जानता है, कि जो बात तर्क से सिद्ध नहीं है, उसको किसी दशा में मानना सर्वथा मिथ्या और व्यर्थ है।

कुरान

(१) सूरत नजमः—व अलनजम् इजा हवा ·········· रब्बिल कुबरा

खुदा कहता है, कि "क़सम है मुझे सितारे की जब गिर पड़ता है, गुमराह नहीं हुआ यह यार तुम्हारा, और रस्ता नहीं भुलाया और अपनी इच्छा से बात नहीं करता, कुरान नहीं है, मगर वही जो भेजा गया तरफ उसकी, उसको शक्तिमान ने सिखलाया है, फिर सीधा बैठा, और था वह ऊंचे किनारे आस्मान के, फिर नजदीक हुआ, और लटक आया, फिर रह गया अन्तर दो कमान का मियाना या उससे भी नज़दीक, फिर हुक्म भेजा अल्ला ने अपने बन्दे पर जो भेजा झूठ न देखा, दिल ने जो देखा, अब तुम क्या उससे झगड़ते हो, उस पर जो उसने देखा, एक दूसरे उतारे में, परली हद का बेरी के पास, उस पास है बहिश्त रहने को, जब छिपा रहा था, उस बेरी को जो कुछ छिपा रहा, भूली नहीं निगाह, और हद से नहीं बढ़ी, बेशक देखे अपने रब की बड़े नमूने"

पाठकवृन्द, यह वृत्तान्त उस रात का है, जिसको मुहम्मदी १८ वर्ष की बताते हैं, इस रात्रि को मोहम्मद साहिब का "मेराज" पाना अर्थात् पृथ्वी से आसमान तक मेराज (जीना) लगाना, जिसकी व्याख्या फैजी करता है:—

बिनिहादददरां बुलन्द मिन्हाज।
हफ्ताद हज़ार पाये मेराज॥

(उस ऊंचे फ़ासले में सत्तर हजार पाया ज़ीने रखे) और इस जीने (सीढ़ी) पर से बुराक़ की

वेद

परीत्यभूतानि परीत्यलोकान परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च उपस्थाय प्रथम जामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश॥ य० अ० ३२ मं० ११।

परमात्मा आकाश आदि सर्व भूतों में और सूर्य आदि सब लोकों में और पूरब आदि सब दिशाओं में और "आग्नेय" आदि उपदिशाओं में भी अपने अनन्त ज्ञान से व्यापक हो रहा है, जिसके ज्ञान और व्यापकता से एक परमाणु भी अज्ञात या रिक्त नहीं है, जो अपनी भी सामर्थ्य का आत्मा है, वही कल्प आदि में सृष्टि अर्थात जगत की उत्पत्ति करने वाला है, उस आनन्द स्वरूप ब्रह्म को जो जीवात्मा अपने सामर्थ्य अर्थात मन, बुद्धि ज्ञान से यथावत् जानता है, वह दुःखों से छूट कर मुक्ति पाता है।

(१ परमात्मा सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है आकाश यद्यपि हर वस्तु में व्यापक है, परन्तु परमात्मा उसका भी आश्रय और ज्ञानमय है, सूर्य सब को प्रकाश देता है, परन्तु उसका प्रकाशक और ज्ञाता और रचयिता परमेश्वर है, जगत का कोई परमाणु भी उससे छिपा हुआ या उसकी सत्ता और व्यापकता से बाहर नहीं है, किसी प्रकारका अज्ञान उसमें नहीं है, इन सब बातो के अतिरिक्त वह अपने नित्य ज्ञान में भी कभी भूल नहीं करता, (२) मन बुद्धि, विद्या से उसके ज्ञान के वास्ते उद्योग करना चाहिये, अर्थात उसको मन बुद्धि और विद्या से भी प्यारा जानना चाहिये, अर्थात इन तीनों का मुख्योद्देश्य ईश्वर को

सवारी पर चढ़ आना और सात आस्मानों के ऊपर अर्श और कुरसी आदि तक पहुंचाना, और (सदरतुलमुनतहा') एक बेरी के पेड़ के साथ आस्मानों पर घोड़ा बांधना, और पैदल चलना, जहां पर खुदा कहता है, कि नज़दीक हुआ और लटक आया, फिर रह गया, मुहम्मदी खुदा और मुहम्मद साहिब के बीच में दो कमान का अन्तर या उससे भी बहुत निकट बैठे थे, जैसा कि एक भाष्यकार बताता है कलामे सरमदीये नकल विशनीद। खुदाबन्दे जहां रबे जेहत दीद॥ (ईश्वर के वचनों को प्रत्यक्ष रूप से सुना, जगदीश्वर को प्रत्यक्ष देखा) फिर खुदा ने जो हुक्म देने थे सम्मति पूछनी थी, या मश्विरा लेना था, एकान्त में उसे पूरा करके खुदा साहिब कहते हैं कि उस बेरी पर कुछ छा रहा था, अर्थात वहां क्या था. फिर स्वयं ही सर्वज्ञ होने के कारण अकाट्य हेतु की भांति सत्य के मंडन और असत्य के खण्डन को लक्ष्य रख कर (वाह २ क्या अच्छी तरह) कहते हैं, और उत्तर देते हैं कि जो कुछ छा रहा था, [सम्भव तया अमर बेल होगी, अब दूसरा युक्त उत्तर सुनिये। (प्रश्न) जो कुछ मुहम्मद साहिब ने वहां पर देखा वह क्या था? (युक्त उत्तर) जो कुछ उसने देखा, सो देखा, भूला नहीं निगाह और हद से नहीं बढ़ा, शोक कि सुनेहरी चिड़िया जाल में फंसी थी, और निकल गई। वास्तव में खुदा बहुत ही

प्राप्ति जानना। जब इस अवस्था तक सच्चे हृदय से कोई जीव परमात्मा की शरणागत होता है, तब कुकर्मों से बच कर मोक्ष का भागी बनता है। (३) पापों से बचने के वास्ते इससे बढ़कर कोई औषधि नहीं. कि अपने स्वामी परमेश्वर को सर्व व्यापक जान कर पापों से घृणा करे. अनुभव की बात है कि बड़े २ पापियों और दुष्टों ने उस समय तक पापों से मुख न फेरा, जब तक कि उनको ईश्वर के अन्तर्यामी होने का ज्ञान न हुआ, (४) जो किसी खास दिशा में होगा, वह सीमित होगा, और कोई सान्त पदार्थ अन्तर्यामी वा सर्वव्यापी नहीं हो सकता, क्यों कि यह सर्वथा असम्भव है, इस वास्ते परमात्मा ने उपदेश दिया है, 'परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च' वह सब दिशाओं उपदिशाओं में व्यापक और ज्ञानमय है, अर्थात किसी विशेष दिशा में वह सीमित नहीं, किन्तु उसको किसी विशेष दिशा में जान कर उपास्य बनाना सर्वथा अनीश्वरवाद है. क्योंकि वह किसी विशेष दिशा वा स्थान में नहीं। अतः सिद्ध हुआ कि इस सारे चराचर का स्वामी तथा नियन्ता और सबसे बड़ा और सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं का भी अधिष्ठाता और साथ ही ऐसा पूर्ण जो त्रुटि रहित है, इस पर भी जो अनन्त निराकार और सत्य ज्ञान से मुक्त है, वही ब्रह्म है दूसरा कोई नहीं।

अभिलाषी था, एक स्थान पर "मराजुल नबुव्वत" में लिखा है, कि दो सौ बार उस रात को खुदा ने आवाज़ दी 'निकट आ' 'निकट आ' भाष्यकार इस स्थान पर गहिरे विचार के सागर में डूबे हुए हैं, और सैकड़ों प्रकार की व्याख्यायें घड़ते हैं, परन्तु शोक कि कोई सन्तोष जनक उत्तर नहीं दे सकते, (क्रमशः) अतः हुआ,

(क़ाब) परिमाण में (क़ौसेन) दो कमान के (औअदना) या अधिक निकट। खुदा और मुहम्मद साहिब के बीच दो कमान या उससे भी कम अन्तर का रहना खुदा के परिमित होने की साक्षी है, सर्व व्यापक की निकटता को दो कमान के अंतर से नापना बुद्धि का दोष है और विद्वत्ता से दूर, इसलामी काल से आज तक इस पर आक्षेप होते रहे, परन्तु जब कभी उत्तर मिला तलवार से, कभी युक्तरीति से किसी ने व्याख्या नहीं की। जब बात इस हद तक पहुंची और व्याख्या करते २ यह विषय अत्यन्त त्रुटि पूर्ण होगया, तो अब बहुत से मुहम्मदी लोग दो कमानों को एक केन्द्र जान कर मुहम्मद साहिब को उस पर एक व्यास की न्याई डालते हैं, यह नहीं सोचते, कि अधिक व्याख्याओं से कल्पित विषयों की हानी होती है, जो सर्वथा निष्फल है, परन्तु इस प्रकार की चिन्ताएं उनको हैं, जो किसी सांसारिक स्वार्थ के कारण दीन इस्लाम को नहीं छोड़ना चाहते, और केवल कल्पित बातों से मन को सन्तुष्टि करते हैं अन्यथा यथार्थ ज्ञान के आगे अब इस प्रकार के विषय भद्दे और बोदे हैं, **सात आस्मानों** की व्याख्या भाष्यकार यूं करता है, कि एक धुयें का, दूसरा पानी का, तीसरा लोहे का, चौथा पीतल का, पांचवां चांदी का, छटा सोने का, सातवां ज़मुर्रद का। बेरी के बूटे की व्याख्या हदीसों और तफ़सीरों में बहुत सी है, कोई उसका बेर मटके के बराबर, कोई घड़े के बराबर वर्णन करता है, इसी आयत के आरम्भ में खुदा अशिक्षित स्त्रियों की न्याईं सितारे के डूबने की सौगन्द खाता है। न्यायप्रिय मुसलमानो! यह है ज्योतिष विद्या शक्तिशाली ईश्वर की ओर से दी हुई, जो वह अपनी इलहामी (ईश्वरीय) पुस्तक में सर्वज्ञता से प्रकाश कर रहा है। प्रिय पाठकवृन्द! इस सूरत नजम की वास्तविकता तथा सत्यता को आप सच्चे दिल से विचार कर सत्य को ग्रहण करें, और असत्य को त्याग देवें।

क़ुरान

(४) सूरत क़लम

'यौमू यकशफ् अन साक़िन व तद ऊना इलस्सुजूदे फ़ला यस्तती ऊन। जिस रोज़ जामा उठाया जावेगा, पिंडली से और बुलाये जावेंगे, लोग वास्ते सिजदा करने के, पस न कर सकेंगे। इस आयत की व्याख्या शाह वली उल्ला साहिब इस प्रकार करते हैं, कि "क़यामत के दिन मुसलमानों के पास खुदा आवेगा, जिस सूरत में न पहचान सकेंगे"।

वेद

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। य० ४०। ८।

सबका मन का साक्षी, सबके ऊपर विराजमान, सर्व व्यापक, अनन्त बल वाला, सर्व प्रकार के शरीर से रहित, हानि, वृद्धि तथा रोग से मुक्त, नाड़ी आदि के बन्धन से रहित, सर्व प्रकार के दुःखों से पृथक और सब दोषों से

और खुदा कहेगा, मैं तुम्हारा रब्ब हूं, मेरे साथ आओ, कहेंगे, नऊज़ुबिल्ला हमारा रब आवेगा, तो हम पहिचान लेवेंगे, कहेगा, कुछ उसका चिन्ह जानते

पवित्र और शुद्ध है, वही सब जगत का परमात्मा अपनी अनादि प्रजा को अन्तर्यामी रूप से वेद के द्वारा सत्य विद्याओं का उपदेश किया करता है।

हो, कहेंगे जानते हैं हम, फिर अगर होगा, उनके जानने के अनुसार और पिंडली खोलेगा, तो सिजदे में गिरेंगे, जो सच्ची नियत से सिजदा न करेगा, उसकी पीठ न मुड़ेगी, उलटा गिरेगा। तफ़सीर फतह उलरहमान वाला लिखता है, कि 'रोज़' कि जामा बरदाश्ता शवद अज साक़ व खान्दा शवद पर्शा रा बराय सिजदा पस नतवा नन्द" मिश्कात शरीफ़ के बाबउल हशर में है, इस आयत के हवाले से कि "रब" हमारा साक़ खोलेगा, पस हर मोमिन मर्द और मोमिना औरत उसको सिजदा करेंगे, तफ़सीर मुआलिम उलतनज़ील प्रकाशित हैदरी प्रेस बम्बई १२९५ ई० पृ० ८२८ में लिखा है, "क़ाल समअ़त .... अलसुजूद, (अर्थ) मुहम्मद साहब से सुना गया है, कि उस रोज़ हमारा परमात्मा अपनी तेजोमय पिंडली खोलेगा, और सिजदा करेंगे, उसको प्रत्येक मोमिन मर्द और स्त्री, और बाकी जिन लोगों ने सिजदा छल कपट और जगत दिखावे के लिये किया होगा, पस वह छलयि सिजदा न कर सकेंगे, और पीठ उनकी एक पारा हो जावेगी, और हदीस में है कि काफ़िर और मुनाफ़िक़ की पीठ गाय के सिर की न्याईं एक मोहरा हो जावेगी, अतः सिजदा न कर सकेंगे। पाठक वृन्द! इस आयत को ध्यान से देखिये, वह अनुपम अद्वितीय भगवान मुहम्मदियों का कहता है, कि क़यामत के दिन में तुम को अपना दर्शन दूंगा, और तुम नहीं मानोगे, और फिर मैं तुम्हारे आग्रह करने पर पिंडली से कपड़ा उठा कर बताऊंगा, तब तुम सिजदे में गिरोगे। आश्चर्य और शोक का स्थान है, कि खुदा उतावला तथा क्रोधी होने के कारण कपड़ों से बाहिर हुआ जाता है, और नहीं शरमाता, स्यात् क्यों क्या ऐसी शिक्षा रहमान रहीम की ओर से है और क्या निराकार के रूपहली पिंडली भी हैं।

क़ुरान

[५] सूरत एराफ़ में है।

इन रब्बकुम .... अलल अर्श

(अर्थ) 'तहक़ीक़ खुदा तुम्हारा वह है, जिसने पैदा किया आस्मान और ज़मीन को छः रोज़ में और तत्पश्चात् ठहरा ऊपर अर्श के।' यह बात ज्यों

वेद

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।

ऋ० मं१० सूक्त १२१ मं० १

हे जीवो! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्य आदि तेज वाले लोकों

की त्यों तौरेत से नकल की हुई है, सर्व शक्तिमान का जगत को छः दिन में बनाना, और तैय्यार करने के पश्चात निश्चिन्त होकर अर्श पर चढ़ कर आराम करना क्या सर्व शक्तिमान की शिक्षा हो सकती है।

जब कि स्वयं कुरान ही में उसके विरुद्ध लिखा विद्यमान है, देखो सूरत इनाम की यह आयत "वहोअल्लज़ो की उत्पत्ति का स्थान आधार और जो कुछ उत्पन्न है, हुआ था, और होगा, उसका स्वामी था और है और होगा, वह पृथ्वी से सूर्य लोक पर्यन्त सृष्टि को बनाकर अपनी अनन्त शक्ति से धारण कर रखा है, उसी एक परमेश्वर की भक्ति करनी आवश्यक है, और किसी की नहीं। फयकून" और वह है जिसने उत्पन्न किया आस्मानों को और ज़मीन को साथ हक़ के, और जब कहता है, कि हो, पस हो जाता है।"

अब हे मुहम्मदी विद्वानों! हम किस बात को सच मानें, और किस को झूंठा। ईश्वर की वाणी और इतना अन्धेर, यह सदैव नियम है, कि प्रत्येक आदमी अपनी शक्ति अनुसार काम करता है, ईश्वर जो सब वस्तुओं का स्वामी है, शोक कि उनके बनाने में इतना चिन्तातुर और दुखी होवे, और छः दिनरात में एक क्षणभर भी न सोवे और निरन्तर काम करता रहे, और हदीस में वर्णन है, कि उसने आदमको मिट्टी को भी चालीस दिन तक अपने दोनों हाथों से खमीर किया, जिससे ज्ञात होता है, कि बड़ा परिश्रमी है, जिस के चालीस दिन एक आदम के पुतले बनाने में खर्च हुए, भला उसकी कारीगरी का क्या ठिकाना, वह हदीस यह है, "खमरत तीनत् आदम् बेयदी अरबईना सबाहन्" जिनका खुदा संसार बनाने में इतना दुर्बल है, क्या उनकी किसी और विद्या सम्बन्धी विषय में पहुंच हो सकती है? यहां पर बहुत से प्रश्न उत्पन्न होते हैं, प्रथम यह कि आदम के पुतले के लिये मिट्टी कहां से मिली, और क्या केवल "कुन फ़यकून" कहने से शरीर तय्यार न कर लिया, इस नाशवान शरीर के वास्ते तो चालीस दिन दोनों हाथों से परिश्रम करता रहा तब उत्तीर्ण हुआ, और अब उस नित्य जीव के लिये उत्पत्ति का ज़िक्र न किया, कि किन २ मसालहों से इसको कितने वर्षों में खमीर किया, मिट्टी की उत्पत्ति भी कुरान से प्रकट नहीं होती, कि कहां से आई, यदि प्रकृति अनादि नहीं मानते, तो कुरान के लेखक को अत्यन्तावश्यक था, कि इस बात को स्पष्ट विस्तृत युक्तियों से सिद्ध करता, परन्तु उसने नहीं किया, किन्तु वह संसार के उत्पन्न करने से ही लाचार है, उत्पत्ति के वृत्तान्त से सूचित करने का तो कहना ही क्या है, और खुदाई का प्रबन्ध वह सम्भाल भी नहीं सकता, क्योंकि उस जैसे बहुत से ईश्वर जाति से उसके साथ हैं। अब विचार का स्थान है कि न प्रकृति, और न जीव की उत्पत्ति की व्याख्या मिलती है किन्तु केवल संक्षिप्त रूप से संसार की उत्पत्ति का वर्णन है, अतः अवश्य मिट्टी से आदम का शरीर बनाया, और अनादि प्रकृति से ज़मीन (पृथ्वी)

बनाई, और अनादि जीव को उस में फूंका, अन्यथा किसी प्रकार का पूर्ण उत्तर कुरान नहीं देसकता, "अगर दर खाना कस अस्त हमीं इबारत बस अस्त" (यदि घर में कोई है तो इतने ही शब्द पर्याप्त हैं।)

कुरान

(६) सूरत कहफ़ कुरान

"कुल इन्नमा ...... वाहिद"

(अर्थ) मैं भी एक तुम्हारे जैसा आदमी हूं, वही किया गया सिवाय इसके कि अल्ला तुम्हारा अल्ला एक है। अब देखना चाहिये, कि इसमें कौन सी उत्तम दार्शनिक बातें मुहम्मद साहिब ने दिखाई। जहां तक उलट पुलट कर देखा गया, फ़लसफे का पता नहीं और हो कहां से "बरतन से वही टपकता है जो उसमें है।" अरब वाले अल्ला को पहिले ही मानते थे, और सत्य हृदय से जानते थे, कि खुदा एक है, प्रमाण यह कि मुहम्मद साहिब के बाप का नाम अबदुल्ला था, ऐसी अवस्था में कि वह मक्के के मन्दिर का पुजारी था, इससे कोई नई शिक्षा प्रगट नहीं होती।

सूरत फतह, इन्न लज़ीन्... ऐदीहिम

अर्थः—जो लोग हाथ मिलाते हैं, तुझ से वह हाथ मिलाते हैं अल्लाह से, अल्लाह का हाथ है ऊपर उसके हाथ के,

यहां पर मुहम्मद साहब के हाथ को कुरानी खुदा का हाथ बतलाया है और उससे हाथ मिलाना खुदा से हाथ मिलाना जतलाया है। क्या यही एकेश्वर की शिक्षा है?

उस अनुपम के हाथ बतला कर स्पष्ट द्वैतवाद की शिक्षा दी है, कि मुहम्मद ही के हाथ खुदा के हाथ हैं, और उस से हाथ मिलाना खुदा से मिलाना है,

वेद

न द्वितीयो न तृतीयश्च...

अ० का० १३ अ० ४ मं० १६

इन मन्त्रों से भली भांति सिद्ध होता है, कि परमेश्वर एक है उससे भिन्न न कोई दूसरा न तीसरा और न कोई चौथा परमेश्वर है, न पांचवां न छठा, और न कोई सातवां ईश्वर है, न आठवां न नवां, और न कोई दसवां ईश्वर है किन्तु वह सदैव एक अद्वितीय ही है, उससे भिन्न दूसरा ईश्वर कोई भी नहीं उसी परमात्मा के सामर्थ्य में सब पृथ्वी आदि लोक ठहर रहे हैं, इन मन्त्रों में जो दो से लेकर दस तक (और इससे अधिक, ईश्वर होने का निषेध किया है वह इस अभिप्राय से है कि सारी गणित विद्या की नीव इन अंकों पर है और सब संख्या का मूल एक अंक ही है, इसी को दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, और नौ बार गिनने से २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ अंक बनते हैं, और एक पर शून्य देने से दस का अङ्क बनता है, उनसे एक ईश्वर का निश्चय करोके वेदों में दूसरे ईश्वर के होने का सर्वथा निषेध ही लिखा है, अर्थात् उसके एक होने में किसी भांति का भेद नहीं, किन्तु जो सच्चिदानन्द आदि लक्षण युक्त एक रस परमात्मा है, वही वेदोक्त रीति से जानने योग्य है, सब जगत् में परिपूर्ण और सब लोकों को रच कर अपने सामर्थ्य से धारण कर रहा है, अर्थात्

तो उनके दूसरा खुदा होने में किसे सदेह हो सकता है, जो स्पष्टतया मूर्ति पूजा है। ऐसा निश्चय हो सकता है, कि खुदा की ओर झुकाते २ अन्तिमकाल में हज़रत को खुदा बनने का भी ख्याल आगया था, और बहुतसे मनुष्यों को अपनी उपासना की ओर भी फेरने लगे थे, इसका अनुमोदन उस खुतबे से होती है, जो उनकी मृत्यु के पश्चात हज़रत उमर ने पढ़ा था, (देखो मुहम्मद साहब का जीवन वृत्तान्त) और खुदा के हाथ ठहराने और फिर अपने हाथों को खुदा के हाथ बताने में या तो "हमा ओस्त" (नवीन वेदान्त) की शिक्षा है, या अपने को पुजवाना और द्वैतवाद का प्रचार करना है जो सत्य और एकेश्वर वाद से कोसों दूर है।

वह सर्व शक्तिमान है, इसके उपरान्त सर्वज्ञ होने से उसने गणित विद्या की बहुत सी आवश्यकताओं को इस में हल करके एक अत्यन्त, युक्त पड़ताल का नियम भी प्रकाश किया है, और वह यह है।

२,	३,	४,	६
५,	६,	७,	१८
८,	९,	१०,	२७
२१,	१८	१२,	

अब, १५, १८, २१, २७, १८, ९ कम करते है या ९ कम करते जांय तो शेष कुछ नहीं रहेगा, और यह उत्तरको जांच का नियम बहुत उचित है। योग, बाकी, गुणा, भाग, के किसी प्रश्न की शुद्धि, अशुद्धि की जांच, इस से अत्यन्त उत्तमता से हो सकती है। सारांश यह कि वह जो इस अधिक सख्या से रहित और शून्य भी नहो वह एक ईश्वर है। यदि कोई आक्षेप यह शंका करे, कि ३ और ९ जो कि नियम हैं इस के अतिरिक्त ५, ७ जो नियम हैं इन से क्यों बाकी नहीं होती, तो इस शङ्का का यह उत्तर है, कि प्रथम तो स्वयं अन्तर्यामी जगदीश्वर ने बाकी वाले अङ्कों की गणना ९ बार की है इस वास्ते ९ ही से कटी होनी चाहिये, और यही नियम युक्त है, अन्य नहीं, दूसरा उत्तर इस शंका का यह है, कि श्रुति में तीन २ अङ्कों की गणना की है अतः तीन पर ही काट करनी चाहिये, और यही ठीक है, और न किसी और अशुद्ध नियम पर अर्थात ५ वा ७ से गणित की जांच होनी है, अतः यही दो नियम पड़ताल के उत्तम हैं, इसी तृष्टि के नियम से और बहुत सी गणित विद्या के नियम और रहस्य खुलते है, परन्तु संक्षेप के कारण अधिक व्याख्या नहीं की गई। जिन की आंख सत्य की ओर खुल सकती है, जिन के हृदयों में न्याय की योग्यता है वह ध्यान से विचार करें, कि इन वैदिक श्रुति में पूर्ण उपदेष्टा ने किस प्रबलता से ऐकश्वाद को विद्वता से प्रगट किया है, और कैसे उचित नियम से द्वैतवाद का खंडन करके 'एको ब्रह्मद्वितियो नास्ति', जतलाया है,

कुरान	वेद
७ सूरत नजम	
अफरा आयतुम ‥ ‥ लतुल्तजा	आं स नो बन्धुर्जनिता स

अर्थ-तुम देखते हो, लात, उज़्ज़ा और मनात बुतों को यह तीनों बुत बड़े बुज़ुर्ग हैं, और इनको शफ़ाअत की आशा रखनी चाहिये।

सूरत नजम के उतरने के समय मुहम्मद साहिब काबे में (जिन दिनों काबे में बुत थे और पूजा होती थी) बैठ कर सूरत नजम सुना रहे थे।

उस समय वहां पर काफिर और मुसलमान मिले हुए पदक्षिणा करते थे, जब सारी सूरत पढ़ चुके, तो मुसलमानों और काफ़िरों ने मिलकर सिजदा किया, और लोग अत्यन्त प्रसन्न होगये, कि अब मुहम्मद सत्यपर आगया, और जिस प्रकार कि हमबुतों को शफीजानते हैं, इसी तरह कुरान में भी याद किया। तफसीर मुआलिम उल तनज़ील में है काल इब्न अबास ·· ···फ़रे हुवही।

(अर्थ) इब्न अब्बास व मुहम्मद बिनकाब अलकुरज़ी और इनके अतिरिक्त सारे भाष्यकारों ने कहा है, कि जब मुहम्मद साहिब ने देखा, कि इनकी जाति कुरान को नहीं मानती तो उन्होंने अपने हृदय में इच्छा की, कि ख़ुदा की ओर से कोई ऐसी आयत कुरान में उतरे, कि जो जाति में और उनमें मित्रता उत्पन्न करे, सो ऐसा ही हुआ, कि एक दिन मुहम्मद साहिब कुरेश की सभा में उपस्थित थे, कि ख़ुदा ने सूरत उलनजम उतारी, अतः रसूलिल्लाह ने उसको पढ़ा, जब कि मुहम्माद साहिब इस सूरत के वाक्य अफ़राय तुम से लउज़ा तक पहुंचे

विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृत मानशानास्तृतीये धामन्नध्यरयन्त ॥ यजु॰ अ॰ ३२ मं॰ १०

परमात्मा ही हमारा सहायक और वही पालन करने वाला और वही सारे जगत का धारण करने वाला सब धाम अनेक लोक लोकान्तरों को रचकर अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है, इसी के आश्रय से दुःख रहित मोक्ष पद को हम प्राप्त होते हैं कभी उसके अतिरिक्त कोई सहायता और उपासना के योग्य नहीं है

इस श्रुति में पारब्रह्म जगदीश्वर ने आज्ञा दी है, कि सारे धार्म्मिक लोगों का इस प्रकार निश्चयात्मक होना चाहिये, कि हमारा सहायक वही एक परमेश्वर है, उस के अतिरिक्त कोई सहायता देने वाला वा पालन करने वाला नहीं है, सारे लोक लोकान्तर सूर्य, पृथिवी चांद, तारे, ग्रह नक्षत्र आदि अर्थात् सारे संसार का रचने वाला, चक्र धारण करने वाला और जानने वाला वही सर्व शक्तिमान् और सर्वज्ञ ईश्वर है, और कोई चेतन, वा जड़ रक्षक वा उपासना वा पूजा के योग्य नहीं है कर्म, उपासना और ज्ञान का वास्तविक तात्पर्य उसकी प्राप्ति है, और वही न्यायकारी अपने भक्तों को मोक्ष देने वाला है, जो मनुष्य सच्ची प्रेम भक्ति तथा वैदिक उचित रीति से उसकी शरणागत होता है. वही सुख को प्राप्त होता है जो न दौड़े तेरी राह में, टूटे वह पाओं। सर वह कट जावे नहो जिसमें कि सौदा तेरा।

"अफ़रा आयतुम से अलउज़्ज़रा" तक पहुंचे शैतान ने उनकी जिह्वा पर वह बात डालदी. जिसकी वे इच्छा करते थे, अर्थात् वह वाक्य ......जिसका अर्थ है कि मूर्तियां बड़ी पूज्य हैं, और निश्चय उनसे शफ़ाअत (सिफ़ारिश) की आशा रखनी चाहिये, अतः कुरैश यह सुनते ही *प्रसन्न हुए, "तफ़सीरज़ाद-उल आख़रित" में जो पद्य में है इस प्रकार लिखा है।

इसका मंशा कई तरह आया। अहले तहक़ीक़ ने यह फरमाया॥
कि लगे पढ़ने एक रोज़ रसूल। सूरते नज्म को जो था नज़ूल॥
जब यह आयत ज़बान पर लाये, इक तवक्कुफ़ (१) के साथ पेश आये॥
दिल में डाला जो देव ने विश्वास, रोते अज़राह(२) सहव खैरुलनास(३)॥
"अफ़रायतुम .... ततुरतजी"
सुन के मुशरिक (४)हुए निहायत शाद (५)। समझे हज़रतने वह मिफ़तकी याद॥
अलगरज जब आखीर सूरत पर। करने सिजदा लगे जो है सरवर (६)॥
आये सिजदे मे जुमला अहले यक़ीन। और साथ उनके मुशरिकाने लईन (७)॥
पस किया अर्ज़ हाल सरतासर। जिबरईलने अमीन (८) ने आकर॥

*यह समाचार चारों ओर प्रसिद्ध हो गया, कि जब मूर्ति पूजकों के साथ मुहम्मद साहिब ने मेल कर लिया, थोड़े काल के पश्चात् जब किसी कारण से जो "पारी मुरीदी" की इच्छा मे अभिप्रेत है, फिर जो दुःखित हुआ, तो झट यह आयत रद करदी, कि वह खुदा की वाणी नहीं है, शैतान की है, शैतान ने मेरे मुख में डालदी थी, और एक आयत भी सूरत हज की उतार ली, कि शैतान पहिले भी और पैग़म्बरों के साथ ऐसा ही किया करता है, इस आयत को रद जानो, कई भाष्यों (तफ़सीरों) में अत्यन्त स्पष्ट करके भी लिखा है, परन्तु 'तफ़सीर हुसैनी' वाला इसको प्रकट करना उचित नहीं समझता। खैर इसका पूरा वृत्तान्त 'मुआलिम' व जलालैन व बेज़ावी', व मौलाहिब 'दिलदुलकह्हमीन' में वर्णित हैं, इस पर आक्षेप यह है कि (प्रथम) तो मूर्तिपूजन और मूर्तियों की प्रशंसा खुदा की ओर से कुरान में विद्यमान है, जिस से पूर्ण निश्चय है कि कुरान हक़ (ईश्वर) की ओर से नहीं है, केवल मुहम्मद साहिबका मनघड़न्त है (द्वितीय) जब 'लाहौल' पढ़नेसे मुहम्मदियों के कथनानुसार शैतान भाग जाता है, तो क्या कुरान पढ़ने, हज करने और मक्के फिरने से दूर नहीं होता, और इस के उपरान्त क्या मक्के में जासकता है या नहीं, (तृतीय) साधारण बुद्धि वाला मनुष्य भी नहीं मानेगा, कि शैतान मुहम्मद साहिब के शब्दों में अपनी आयत मिलावे, और वह सर्वथा अनभिज्ञ रहें। (चतुर्थ) वह प्रतिज्ञा भी झूठी होगई, कि 'बनाओ' कुरान जैसी कोई सूरत, अतः स्वयं ही मुहम्मदियों के कथनानुसार शैतान ने रहमान जैसी आयत बनाली, और इस को लालित्य और विद्वता पर आज तक किसी ने शंका न की, और न स्वयं खुदा ने शैतानकी ललित भाषाकी अशुद्धियाँ निकालीं। (पञ्चम) कोई सत्यप्रिय मुसलमान (जैसे सैय्यद अहमदखाँ साहिब बहादुर आदि) कभी नहीं मान सकते कि शैतान कोई व्यक्ति है अतः यह केवल कटाक्ष और दोष ही है। परन्तु पूर्ण विश्वास और निश्चित् विषय है, कि कुरान मूर्ति पूजा की शिक्षा आवश्यकतानुसार अवश्य देता है।

गर ज़रूरत बुवद रवा बाशद, बे ज़रूरत बुतों लता बाशद,

(१) रुकना (२) भूलसे (३)भद्रपुरुष (४)द्वैतवादी (५)प्रसन्न (६)सरदार (७)लानत (८) दूत

सुनके हज़रत हुए बसा महज़ूं (१), तब तसल्ली को पहुंची आयत यूं ॥
मा अरसलनामिन कब लिक, इत्यादि
और न भेजा था हमने ऐमक़बूल (२), तेरे आने से पहिले कोई रसूल ॥
और न कोई नबी किया इरसाल (३), पर लगा जब कि बांधने वह ख़याल ॥
डालने यकबयक लगा इब्लीस, इसके बांधी ख़याल में तलबीस ॥
फिर हटा देवे ख़ालिक़ उस शै को, वह जो शैतान ने दिल मे डाली हो ॥
फिर करे हुक्म उस्तवार (४) खुदा, अपनी आयात और निशानी का ॥
और खुदावन्द इल्म वाला है, हिकमत उसकी बयां से वाला है ॥
(तफ़सीर ज़ादतुल आख़िरत से उद्धृत)

अब इस तुलना से न्याय प्रिय सज्जन सत्य की शिक्षा, और एकेश्वरवाद के प्रमाण का (जो स्थाली पुलाक न्याय से वर्णित किया गया है) अनुमान कर लेवें। वेद में सृष्टि कर्त्ता ईश्वर की एकता का इतना अधिकता से वर्णन है, कि जिसका सहस्रांश भाग भी और पुस्तकों में नहीं है। वेदवेत्ता महात्मा स्वामी गौतमाचार्य्य जी ने वेद से सृष्टि कर्त्ता ईश्वर की सिद्धि इस उत्तमता से प्रकट की है, कि जिस के अनुयायी तथा शिष्य यूनानी, फ़ारसी, मिश्री, और चीनी विद्वान् हैं। अपनी प्रारम्भिक टिप्पणियों में वह सारे इस महात्मा के सूक्ष्म विचारों के गुण गायक हैं, इसी उद्देश्य से अपने समय के इस अपूर्व विद्वान् ने न्याय दर्शन रचा, और संसार को नय्यायक, तार्किक (लाजीशियन) बनाया। वैदिक एकेश्वरवाद के विषय में शहज़ादा दारा शिकोह साहिब "सर्र अकबर" में लिखते हैं "कि अकसर कुतुब तसव्वफ़..........ई किताब क़दीम बाशद" तसव्वुफ की बहुत सी पुस्तकें देखी गई, परन्तु एक ईश्वर प्राप्ति की पिपासा जो एक अथाह सागर है, अधिक होती गई, और ऐसे गम्भीर विषय विचार में आये, जिनका हल ईश्वरीय ज्ञान के बिना सम्भव नहीं, और क्योंकि कुरानमजीद में बहुत से रहस्य युक्त भेद है, और उसके जानने वाले थोड़े हैं, इच्छा हुई कि सारी इल्हामी पुस्तकों को देखा जावे, अत तौरेत, इंजील, ज़बूर, और दूसरी पुस्तकों पर दृष्टि डाली, परन्तु उनमें भी तौहीद का वर्णन संक्षिप्त और रहस्य मय था, अतः इस बात को मालूम करने लगा, कि एकेश्वरवादी भारत में ईश्वर सम्बन्धी चर्चा क्यों अधिक है, तथा स्थूल व सूक्ष्म दर्शी क्यों अधिक हैं, भारत निवासियों को प्राचीन ईश्वर की एकता से इन्कार नहीं न ईश्वर भक्तों पर कोई आक्षेप है अपितु उन पर उन्हें विश्वास है वर्तमान काल के मूर्खों के विपरीत कि जो अपने आप को विद्वान् समझते हैं और ईश्वर के ज्ञानियों तथा भक्तों से विमुख रह कर उन्हें काफ़िर कहते और दुःख देने में लगे हुए हैं, और इस प्रकार यह ईश्वरीय मार्ग मे डाकू हैं, अतः बहुत आलोचना के पश्चात् ज्ञात हुआ कि हिन्दुजाति में चार पुस्तकें ईश्वरीय ज्ञान की है जो ऋग, यजु, साम, अथर्व वेद हैं और यह उस समय के ऋषियों पर सारे विषयों के सम्बन्ध में प्रगट हुई।

(१) दुखी (२) प्यारा (३) भेजा (४) दृढ

यह अर्थ उन्हीं पुस्तकों से प्रगट हैं, और भक्ति तथा एकेश्वरवाद के सारे गुप्त रहस्यों का सारांश जिन पुस्तकों में लिखा है, उनको उपनिषद् कहते हैं, चूंकि ईश्वर की वास्तविक भक्ति का ध्यान था इसलिये इच्छा को, इन उपनिषदों को जो भक्ति के भंडार हैं, फ़ारसी भाषा में लावें। उपनिषद् शब्द संस्कृत में गुप्त भेदों के अर्थ में हैं। अत: यह जाति उनको मुसलमानों और अन्य धर्म्मावलम्बियों से यहां तक कि बहुत सी हिन्दुओं की जातियों से भी छिपा कर रखते हैं *और सारे ईश्वर भक्तों का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर है। निस्वार्थभाव से इसका

---

*मुसलमानोंसे छिपानेका यह अभिप्राय था, कि वह पक्षपातसे तथा अविद्यासे अन्य मतों की पुस्तकों को जला दिया करते थे। ऐसा न हो, कि हम सद्धर्म्म की पुस्तकों को भी जला देवें, अन्यथा वेद में कोई ऐसी आज्ञा नहीं है। किन्तु वेद भगवान् सारे संसार के लिये हैं न कि किसी विशेष देश के लिये इसका प्रमाण इसी पुस्तक में अन्य २ स्थानों पर विद्यमान है। यदि कोई मुसलमान इनकार करे कि मुसलमान विद्या सम्बन्धि पुस्तकों को नहीं जलाते थे, तो हम साक्षी देते हैं और वह यह है:—

"सिकन्दरिया के पुस्तकालय की तबाही"

* जब सिकन्दरिया पर मुसलमानों का अधिकार होगया और सेनापति उमर इस स्थान का अधिष्ठाता हुआ, तो उसने फैलकूस सिकन्दरिया के प्रसिद्ध दार्शनिक और अपूर्व विद्वान् से भेंट की। उमर विद्या प्रेमी, और विद्वत्ता पूर्वक वार्तालाप का अत्यन्त इच्छुक था। अतः इस विद्वान् के सत्सग और वार्तालाप से ऐसा प्रसन्न हुआ, कि दिल से उसका मान करने लगा। एक दिन फेलकूस ने सेनापति की सेवा में निवेदन किया कि आपने सिकन्दरिया के सारे वस्तु भण्डारके सामानों और सरकारी गोदामोंका निरीक्षण कर लिया है और हर प्रकार के सामानो पर मोहर छाप लगादी है, अत: जो वस्तु आप के काम में आने वाली हैं, उनके सम्बन्धमें कुछ नहीं कह सक्ता, परन्तु जो आपके कामकी नहीं, और इनमेंसे कई सम्भव है, मेरे लाभकी है। यदि मेरी प्रार्थना अनुचित न हो, तो वह मुझे देदी जावें "उमर" ने पूछा "आप कौनसी वस्तु मांगते हैं।" फेलकूसने कहा, कि सोना नहीं, जवाहिरात नहीं, और कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं, केवल दार्शनिक पुस्तके हैं, जो सरकारी पुस्तकालय में निष्प्रयोजन पड़ी हैं। उमर ने उत्तर दिया कि इस प्रार्थना की स्वीकृति मेरे अधिकार से बाहिर है, और मैं इस विषय में अमीरुलमोमनीन हज़रत उमर फ़ारूक की आज्ञा के बिना कोई आज्ञा नहीं देसक्ता। इस पर स्वीकृति मंगवाने के लिये एक पत्र ख़लीफ़ा की सेवा में भेजागया। वहां से उत्तरमिला, कि यदि इन पुस्तकोंके लेख कुरान के अनुसार हैं, तो उनका तात्पर्य्य कुरान में आचुका, और वह अब व्यर्थ हैं, और यदि उन में कोई बात कुरान के विरुद्ध है, तो हमको इन से घृणा है, तत्काल जलादी जावें, उमर ने आज्ञा का पालन करते हुए सारी पुस्तकें सिकन्दरिया के हमामों में बांट दी, और आज्ञा देदी, कि इसको जला कर "हम्माम" गर्म किये जावें। कहते हैं, कि निरन्तर छः मास तक हम्माम इन्हीं पुस्तकों की अग्नि से गर्म होते रहे। पाठक वृन्द! तनिक इस घटना को पढ़ो, और विचार करो, कि इस के पढ़ने से हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है। सारांश यह कि जगत के इस प्रसिद्ध पुस्तकालय की इति श्री का भी यही समय था, और मूर्खता तथा अन्धकार के विराजमान होने के काल का प्रारम्भ भी इसी से हुआ। 'कई हिन्दुओं की कुछ जातियों' से आशय बुद्ध और जैन है। जो सत्य धर्म की अनुचित निन्दा को अपना धर्म जानते हैं, और वह प्रायः परमात्मा के अस्तित्व से इनकारी हैं, यही नहीं बल्कि उस जगदीश्वर से ठट्ठा करते हैं।

अनुवाद १०६० में किया, और जो आपत्ति आती व जो कुछ वह चाहता और न पाता था, इस प्राचीन पुस्तक में उसे प्राप्त होना था, जो निःसन्देह पहली इल्हामी पुस्तक ज्ञान का आदि स्रोत और भक्ति का सागर और कुरानमजीद के अनुकूल बल्कि इसकी व्याख्या है। जब कि सिद्ध होता है कि सूरत वाक्या की यह आयत स्पष्ट रूप से इस प्राचीन पुस्तक के विषय में है, इन्न……रब्बिल आलमीन, अर्थात् कुरान करीम ऐसी पुस्तक में है कि वह पुस्तक छिपी हुई है, और उसका ज्ञान पवित्रात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं पासकता, और यह जगदीश्वर से प्रगट हुआ है, और मक्नून शब्द से स्पष्ट ज्ञात होता है, कि यह आयत तौरेत इंजील और जबूरके सम्बन्धमें नहीं, कि वह गुप्त नहीहै औरतंजील के शब्द से ऐसा ज्ञान होता है कि लौहे महफूज के सम्बन्ध में भी नहीं है, क्योंकि उपनिषद् जिसके अर्थ गुप्त भेद है, इस पुस्तक की असल है, और कुरान मजीद की आयतों के अर्थ ज्यों के त्यों उसमें पाये जाते हैं, अतः यह तहकीक होगया, कि किताब (मक्नून) छिपी हुई यही प्राचीन पुस्तक होगी।*

पाठकगण! वेद के अध्याय के अध्याय एकेश्वरवाद से भरपूर हैं, और कल्पनाओं तथा किस्सों से दूर हैं। यहां पर तुलना करने की आवश्यकता नहीं रही, क्योंकि स्वयं मुसलमान उमरा [illegible] के कथनों में सिद्ध हो चुका है। परन्तु मुसलमानों से एक आवश्यक निवेदन है कि आदम, व हव्वा, व शैतान, व मूसा व नूह व इबराहीम व यूसुफ व खिजर व [illegible] व लुकमान व सिकन्दर व असहाब कहफ व याजूज माजूज व उमराव जकरिया व ईसा व मरियम व मुहम्मद साहिब के भक्त [illegible] तथा लड़ाई जहाद व सामरी, यूनस, यहिया, दोज़ख, बहिश्त का नहर का वृत्तान्त हूर, कसूर, गिलमान, खरात, जकात, हज, महरान, संगअसवद, निकाह, मुता, हलाल, हराम, कुर्बानी, आदि की कहानियां निकाल कर शेष क्या रह जाता है! यदि आप न्याय से पढ़ेंगे, तो भली भांति जान जावेंगे, कि कितना ईश्वरीय ज्ञान शेष रहता है।

करते हैं। इस वास्ते उन लोगों को पुस्तक नहीं दी जाती थी। इसके उपरान्त उन से बड़ा भारी वैरभी था, क्योंकि स्वामी शंकराचार्य ने उनसे सैकड़ों शास्त्रार्थ करके उनको पराजित किया था, जिस का पूरा विवरण शंकर दिग्विजय में है, अन्यथा किसी और हिन्दु जाति को निषेध नहीं है।

*राजा राममोहनराय ब्रह्मसमाजके प्रवर्त्तक की सम्मति

(पत्र तत्ववोधिनी सभा कलकत्ता मुद्रित सन् १८३४ पृष्ठ ८ पंक्ति १६ से उद्धृत)

"मैं विश्वास करता हूं कि इन बातों के पढ़ने से आपको निश्चय हो जावेगा कि वेदों में न केवल गोत्र विद्या, आयुर्वेद तथा धनुर्वेद ही है अपितु उन में सदाचार स्वभाविक दार्शनिक विचार (Natural Philosophy) और सर्व प्रकार की विद्यायें तथा शिल्पादि का भी वर्णन है। इसका प्रमाण यह है कि वो सब विद्यायें जिन का भिन्न २ शास्त्रों में उल्लेख है, केवल वेदों से निकाली गई हैं"

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता पर अकाट्य हेतुओं का लिखना

सारा कुरान पढ़ने के पश्चात जितना भी विचार कर देखा गया, कोई आवश्यकता कुरान के इलहाम को ख्याल में न जची। उसके ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध व निश्चित होने का तो कहना ही क्या ?

उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त यदि कोई उत्तम बात कुरान से सिद्ध करे, जो वेद में न हो, तो हमें भी कुछ कहने का अवसर मिले, और इसके उपरान्त वही बातें या इससे उत्तम बातें कुरान से पहिली पुस्तकों में विद्यमान हैं। अतः इससे तो किसी को इन्कार नहीं, कि इन पहली पुस्तकों ने वह बातें कुरान से नहीं चुराई, परन्तु दूसरे पक्ष के जुम्मे यह दोष अवश्य है जिससे उसकी सत्यता और ईश्वरीय ज्ञान होना सर्वथा असिद्ध है। यदि कुरान में कोई बात ऐसी है जिसका पहिले अज्ञान या अभाव हो, तब ईश्वरीय ज्ञान होने की आवश्यकता मानी जा सकती है, अन्यथा किसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान नहीं होसकता, "अलइस्लाम नहुतुलसफ़" तर्क का तो आपके यहां काम ही नहीं, कौन इन्कार कर सकता है, कि अलसैफ उमुल्लइस्लाम नहीं कुरान प्रबल तर्कसे सर्वथा शून्य है,इसी लिये निवद स्थानके समय वाक्य हैं। 'लकम दीनकम तलोदीन' और अत्याचार के समय या ऐहाउलनवी कत्तुल काफ़रीना का शब्द है, जो तुलना चा. नीचक चन्द्रमा का माहे नखसब से है, वही तुलना वेद भगवान के साथ बनावटी इलहामों को। जिस प्रकार नित्य नवीन सूर्य्य के बनाने की आवश्यकता नहीं, जिस भान्ति प्रति दिन नई पृथ्वी घड़ने की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार एक ही बार पूर्ण ज्ञान जो परिवर्तन रहित है पूर्ण ज्ञान ईश्वरीय शब्दों में जो सर्वदा एक रस है अर्थात् 'वेद' परमात्मा ने सर्वसाधारण के उपदेश के लिये प्रकाश किये है। अब सूर्य्य के होने पर भी यदि कोई आंखे बन्द करले, तो सूर्य्य का दोष नही,किन्तु उस हठी दुराग्रही को देखने की आवश्यकता नहीं।

सत्य के मंडन और असत्य के खंडन में असमर्थ रहना।

सत्य के मण्डन में जितना कुरान असमर्थ है, उतना ही असत्य के खण्डन में भी असमर्थ है। सात आस्मानों और सात ज़मीनों का होना, पृथ्वीपर पहाड़ों को मेखों (खूंटों) के समान ठोकना, ताकि पृथ्वी हिल न जावे, सूर्य्य का कीचड़ के चश्मेमें डूबना, बाबल के कुएं में हारूत व मारूत का बन्द होना, दूध, शहद, शराब की नदियों का बहना, सुलेमान के समय जानवरों का बोलना, इत्यादि सत्य के प्रकाश करने से सर्वथा त्याग होरहा है, अन्यथा संसार भर के ऐतिहासिक तथा भूगोल, और ज्योतिष के विद्वान् इनका एक स्वर खंडन करते हैं। इसी प्रकार असत्य के खंडन में भी सचाई की आंख दूर है,और कहीं भी प्रकाश नहीं, किन्तु सब ओर अमावस्या की रात्रि है "बैतुल्ला मक्के की ओर सिजदा करो, वही खुदा का घर है

इसकी ओर से फिरकर सिजदा करना अनुचित ही नहीं किन्तु पाप और अपराध है। हज और तवाफ़ से पुण्य ही नहीं किन्तु पाप भी दूर होते हैं, ज़म जम के कूप के निकास ही स्वर्ग की नहरा के आते हैं, ज़मज़म का पानी हृदयसे पापों के काले धब्बे धोता है, और "हजरउल अस्वद" की पूजा करने व चूमने से पाप क्षमा और मुख पवित्र होता है, काबे तथा मदीने की यात्रा से हृदय प्रकाशित होता है उमरा के दौड़ने तथा पशुवधसे ईश्वर को प्रसन्नता है। इसी प्रकार सुन्दर रूपवती हूरों और लाल रुखसारों वाले लौंडा का ढंग भी और है जिन के हाथों से बहिश्त वालों को पाकीज़ा शराब के प्यालों का दौर है, कैसान के बुत हजर उल अस्वद की पूजा को न हटाया, आदमको सिजदा करने की स्पष्ट आज्ञा दिलाई, असत्य खण्डन के विपरीत बेचारे न मानने वाले को फटकार बतलाई, शककुल-कमर (चान्द का टुकड़े होना) की सृष्टि नियम विरुद्ध शिक्षा, अर्श के बराबर खुदा के अस्तित्व को वर्णन करना आदि मिथ्या बातों के खंडन का तनिक भी यत्न नहीं किया गया, और प्रत्यक्ष मूर्ति पूजा के चिन्ह तथा शिक्षायें विद्यमान और सप्रमाण हैं। नहीं मालूम कि इतना अन्धकार होते हुए भी मिरज़ा साहिब किस प्रकार "अलनादिर किलमादूम"(अत्यल्प अभाव सम है) का विज्ञापन देकर कहते हैं कि, बुरहान उल अहम्दिया, तथा नबुव्वत उल मुहम्मदिया का प्रमाण है, और अरबी शब्दों के जाल में लम्बी इबारत से कागज काले कर कुरान के इलहामी होने का लोगों से मनवाना चाहते हैं. जो सर्वथा असम्भव और विचार में भी न आने के योग्य है। शोक! कि मिरज़ा साहिब उसके एकेश्वरवाद को दार्शनिक तर्क के अनुकूल बतलाते हैं, और प्रमाण गाली गलोच के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखलाते हैं। मैंने दोनों पुस्तकों का ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान ऊपर लिख दिया है, और प्रत्येक का मन्तव्यामन्तव्य प्रकट किया।

मिरज़ा साहिब गाली गलोच में कुरान की फिलासफी (दार्शनिकता) सिद्ध करते हैं, और तुलना तथा शास्त्रार्थ में पग धरते हैं, परन्तु शोक कि सत्य को इन बातों से नफ़रत है, और धर्म को अपशब्दों से अदावत है।

अब पाठक वृन्द स्वयं ही न्याय करें, कि कुरान और वेद में से कौन शब्द तथा अर्थ की दृष्टि में कच्चा और अपूर्ण है। कौन एकेश्वरवाद के फैलाने और द्वैतवाद के मिटाने में निर्बल और असमर्थ है। मूसा का अग्नि के सामने किसने शीश झुकाया, और इबराहीम का सूर्य को किसने निर्माता तथा पालक ठेहराया है। अग्नि, चन्द्र, सूर्य और तारा को उपास्य देव कौन बतलाता है। और फरिश्तों को ईश्वर का स्वरूप कौन ठेहराता है। परन्तु मिरज़ा साहिब जब संस्कृत से अनभिज्ञ हैं, तो उनका वेदों को बुरा बताना अविद्या का चिन्ह है। शोक कि वह स्वयं मानते हैं, कि 'मालूम नहीं वेद का दावा क्या है।" जब उनको वेद का दावा ही ज्ञात नहीं, तो फिर इस अनभिज्ञता के होते हुए क्यों बेहूदा अज्ञानता की धूम मचाते और संसार में अपनी अयोग्यता की मिट्टी ख़्वार कराते हैं।

सखुन बायद बदानिश दर्ज करदेन। चुज़र संजोदनांगाहखर्चे करदन॥
(बात बुद्धिमत्ता से कहनी चाहिये, जैसे धन पहिले इकट्ठा किया जाता है और पश्चात् खर्च किया जाता है)

बुराहीन अहमदिया लेखक का आक्षेप (पृष्ठ १०३ भाग २)

(वादी) ईसाइयों में बइस्तस्नाय (अतिरिक्त) उन लोगों के जिनको तहज़ीब और तहक़ीक़ से कुछ ग़र्ज़ नहीं, इस वक्त हज़ारहा ऐसे शरीफ़ उलनफ़्स (भद्र पुरुष) मुन्सिफ़ मिज़ाज पैदा होते जाते हैं, कि जिन्होंने दिली इन्साफ़ से अज़मत शान इस्लाम को क़बूल कर लिया है, और तसलीस के मसले का ग़लत होना और बहुत सी विदअतों का ईसाई मज़हब में सम्मिलित हो जाना अपनी तस्नीफ़ात में बड़ी शद्दोमद से बयान किया है। मगर अफ़सोस कि यह इन्साफ़ हमारी हम वतन आर्य क़ौम से विदा आता है। इस क़ौम को ताअस्सुब ने इस क़दर घेरा है, कि अंबिया का अदब से नाम लेना भी एक पाप समझते हैं। और तमाम अंबिया को कमरेशान करके और सबको मुफ़्तरी और जालसाज़ ठहरा कर यह दावा बिला दलील पेश करते हैं, कि एक वेद ही खुदा का कलाम है, जो हमारे बुजुर्गों पर नाज़िल हुए थे, और बाक़ी सब इलहामी किताबें जिनसे दुनियां को हज़ारहा तौर का फ़ायदा तौहीद और मारिफ़त इलाही का पहुंचा है, वह लोगों ने आपही बनाली है।

(प्रतिवादी) जो कुछ मिरज़ा साहिब ने ईसाइयों के सम्बन्ध में लिखा है, उसका उत्तर कोई पादरी साहब देंगे, हमारा काम केवल उनके दावों का अयथार्थता करना है।

ईश्वर जाने संसार में क्या अन्धकार छाया है कि अपनी आंख का शहतीर कई पक्षपातियों को नहीं सूझता, परन्तु दूसरों की आंख का तिनका भारी मालूम होता है। इस्लामी पक्षपात संसार में प्रसिद्ध है, और इससे प्रत्येक विद्वान् का मन दुखित है। अनुचित पक्षपात से मनुष्य को अवश्य बचना ज़रूर है, पर सत्य प्रकाशी तथा धर्म का पक्षपाती होना भी प्रत्येक सत्य प्रिय को मंजूर है। अब आर्यसमाज का सातवां नियम है कि यदि कोई आर्य "सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वरतना चाहिये।" अतः दुर्जनतापन्यायेन यदि कोई आर्य अनुचित पक्षपात करता है, तो यह धर्म के विरुद्ध उसका व्यक्तिगत अपराध है। परञ्च हां, किसी बुरे को अच्छा और अच्छे को बुरा कहना, सभ्यता से दूर है, जहां तक मुझे विदित है, आर्यसमाज के सदस्य सदैव प्रेम और सद्व्यवहार के साथ अन्य मतावलम्बियों से बात चीत करते हैं। परन्तु अनुचित श्लाघा और मिथ्या टालमटोल और सत्य को छुपाने से निसन्देह डरते हैं। यह भी अपना धर्म समझते हैं, कि किसी पर मिथ्या दोष न लगावें और जो बात कहें अन्य मतावलम्बियों की पुस्तकों से सिद्ध कर दिखावें। इसके प्रमाण के लिये एक वास्तविक उदाहरण रखता हूं। मिरज़ा साहिब स्वयं ही न्याय को काम में लावें, और सत्य व असत्य में तमीज़ फरमावें। एक दिन खास क़ादियान नगर

में मिरज़ा साहिब के मकान पर बैठे हुए एक वर्ष भर वहां ठैहरने की शर्तें तै हो रही थीं। बात चीत करते हुये "ख़वारिके आदात्" शब्द की व्याख्या होने लगी, लेखक की ओर से यह प्रतिज्ञा थी, कि "ख़वारिके आदात्" स्वभाव को तोड़ने को कहते हैं। चाकू में काटने का स्वभाव है, और आग में जलाने का, वृक्ष में अचलता और मनुष्य में चलने का स्वभाव है इत्यादि। आप यदि उन स्वभावों को ईश्वर की बरकत से तोड़ दें तब मुसलमान हो जाऊंगा। अन्यथा आप आर्य हो जावें, और मिथ्या प्रतिज्ञाओं से हट जावें। मिरज़ा साहिब ने कहा, कि कुरानी परिभाषा में इस शब्द के यह अर्थ नहीं हैं। लेखक ने कहा, कि यह शब्द ही कुरान में नहीं है, अन्यथा दिखाओ कहां है। मिरज़ा साहिब ने इक़रार किया कि कुरान में अवश्य है। लेखक के पास कुरान था, उसी समय सामने रक्खा, कि ख़ुदा के वास्ते निकालिये, और इलहाम की फ़ाल डालिये, कुछ मिन्टों तक मिरज़ा साहिब पत्रे उलटते रहे, पर वह शब्द क़ुरान में न निकला, और मरता क्या न करता के अनुसार फ़रमाया कि "मैं प्रतिज्ञा से हाथ उठाता हूं, कुरान में यह शब्द नहीं है" उस समय हकीम किशनसिंह जो लाला निहालचन्द जी व हकीम दयाराम जी, पंडित जयकिशन जी, व लाला लक्ष्मीसहाय जी व मिरज़ा कमालउद्दीन जी व मु० मुरादअली जी और एक बूढा मुसाफ़िर बैठे हुए थे। जिससे आशा है मिरज़ा साहिब को भी इन्कार न होगा, दूसरा प्रमाण जालंधर शास्त्रार्थ का प्रश्नोत्तर है, जो मौलवी अहमदहसन साहिब और श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी के बीच हुआ था। इस के पढ़ने से यह भी स्पष्ट प्रकट होता है, कि शास्त्रार्थ के पश्चात मौलवी साहिब की ओर से असभ्यता हुई, न कि आर्यों की ओरसे। पक्षपात और दुराग्रह तथा हठधर्मी मौलवी साहिब से प्रगट हुई, न कि स्वामी जी से। अत: यह रिसाला मी मुहम्मद मिरज़ा वाहिद साहिब जालंधरी की लेखनी से लिखा गया। उसके पृष्ठ ३ पंक्ति ५ से १२ तक निम्न लिखित इबारत उपस्थित है। "बाद ख़तम गुफ़्तगू के जो मौलवी साहिब की तरफ़ से ख़िलाफ़ अमल आलिमाना एक फ़ेल सरज़द हुआ, बनज़र इन्साफ़ इसको भी ज़ाहिर कर देना मुनासिब है, और वह यह है, कि बाद तमाम होने गुफ़्तगू के मौलवी साहिब ख़ानक़ाह इमाम नासिर उद्दीन के दरवाजे पर गये, और कुछ फ़ुख़रिया वाज़ सुना कर मुसलमान हाज़रीन से अपने वजूद बेजूद की शोहरत के तलबगार हुए। अगरचे अहले इल्म और वज़ेदार मुसलमान तो इस शोहरत की ख़ाहिश को जाहिलों का खेल समझ कर किनारा कश हो गये। मगर जो हलाये अवाम जो मुर्ग और लाल और बटेर और .....अगन वगैरः की लड़ाई के आदि और हार जीत की शोहरत के शायक हैं, उन्होंने मौलवी साहिब को बाजीयाफ़्ता क़रार दिया, और घोड़े पर चढ़ा कर शहर के गली कूंचों में ख़ूब फिराया, और जीत हार का गुल मचाया। मगर ख़ास वज़ेदार और मुहज़्ज़िब आदमियों ने इसे ना पसन्द किया।"

—जब कि यह पहले ही तय हो चुका था, कि "जो इस गुफ़्तगू के ख़तम होने पर हारजीत तसव्वुर करेगा, वह मुतअस्सिब और जाहिल मुतसव्विर होगा" पाठकगण अब स्वयं ही इसका परिणाम निकाल लें।

बुराहीनुल अहमदिया पृष्ट १०५ से १०६ तक

सो अगरचि यह दावा तो इस किताबमें ऐसा रद किया गयाहै, कि वेद मौजूदाका क़िस्सा ही पाक हो गया, लेकिन इस जगह हमको यह ज़ाहिर करना मंज़ूर है, कि किस क़दर इन लोगों के ख़यालात अक़्ल हुस्न ज़न और तहज़ीब और पाक दिली से दूर हैं। और कैसे यह लोग ताास्सुब क़दीम की शामत से जो उनके रगोरेशा व तार पोद में असर कर गया हैं, उन नेक जूनों की ताक़तों को जो इन्सान की शराफ़त और नजाबत और सआदत का मिआर थीं, और उसकी इन्सानियत का ज़ेबोज़ीनत थीं, यह यकबारगी खो बैठे हैं।

(युक्त उत्तर) पढ़े न लिखे, नाम विद्यासागर, संस्कृत अक्षर के बोध से भी अनभिज्ञ, और वेद के खण्डन का ठेका। आंखें चिमगादड़ की और सूर्य से युद्ध,

"चि खुशगुफ्तअस्त सादी दर ज़ुलेख़ा,
अला ऐहाओअलसाक़ी अदर कासन वा नावलहा,
बितर्स अज़ दुरोग़ो फ़रेबो रिया, कि नागाह रसद बर तो क़हरे ख़ुदा।"

(छल, छिद्र झूठ और कपट से डर, ऐसा न हो कि अचानक ही तुझ पर ईश्वरीय कोप हो)

हां, यदि हम प्रतिज्ञा करें, तो उचित है, क्योंकि फ़ारसी व अरबी जानते हैं, और हमारे पास कुरान है, आप जो इन गुणों से सर्वथा शून्य हैं, आपको यह युक्ति शून्य प्रतिज्ञा लज्जित करेगी। हां, ईश्वर की कृपा से इस पुस्तक के प्रकाशित होने से वर्तमान कुरान का टंटा दूर हो जावेगा, और संसार इसकी विषेली शिक्षा से निर्भय। इसलामी दुराग्रह, और मुहम्मदी द्वेष जो मुग़ली कौम की शामत से आपके द्वेष युक्त हृदय में परम्परा से चला आरहा है उसीके कारण आपको इसलामके विरुद्ध बात चाहे वह कैसी ही भली, युक्ति तथा श्रेष्ठ गुणयुक्तही बुरी, असत्य और हानि तथा दुःख का कारण प्रतीत होती है। आपको न तो इन्सानियत से ग़र्ज़ है, और न सद्व्यवहार से, सोलह कला पूर्ण रुपया से ग़र्ज़ है, और ज़रसलमहुअल्लाह का फर्ज़, भोग विलास का ख़याल है, और इतर फुलेल लगाने में कमाल है। जगदीश्वर यदि आपको सौ वर्ष भी जीवित रक्खे, तो भी इसलाम की रौनक है, और हज़रत की यादगार। परन्तु शोक! जितने आप जैसे इसलामी अधिक होते जाते हैं, वैसे ही सद्व्यवहार के गुणों को खोते जाते हैं। सत्य के निर्णय से आपको तनिक भी सरोकार नहीं, और अनुचित शेखियों और व्यर्थकी प्रतिज्ञाओं से कुछ भी लज्जा व आर नहीं।

बुराहीन—उल अहमदिया, पृष्ठ १०६ से १०७ तक

जो इनके दिलों में यह ख़याल समाया हुआ है, कि बजुज़ आर्य्य देश के और जितने मुल्कों में नबी और रसूल आये, जिन्होंने बहुत से लोगों को तारीकी, शिर्क और मख़लूक परस्ती से बाहिर निकाला, और अकसर मुल्कों को नूर ईमान और तौहीद से मुनव्वर किया, वह सब नऊज़बिल्ला झूठे और मुफ्तरी थे।"

(युक्त उत्तर) मिरज़ा साहिब यह आपकी भारी भूल है, और यह सारा मिथ्या और सर्वथा निर्मूल है। ईश्वर से डरो और किसी पर झूठा आक्षेप न करो, आर्यसमाज के सदस्य ऐसी ख़याली प्रतिज्ञा नहीं जमाते, और घर में बैठे हुए आपकी भांति इलहामी हलवे नहीं पकाते, न दाव पेच खेलते हैं, और न फंदा लगाते हैं। आप जैसे नबियों को जो "अना अनज़लना करीबन मिनुल कादियान" के दावेदार हैं, केवल आर्यसमाज वाले ही मक्कार नहीं जानते, अपितु स्वयं ईमानदार मोमिन भी झूठा और मुफ़्तरी मानते हैं, और कुफ़र के फ़तवे (अधर्म व नास्तिकता की व्यवस्था) लगाते हैं, और सर्वसाधारण में विख्यात कराते हैं। जिन्होंने सारे निजी कार्यों पर इलहाम का जाल फैलाया है, उनको आर्यसमाज वालों ने नेकी के पद से गिराया है, जिनका सत्य पर आधार और जिन्हें छल से घृणा और इन्कार है, उन्हें आर्यसमाज के सदस्य भद्र और सच्चे जानते हैं, और उनके उपकार को जगत की भलाई का कारण मानते हैं। जो अपने पापों और कुकर्मों को ईश्वर का दोष ठैहराते हैं, उनको यदि आर्यसमाज वाले मुफ़्तरी और चालबाज़ बताते हैं, तो आप इस पर क्या फ़तवा लगाते हैं। आशा है आप की और हमारी सम्मति का मेल होगा, न कि विरोध और अनमेल।

बुराहीनुलअहमदिया पृष्ठ १०७, "सच्ची रसालत और पैग़म्बरी सिर्फ़ ब्राह्मणों की विरासत और उन्हीं के बुज़ुर्गों की जागीर नाम है, और इस बारे में खुदा ने हमेशा के लिये उन्हीं को ठेका दे रक्खा है और अपने वसीअ दरयाय हिदायत और राहनुमाई को उन्हीं के छाटे से मुल्क में घुसेड़ दिया है, और हमेशा उसको उन्हीं का देश और उन्हीं की ज़बान और उन्हीं में से पैग़म्बर पसन्द आ गये हैं"।

(युक्त उत्तर) मिरज़ा साहिब आपका यह कथन पक्षपात युक्त नहीं तो क्या है। क्रोध न कीजिये। हमारे और आपके पूर्वज एक ही थे। इतिहास बतलाता है, कि रोम, फ्रांस, और इंगलिस्तान, फ़ारिस आदि सबके निवासियों के पूर्वज आर्य थे। संस्कृत भाषा में जो वेद का उपदेश लोगों को सुनावे, वेद के उपदेश का अध्ययन करवावे, वह ब्राह्मण है। जैसा कि संस्कृत भाषा में इसकी व्याख्या इस प्रकार है "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" अर्थात् जो वेद भगवान को जाने और वेद के द्वारा "एकेश्वर वाद और ज्ञान का प्रकाश करे" वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, किंतु उस वर्ण का नाम है जिसकी व्याख्या ऊपर कर चुका हूं। अतः ब्राह्मण होना वेदोक्त रीति से किसी की पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है। यह तो स्वाभाविक रीति पर मनुष्य जाति के भाग हैं, जो अकाट्य तथा विद्वानों को सर्व प्रकार से स्वीकार हैं। अतः सच्ची रसालत और पैग़म्बरी का पद जिसको मिले, उसको संस्कृत भाषा में ब्राह्मण कहेंगे, और अन्यान्य भाषाओं में पृथक् २ नाम धरेंगे। विद्वानों को ज्ञान का ठेका देना अनुचित नहीं किन्तु न्याय है। नेत्र रखने वाले को देखने का ठेका देना सोच कर बताइये कि किस प्रकार सत्य के विरुद्ध है। गप्प सप्प को छोड़िये, और असत्य, मिथ्या भाषण

से मुख मोड़िये, और उत्तर दीजिये, कि नेकों को नेकी का ठेका देना किस प्रकार अनुचित है, जिसके मानने से इतना उज़र और झिझक है। सत्योपदेष्टा और श्रेष्ठ गुरु उपदेश रूपी समुद्र की नाव का नायक है, और उसकी आज्ञा पर कार्य करना इष्ट तथा शुभ है। इसका निषेध वेद से सुनाना उचित प्रतीत होता है, जिससे सत्य का भली भांति प्रकाश हो जावे।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु। य० अ० २६ म० २

यजुर्वेद में ईश्वर आज्ञा देते हैं कि जिस भांति मैं इस कल्याण के साधन वेद का बिना पक्षपात तुमको उपदेश करता हूं, वैसे ही तुम मनुष्यों को इसका उपदेश करो। मनुष्यों के यह भाग हैं, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, सो सब वेद के अधिकारी हैं, कोई अनाधिकारी नहीं है। वेद के उपदेश में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं चाहिये। जो सत्य हृदय से वेद की आज्ञा का पालन करता है, वह हर प्रकार के सुखों से लाभ उठाता है, यह वेद विद्या सदैव सबके लिये कल्याणकारी है, इस पर आचरण करो।

संस्कृत भाषा को सारे नष्ट अंगरेज़ तथा मुसलमान सब भाषाओं की माता पुकारते हैं, और सहस्रों शब्दों की पारस्परिक तुलना करके संस्कृत से निकालते हैं। यतः आबे हयात में मौलवी मुहम्मद हुसेन साहिब आज़ाद कहते हैं कि ईरान नाम भी आर्य्य, पन से बना है, अर्थात् आर्यों से सम्बन्ध रखने वाला। असल शब्द यह है, "इस जाति का नाम आरियन था, यही लोग हैं जिन्होंने भारतवर्ष में आकर राजा, महाराजा का नाम पाया। ईरान में कैं वंशीय सिंहासन पर कावियानी झण्डा लहराया, अपने धर्म की विलक्षण रीति लेकर चीन को अपना सिंहनाद जा सुनाया, यूनान के देश को विद्वत्ता से लाभ पहुंचाया, रोमा के विस्तृत राज्य को नोंच डाला, अन्दुलस (हस्पानिया) पहुंच कर चांदी निकाली।

मिरज़ा साहिब आपके मन में इलहामी होने पर भी पक्षपात को किसने * घुमंड दिया है, जो सत्य से इतना मुख छिपाने

* क्या सृष्टि के आरम्भ से लेकर मुहम्मद साहिब तक, यहूद ईसाई और इसलाम के मन्तव्यानुसार बनी इसराईल के अतिरिक्त किसी अन्य जाति में कोई पैग़म्बर पुस्तक लेकर आया है? जहाँ तक बाईबिल, इंजील और कुरान से पता मिलता है, कोई नहीं आया, किन्तु स्पष्ट लिखा है, कि आदम से मुहम्मद साहिब तक सारे सच्चे नबी सबके सब एक विशेष जाति और घराने से होते रहे, किन्तु सारे संसार को छोड़ खुदा ने सारी खुदाई से मुंह मोड़ नबुव्वत की सम्पत्ति का सम्बन्ध विशेष इस जाति से जोड़ दिया। (देखो सूरत माइदा आयत २३ और सूरत बकर की आयत १३०) और इसी प्रकार (सूरत आल उमरान की आयत ११८) अब हम भी यह कह सकते हैं कि सच्ची रसालत और पैग़म्बरी केवल इसराइलियों की पैतृक सम्पत्ति और उन्हीं के पूर्वजों की जागीर खास है।

को गर्व जानते हैं, और सत्य ग्रहण करने से मुसलमानीकी हेठी मानते हैं। खुदासे शरमाइये, और कृपा करके (His try of Languages) अर्थात् भाषाओं का इतिहास मेक्समूलर साहिब रचित देखिये, ताकि अविद्या का नाश और सत्य का प्रकाश हो। बुराहीन उल अहमदिया पृ० १०८

(वादी) और वह भी सिर्फ तीन या चार कि जिससे मसअला इलहाम और रसालत का क़वानीन आम्मा कुदरतिया, और आदत क़दीम इलाहिया में दाखिल नहीं होसता, और अम्र नबुव्वत और वही का बबाइस किल्लत तादाद इलहाम याफ्ता लोगों के ज़ईफ और गैरमोतबिर और मश्कूक और मुश्तबा ठहर आता है, और नोज़ करोड़ह बंन्दगाने खुदा जो इस मुल्क से बेखबर रहे, या यह मुल्क उन मुल्कों से बेखबर रहा,फज़ल और रहमत और हिदायत इलाही से महरूम और नजात से बेनसीब रह जाता है, और फिर तुरफ़ा यह कि बमूजिब खुश अकीदा आर्य्य साहिबान के वह तीन चार भी खुदा तआला के इरादे और मसलिहत खास से मन्सबे नबुव्वत पर मामूर नहीं हुए, बलिक खुद किसी नामालूम जन्म के नेक अमलों के बाइस से इस ओहदा पाने के मुस्तहिक़ होगये, और खुदाको बहर हाल उन्हें पैगम्बर बनानाही पड़ा। और बाकी सब लोगों को हमेशा के लिये इस मर्तबा आलिया से जवाब मिल गया, और कोई किसी इल्ज़ाम से और कोई किसी तक़सीर से और कोई आर्य क़ौम और आर्य देश से बाहिर सकूनत रखने के ,जुर्म से इलहाम पाने से महरूम रहा।"

(पुष्क उत्तर) सत्य का विरोध करना साधारणतया मिरज़ा साहिब का नियम है, और यों ही लम्बा व निरर्थक लेख बनाकर बड़प्पन के दम भरने को उचित जानतेहैं। अन्यथा यदि वास्तवमें सत्य से प्रयोजनहै और ईश्वरीय ज्ञान के विषय का निर्णय करना हो तो तनिक वर्णन कीजिये, कि चार मनुष्यों पर ईश्वर की ओर से ज्ञान का प्रकाश होने में "साधारण सृष्टि नियमों और ईश्वरीय नित्य स्वभाव' में कौन सी उपाधि आता है जिसका निवारण करना आपकोभ्रान्ति तथा कल्पित तर्कमें हमारे ज़िम्मे आवश्यक जाना गया है। ईश्वर के लिये वर्णन कीजिये, और उत्तर लीजिये। एक के सम्मुख चार साक्षियां हर प्रकार विश्वास के योग्य हैं। और किसी प्रकार शङ्काजनक नहीं हो सकता। हां अन्य बातों के उपरान्त आप को साक्षी त्रुटि पूर्ण है। और ४ सत्य के सम्मुख एक चौथाई कमज़ोर है, कहां स्वार्थता के परामर्श और

गई, और इस विषय में खुदा ने सदैव के लिये उन्हीं को ठेका दे रखा है, और अपने विस्तृत उपदेश सरोवर को उन्हीं के मध्यवर्तीय देश में धुसेड़ दिया है। और सदा खुदा को अरब व रूम का देश पसन्द आगया, और उन्हीं की भाषा खुदा की सदा की वाणी हो गई। चीन, जापान, अमरीका, सेंट्रल एशिया आदि में कभी कोई पैगम्बर न उतरा, और न भारतवर्ष में कभी किसी पैगम्बर का दाल गला, अतः यह सारा आक्षेप आपके ज़िम्मे है। किसी प्रकार हमारे पर नहीं घटता, और मुहम्मदियों के खुदा के विषय में यह सारी शङ्कायें घटती हैं, न कि हम पर।

शिकायतें, और कहां सत्यताके आदेश और धर्मकी शिक्षायें। मिरज़ा साहिब, एक हंसता है, एक रोता है, न्याय और स्वार्थता में बड़ा अन्तर होता है। जगदीश्वर न्यायकारी है न कि स्वार्थी और प्रमादी।

चिरागे मुरदा कुजा नूरे आफ्ताब कुजा बिबी तफावते राह अज़कुजास्त ताबकुजा।

।(कहां टिमटिमाता दीया, और कहां सूर्य्य, देखो रास्ते का कहां से कहां तक अन्तर है) धार्मिक इतिहासों से सिद्ध है, कि आरम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति आर्यावर्त्त में हुई, और संसार में नियंत्रणाके लिये इलहाम की आवश्यकता हुई, अन्यथा एक बड़ा भारी कारखाना उत्पन्न करके उसके प्रबन्ध की नियमावली न देना, बनाने वाले के ज्ञान को दोषी ठेहरता है। अतः वहां ही वेदों का इलहाम हुआ, कोई स्कूल, कोई शाला, कोई अध्यापक उस समय उपस्थित न था जिससे वह इलहाम अप्रमाणिक, संदिग्ध और विश्वास शून्य ठेहरता और न कोई पुस्तक उपस्थित थी, जिससे उद्धृत समझा जाता। सारी कठिनाइयों पर विचार करके प्रत्येक बुद्धिमान के हृदय से तत्काल यही उत्तर मिलता है, कि ऐसे समय में ऐसे पूर्ण ज्ञान, सम्मत शिक्षाएं विस्तृत आज्ञायें सत्योपदेश, और उच्च कोटि के विद्वत्ता पूर्ण विषयवा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रकाश होना, मानवीय शक्ति तथा वैयाक्तिक सामर्थ्य से बहुत दूर वरन् असम्भव है। अतः उस सत्योपदेष्टा और सच्चे स्वामी, सच्चिदानन्द, सर्व विद्या प्रकाशक, ज्ञानमय परमेश्वर से ही इनका प्रकाश हुआ। अप्रमाणिक तब हो, जब कि कोई पढ़ा लिखा मनुष्य भेद जानने वाला विद्यमान हो, संदिग्ध तब हो, जब कोई बाह्य उपकरण उपस्थित हो, सर्वव्यापक की तथा सर्व द्रष्टा की रसालतके लिये वही का आना उसको एक देशी ठहराता है। अतः उस ज्ञान स्वरूप ने अन्तर्यामता से वैदिक अनादि ज्ञान, उनके अन्तःकरण में प्रकाश किया। यतः एक रस का ज्ञान बदलता नहीं, इसलिये वह ज्ञान परिवर्तन तथा न्यूनाधिक्यसे रहित, ज्यों का त्यों वेदों में विद्यमान है। तौरेत रद्द हुई और इसी प्रकार ज़बूर भी। इंजील की शिक्षा तुम स्वयं भी अनुचित जानते हो, और इसे अपूर्ण मानते हो। कुरान की भी बहुतसी आयतें रद्द होगईं, और बहुत सी तुम्हारे पाठ से निकाली गई हैं, अतः वह ज्ञानमय और एक रस ईश्वर के ज्ञान नहीं है, वरन मनुष्य कृत तथा विषय लम्पटता की और असार कथायें हैं जिनका भाव तथा अभाव एकसा है। सच्ची पुस्तक सृष्टिके आदि से अन्त तक परिवर्तन आदि विकारों से रहित रहेगी, किसी प्रकार की त्रुटि और भूल का उसमें निकलना सुगम नहीं किन्तु असम्भव है, और वह सत्य विद्या का पुस्तक वेद भगवान् है। हम लोग जो आवागमन को मानते हैं किसी को इलहाम पाने से वञ्चित रहना, उसके कर्म्मों का फल जानते हैं, ईश्वर को पक्षपाती और अन्यायी नहीं गरदानते हां निश्चय पूर्वक मानते हैं, कि वह न्याय के विरुद्ध कोई कार्य्य नहीं करता, आप आवागमन को नहीं मानते अतः आप ही इसका उत्तर दीजिये कि खुदा का अपनी इच्छा तथा नीति विशेष से किसी को नबुव्वत के पद पर नियुक्त करना नियम का भंग करना नहीं है तो क्या है? अधिकारी का अधिकार अनधिकारी

को देना, स्वार्थता और पक्षपात है, और योग्य तथा अधिकारी को उसके पद पर पहुंचाना न्याय और धर्म का व्यवहार है। कुछ हो हो ईश्वर को सच्चा मान कर फिर मिथ्या भाषण के लिये प्रार्थना करना, ऐसी बात है कि जिस को साधारणतया सब बुद्धिमान और विशेष तया आर्यसमाज के सदस्य कभी स्वीकार नहीं कर सकते। शोक! कि स्वयं ही मुहम्मद साहिब को खातम उलमुरसलीन मानना, और लोगों को सदैव के लिये नबुव्यत के पद से वञ्चित रखना ईमान जानते हो, पर इस आक्षेपके करते समय अपने दामन में मुह डाल कर नहीं देखते, अन्यथा यह विष न उगलते। खुदा को स्वार्थी और पक्षपाती बनाना आप के यहां सुगम है, पर सत्य को ग्रहण करना अत्यन्त कठिन वरन ईमान के लिये हानिकारक है, आवागमन से इन्कार ठीक खुदा के अत्याचार का इकरार है, जिसको हम इस पुस्तक में पृथक् वर्णन करेंगे। यदि ईश्वर को उन बुरे दोषों से हानि पहुंचना नहीं मानते, जो (सोलह आने सत्य है), तो किसी और नबो और पुस्तक का उतरना स्वीकार करना पड़ेगा। मुहम्मद साहिब और कुरान को नबुव्वत के पद तथा इलहाम से हटाना पड़ेगा।

मिरज़ा साहिब एक पूर्ण इलहाम को विद्यमानता में किसी और पूर्ण या अपूर्ण इलहाम का पहुंचना (जब कि कोई नई शिक्षा भी न देता हो) निरर्थक कार्य के अतिरिक्त और क्या कहला सकता है। कोई किसी बनावटी शाप या वाह्य अपराध के कारण वेद की शिक्षा से वञ्चित न रहा, मगर अपने पापों के कारण।

हरचेहस्त अज़ क़ामते नासोज़ो बे अन्दामे मास्त।
वरनः तशरीफ़ तो बर बालाये कसे कोताह नेस्त॥

बुराहीन उल अहमदिया पृ० १०८, १०९। अब देखना चाहिये कि इस नापाक ख़्याल में खुदा के मक़बूल बन्दों पर जिन्होंने आफ़ताब की तरह ज़ुहूर करके उस अंधेरे को दूर किया, जो उनके वक्त में दुनियां पर छा रहा था, किस क़दर नाहक़ व बे मूजिब बदज़नी की गई है, और फिर अपने परमेश्वर पर भी यह बदज़नी जो उस को ग़ाफ़िल या मदहोश या मखबूतउल हवास तसव्वुर किया है कि जो इस क़दर बे ख़बर है, कि गो बाद वेद के हज़ारहा तौर की नई नई बिदअतें निकलीं, और लाखों तरह के तूफ़ान और अन्धेरियां चलीं, और रंगारंग के फ़िसाद बरपा हुए, और उसके राज में एक बुरी तरह की गड़बड़ पड़ गई, और दुनियां को इसलाह जदीद की सख्त सख्त हाजतें पेश आई, पर वह कुछ ऐसा सोया कि फिर न जागा, और कुछ ऐसा खिसका कि फिर न आया, गोया उसके पास इतना ही इलहाम था, जो वेद में खर्च कर बैठा, और वही सरमाया था, जो पहिले बांट चुका, और फिर हमेशा के लिये खाली हाथ रहगया और मुंह पर मुहर लग गई, और सारी सिफ़तें अब तक बनी रहीं, मगर तकल्लुम की सिफ़त सिर्फ़ वेद के ज़माने तक रही, फिर बातिल होगई, और हमेशा के लिये कलाम करने और इलहाम भेजने से आजिज़ होगया।

[शुष्क उत्तर] मिरज़ा साहिब! क्या यही इलहामी सभ्यता है, और इसी का नाम मुहम्मदी शिक्षा है। ज़बान संभालिये, ऐसे शब्द मुख से न निकालिये।

सुकरात, बाबा नानक जैसे महात्मा पुरुष जिन्होंने सूर्य की न्याई प्रगट होकर लोगों की अविद्या को दूर किया, हम उनका सच्चे हृदय से सम्मान करते हैं, और प्रत्येक बुद्धिमान को करना चाहिये।

"एक ईरानी सैलानी अमृतसर में एक दिन बात चीत करते हुए कहने लगे कि "जहां तक मैं संसार के और धर्मों से तुलना करता हूं, नबियों के सम्बन्ध में यह चार बातें सुनाई देती है, [प्रथम] पुस्तक, [द्वितीय] उम्मत, [तृतीय] करामात [चतुर्थ] असहाब, पर किसी नबी के सम्बन्ध में अन्य जाति ने साक्षी नहीं दी, परन्तु जब विचार करता हूं तो बाबा नानक जी के विषय में यह पांचों बातें सचमुच विद्यमान हैं। बाबा नानक पुस्तक रखता है, अनुयायी रखता है, करामात रखता है और साथी रखता है।

वह सारे श्रेष्ठ गुणों में बढ़ा है, मुसलमान भी उसकी करामात को स्वीकार करते हैं। अतः बाबा नानक निस्सन्देह नबी है। मैं ने प्रश्न किया कि मुहम्मद साहिब के विषय में जो रहमतुल मुरसलीन का लोग विश्वास रखते हैं? हंस कर उत्तर दिया, कि यह सर्वथा मिथ्या है। इसी प्रकार शङ्कराचार्य आदि भी इसी सम्मान योग्य हैं। पर जिन्होंने संसारमें अविद्या अन्धकार फैलाया, सर्व साधारण का वध करवाया, जहाद का घोड़ा उठाया, बड़े नगरों को उजाड़ा, क्या वह भी इसी सम्मान के योग्य हैं? यदि हैं, तो क्या कारण? और महमूद ग़ज़नवी, चंगेज़ ख़ाँ, तीमूर, हलाकू, नादिरशाह, [illegible], अहमदशाह आदि क्यों पृथक रक्खे जावें, और बिरादरी में ख़ारिज का [illegible] परमात्मा आप शुद्ध और [illegible] होना चाहिये [illegible] शुद्ध और परिवर्तन से रहित होना चाहिये, न कि अशुद्ध पूर्ण, और परिवर्तनशील। अतः पूर्ण और शुद्ध वस्तु के बदलने की आवश्यकता नहीं, और अपूर्ण तथा दोषयुक्त का पूर्ण और सर्वज्ञ से प्रगट होना ही असम्भव है। उन्नति या अवनति का आधार आवागमन है। नई २ व्याधियों के निकलने और नये २ उपद्रवों तथा आंधियों के चलने से वह सर्वज्ञ अनभिज्ञ नहीं है और न व्याधियां, उपद्रव तथा आंधियां ईश्वरीय कौशल्य का बिगाड़ सकती हैं और न उसके राज में गड़बड़ हो सकती है। रूम और रूस के युद्ध के समय उसे नये इलहाम की आवश्यकता नहीं, और न नादिरशाह के सर्व वध करने पर आवश्यकता थी। जब लार्ड मेव साहिब मारे गये, तब भी वही इलहाम था, जब फ़रऊन ने खुदाई का दावा किया तब भी वही इलहाम था, जब मूसा पैदा हुआ तब भी वही इलहाम था, जब लाखों के सर्ववध की आज्ञा दी थी, तब भी वही इलहाम था, इबराहीम के समय में भी वही इलहाम था, और क्योमर्श के समय में भी वही, विक्रमादित्य के समय में भी वही था, और मसीह के समय में भी वही। वही इलहाम कृष्ण जी के समय था, और वही रामचन्द्र जी के समय। वही मनु जी के समय था, और वही अग्नि और अंगिरा के समय। सत्य का सूर्य सदा विद्यमान रहता है, मगर आंखें खोलना और पक्षपात या आवर्ण रहित होकर देखना और विचार करना तथा लाभ उठाना योग्यता पर निर्भर है। जो आवागमन

से अविनय भाव सम्बन्ध रखता है। ईश्वर को मुख की आवश्यकता नहीं, और न वाणी को। वह सबका अन्तर्यामी है, वेदों का ज्ञान द्वारा प्रकाश करता है। पर देखने वाली आंखें और सुनने वाले कान चाहियें।

तुम कुरान को "ईश्वरीय वाक्" मानते हो और वाणी बिना मुखके प्रगट नहीं होती साथही मुहम्मदखातिम उल मुरसलीन हैं, अतः यह आक्षेप तुम्हारे पर इस समय लागू है, न कि हमारे पर इसीसे हमको कहना पड़ता है कि जो खुदाके पास ज्ञान की पूंजी थी, वह कुरान में बांट चुका और फिर कयामत (प्रलय) तक ख़ाली हाथ रह गया, और उसके मुख पर मुहर लग गई। मुहम्मद के पश्चात् किसी रसूल को भेजने की उसको शक्ति न रही। बोलने का गुण मूसा के समय तक रहा, आगे से भाषण करने वाला न रहा, और नबुव्वत और रसालत का पद मुहम्मद तक उसके पास रहा, आगे से निर्धन होगया, और सदा के लिये रसूल और नबी भेजने तथा पुस्तक देने में असमर्थ होगया। मिरज़ा साहिब ईश्वर पूर्ण है। उसकी पुस्तक, उसका ज्ञान, उसका उपदेश सब कुछ पूर्ण होना चाहिये, न कि संदिग्ध, अधूरा तथा दोष युक्त। परिवर्तन की आवश्यकता भूल में होती है, और बढ़ाने की आवश्यकता अपूर्ण में, जहां अशुद्धि हो, वहां से दूर रहना पड़ता है, और जहां भूल हो वहां से सावधान होना। पर ईश्वर में दोनों पक्ष इस को मानते हैं कि यह दोष नहीं है, फिर इलहाम के बारम्बार परस्पर विरुद्ध तथा अपूर्ण भेजने की क्या आवश्यकता थी? क्या ईश्वरीय नियम है, या सरकार का ऐक्ट? परन्तु मिरज़ा साहिब इलहाम के बार २ होने में आपके पौबारह हैं, यदि आप वेदों पर विश्वास करें या इलहाम का एक बार पूर्ण मिलना मानें, तो आपको इलहामी, मुजद्द, मसीह सानी, मुरशिद छोटा नबी कौन कहे और चढ़ावे किस को चढ़ें।

इलाये हज़र कुनज़िआज़ो रिया। कि अंजामे ई हस्त रंजोबला।
तमा रा सिहर्फस्तो हरसिहतही। अज़ांनिस्त मर तामिआं राबिही॥

अरे! तू लोभ लालच से बच, क्योंकि इसका परिणाम दुख और आपत्ति ही है। तमा (طمع) के तीन अक्षर हैं और तीनों ही शून्य, इसीसे तमा करने वाला (लोभियों) का भला नहीं होता।

अब थोड़े से विरोध उदाहरणार्थ दिखाता हूं।

(१) निकाह के पश्चात् यदि किसी कारण से जोरूनापसन्द आवे, तो उसे तलाक देदे (छोड़ देवे,) (इस्तस्ना २४-१)

(२) व्यभिचार के अतिरिक्त और किसी कारण से तलाक देना उचित नहीं, किन्तु जो देता है व्यभिचार कराता है (मती ५—३१)

(३) जब पति चाहे तलाक दे सकता है। (कुरान)

(४) प्राणधारी, पशु, पक्षी का रुधिर और चरबी हलाल थी (पैदायश १-३०)

(५) प्राणियों का रुधिर हराम हुआ (पैदायश ९—३)

(६) सौतेली बहिन से निकाह दुरुस्त है (पैदायश २०—१२)

(७) सौतेली बहिन से निकाह मने है (इस्तस्ना २७/२२ अहबार १८/१७-२०-६)

(८) दो बहिनों का निकाह करना एक के जीते जो ठीक है (पैदायश २६, व अहबार १५-१८

(९) ना वाजिब है शरीअत मूसा में (तौरेत)

(१०) * फूफी से समागम करते थे, और ख़ुदाकी आज्ञा थी (ख़ुरूज६-२०)

(११) बहिन भाई का विवाह होता था, (तौरेत)

(१२) शराब (मदिरा) जायज़ थी, और नबी पीते थे (तौरेत, पैदायश)

(१३) हराम हुई। (कुरान)

(१४) एक स्त्री से अधिक से विवाह करना पाप है (तौरेत, पैदायश मत्ती ५-३१)

(१५) साधारण लोगों को चार २ और मुहम्मद साहिब को ९, ११, १८ ही नहीं, अनगिनत (कुरान सूरत अखराब) आदि

(१६) बैतउल मुक़द्दस की ओर सिजदा करो, (कुरान सूरत बकर)

(१७) मक्के की ओर सिजदा करो पहिलो आज्ञा रद्द हुई (कुरान सूरत बकर) उद्धृत अख़बार उल इस्लाम भाग २ प्रकाशित सं० १३१२ हिजरी पृ० ६७ से इत्यादि।

बुराहीन उलअहमदिया पृ० १०९,११०, यह पतक़ाद आर्य कौम का है, कि जिस पर हर एक हिन्दू को रग़बत दिलाई जाती है, कि उसको अपना धर्म बनावे। मगर ताज़ुब कि इस एतक़ाद का वेद में कहीं ज़िक्र तक नहीं और कोई श्रुति इस में ऐसी नहीं, कि इस मुतअस्सिबाना बदज़नी की तालीम देती हो।

(युक्त उत्तर) मिरज़ा साहिब मैं भी आपके इस कथन से सहमत हूं, कि वेद में, कोई श्रुति ऐसी नहीं है, जो इस पक्षपात युक्त कुसम्मति की शिक्षा देती हो। जब वेद सर्वथा पक्षपात तथा द्वेष पूर्ण बातों से आपके कथनानुसार पृथक हैं, तो प्रत्येक हिन्दू यहां तक कि मुसलमानों को भी विश्वास लाने से क्या हानि है, और इसी आप की शिक्षा को मान कर कई लोग वेद भगवान पर विश्वास ले भी आये हैं। यह विश्वास आर्य जाति का है, और वेद के मानने वाले आर्य हैं। अतः जो आर्य वेद विरुद्ध कार्यवाही करे, वह पापी है, पर प्रत्येक मनुष्य काम करने में स्वतन्त्र है, परतन्त्र नहीं।

बुराहीनउल अहमदिया पृष्ठ ११० से १११ तक:— मालूम होता है, कि यह श्लोक उन्हीं दिनों में घड़ा गया है, कि जब आर्य जाति के बुद्धिमानों ने

* कुरान की इस आयत से "हुरमत अलेकम उम्मत कुम" हराम कीं ऊपर तुम्हारे फूफियां तुम्हारी" वह आज्ञा रद्द हुई, और हराम समझी गई,(देखो सूरत निसा)

अपनी पुस्तकों और शास्त्रों में यह भी लिख मारा था, कि जो हिमालय पहाड़ और कुछ एशिया के हिस्से से परे कोई देश नहीं, और इसी तरह और भी कच्चे विचार और भ्रांतियां कि जिनका इस समय वर्णन करना ही व्यर्थ है, और जो अब दिन पर दिन संसार से मिटी जाती हैं, और विद्या एवं बुद्धि के रखने वाले स्वयं इनको छोड़ते जाते हैं, इन्हीं दिनों में निकली थीं।

(युक्त उत्तर) क्योंकि मिरज़ा साहिब ने कोई श्लोक अपनी प्रतिज्ञा के प्रमाण में प्रस्तुत नहीं किया, इसलिये हमें विवश होकर कहना पड़ा, कि उनका यह कथन भी और कथनों की भांति युक्त ही नहीं है। मिरज़ा साहिब ने झूठ और धोखे से शास्त्रों का नाम लिया, * क्योंकि शास्त्रों में कदापि ऐसी शिक्षा नहीं है, न मालूम इलहामी लोग झूठ बोलने से क्यों नहीं शरमाते। महात्मन्!

* "आर्य लोगों की बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता के विषय में सारे संसारको ज्ञान है। और सच्चे हृदय से यह प्रमाण है, देखो तहज़ीबुल इख़लाक़ भाग चौथा सं० १४ में सैय्यद अहमद ख़ां कहते हैं, "गणित में भी मुसलमानों ने कम ध्यान नहीं दिया, उन्होंने हिन्दुओं से अङ्कों का क्रम रखना सीखा, और इसीलिये उसका नाम उन्होंने "आदादे हिन्दसा" रखा। बीजगणित आदिके विषयमें विचार भेद है कुछ लोग इसके निकालने वाले मुसलमानों को बतलाते हैं किन्तु ठीक यह है कि मुसलमानों ने यह विद्या भारत के पंडितों और यूनान के विद्वानों से ग्रहण की और फिर उसमें बहुत सी उन्नति की। आयुर्वेद में भी मुसलमानों ने उन्नति की, उन्होंने भारत में यात्रा की, संस्कृत भाषा सीखी, और संस्कृतकी दो अत्यन्त प्रसिद्ध चरक एवं शुश्रुत नाम पुस्तकों का "अरबी" भाषा में अनुवाद किया। सबसे पहिले १५६ हिज़रीमें मूसा इब्न मूसा अलक़रारीने संस्कृतका अनुवाद आरम्भ किया, फिर मुहम्मद बिन इस्माईल स्वयं भारत में आया, और इसके पश्चात् दस विद्वान भारत में आये, और हिन्दुओं की वैज्ञानिक पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया" फिर सैयद साहिब भाग ४, संख्या ५ में लिखते हैं।

"हमारे पूर्वजों का अन्य जातियों से विद्या सीखना और मुसलमानों में फैलाना इतिहास से भलीभांति सिद्ध है। यूनानी, सिरयानी तथा संस्कृत से विद्याओं का ग्रहण करना सूर्य की भांति देदीप्यमान है"। फिर सैय्यद साहिब ४ भाग, ७ संख्या में लिखते हैं, "यूनान और भारत से सब प्रकार की विद्या और विज्ञान को मुसलमानों ने प्राप्त किया, और यह उन्नति लगभग ६०० हिजरी तक जारी रही। फिर यह जाति एक उछाले हुए पत्थर की भांति नीचे को चली आई।" फिर सैय्यद साहिब भाग ४ की १३ संख्या में लिखते हैं, "सब मुसलमान जानते हैं, कि हमारी जाति के प्रारम्भ को तेरह सौ वर्ष के लगभग गुज़रे हैं। यह जाति एक ऐसे देशमें थी जहां वास्तव में विद्या तथा बुद्धि का नाम भी न था, किन्तु जैसे इस जाति का प्रारम्भ हुआ, ६ सौ वर्ष तक इस जाति ने अपने प्रयत्न से अपनी उन्नति ऐसे उत्तम स्थान पर पहुंचाई, जिससे वह भी

आपको कहां से इलहाम हुआ, और 'रब्बुल कादियान मिनउन्नवाही जौरदिन असफ़ूरिन ने किस 'वही" के द्वारा तार भेजकर आपको जानकार किया, क्या वह इलहाम "इन्निल्लाहहाफ़िज़ून" की रक्षा के बिना आया था, जो मार्ग में लूटा गया ? 'हुआ सो हुआ आगे को सावधान! की शर्त है। इस स्थान पर उचित समझता हूं कि इसलामी इलहामों की भूल बतलाऊं, और सत्य प्रेमियोंको उन से सूचित करवाऊं, क्यों कि वह यद्यपि ईश्वरीय वाणी प्रसिद्ध हैं, किन्तु सत्य से दूर हैं।

संसार की जातियों में ऊंचे दरजे की जाति गिनी जाने लगी।' रिसाला मख़ज़न उलअख़्लाक़ के सातवें भाग की ११ संख्या में मौलवी अलताफ़ हुसैन साहिब लिखते हैं, "भारतवर्ष के मूल निवासी हिन्दू हैं। उनके पूर्वजों का वृत्तान्त जो इतिहास में देखा जाता है, उससे इस समुदाय की पूर्ण योग्यता और विद्वत्ता प्रकट होती है। हिन्दुओं के प्राचीन विभागों ने पदार्थ विद्या में बड़ी २ उन्नतियें की हैं, यह बात सर्व सम्मत मानी गई है, कि नक्षत्र विद्या में हिन्दुओं ने जो पुस्तकें लिखी हैं, यद्यपि बहुत उनमें त्रुटियां हैं, किन्तु उसके साथ पूर्णता भी उत्तम दरजे की पाई जाती है। ज्योतिष के अतिरिक्त गणितके विकाश में जो उन्होंने उन्नति की है, वह ज्योतिष से भी अधिक जताने के योग्य है। तथाच "सूर्य सिद्धान्त" नामक पुस्तक जो आम ऐतिहासिकों के निकट पांचवीं अथवा छठी सदी ई० की रचना मानी जाती है, उसमें 'त्रिकोणमिति' का वर्णन ऐसा पाया जाता है, जिससे उनको यूनानियों पर प्रतिष्ठित ही नहीं कर सकते, वरन् कह सकते हैं कि उसमें बहुत प्रश्न ऐसे हैं जिनका ज्ञान साधारण योरूप को भी सोलहवीं सदी तक नहीं हुआ था। अङ्कगणित के अनेक नियमों का ज्ञान भारतवर्ष ही के साथ सम्बन्ध रखता था। विशेष कर यह "अनुपात" जो व्यास को केन्द्र के साथ है, इसका ज्ञान वर्तमान काल तक भारत के अतिरिक्त किसी अन्यदेश के लोगों को न था, गणित विद्या में सब के निकट दशमलव के आविष्कारक हिन्दू हैं। प्रत्यक्षतया इसी विशेषता के कारण गणित विद्या में इन को यूनानियों पर प्रधानता दी जाती है। बीजगणित में भी ब्राह्मण अपने समकालीन विद्वानों में बड़ाई लेगये थे, तथाच इस विद्या के विषय में इनकी खोजका वर्णन 'ब्रह्मगुप्त' की पुस्तक में जो छठी सदी में हुआ है और भास्कराचार्य की पुस्तक से जो १२वीं सदी में हुआ है मालूम होता है। इन दोनों ने आर्य भटकी रचनाओंसे विषय उद्धृत किये हैं, इससमयमें विद्या उन्नति अवस्थाको पहुंची हुई थी, यह और डाई फिन्टस जिसने यूनानमें बीजगणितको सबसेपहिले लिखा है, कई ऐतिहासिकोंके निकट एकही समयमें हुए हैं, यह बात मानी हुई है, कि यह मनुष्य डाई फ़िन्टस से इस विद्या की ऐसी आलोचना में बाजी लेगया है, जिन के प्राप्त करने और समझने पर पिछले आने वालों को गर्व है, और जो कि हिन्दुओं की प्रारम्भिक उन्नति के समय में दूसरी सब जातियें मूर्ख थीं, इस से यह परिणाम निकल सका है, कि उन्होंने यह विद्यायें

(१) नूह के तूफ़ान का सारे संसार पर आना। (तौरेत उत्पत्ति,)

(२) खुदा का तूफ़ान भेज कर पछताना और बदलो में अपनी कमान लटकाना। (तौरैत, पैदायश ८—१)

(३) नूह को नाव में प्राणियों व मनुष्योंका एक वर्ष के ख़र्च सहित आना (तौरैत, उत्पत्ति ८—१

(४) बुर्जे बाबुल के गिरने से एक शब्द का होना और संसारकी भाषाओं का बदलना। (तौरैत, उत्पत्ति ८—१)

(५) दूध और शहद को नदियों का बहना और खुदा का रोटियों का मेंह बरसाना। (तौरैत)

किसी अन्य से ग्रहण नहीं की। जिस समय में इन विद्याओं का अन्यजातियों से लेना सम्भव हो सक्ता है उस समय उनको वैज्ञानिक खोज के ढंग ऐसे नियमों पर अवलम्बित थे कि जिन से कोई अगली जाति सर्वथा परिचित न थी। उन से ऐसी आलोचना का ज्ञान प्रगट होता है, जिन को अब से दो सौ वर्ष पहिले तक योरुप वाले भी न जानते थे, इसी प्रकार आत्मिक, स्वाभाविक और दार्शनिक सिद्धान्तों में भारतीय विद्वानों की सम्मतियां और विरोध एवं सम्वाद इतने हैं, कि जिन से उन में और यूनानी विद्वानों में एक अपेक्षित मिलाप निकल सक्ता है"।

रिसाला तेरहवीं सदी प्रकाशित "मतवा आगरा अखबार" की जिल्द तीसरी की आठवीं संख्या से प्रगट होता है।

"यह है भारतवर्ष का सुलभ साहित्य जिस से सारा जहान लाभान्वित हुआ और जिस के प्राचीन निवासियोंने सारी विद्याओं, विज्ञानों, कलाओं और कौशलों में से कोई भी बाकी नहीं छोड़ी। अब भी उस समय के बहुत से खोज और शिल्प का पता पिछली पुस्तकों से लग सक्ता है। इस में भी वायु गुम्बा (गुब्बारा) की उन्नति होचुकी, यद्यपि अब हमको हिन्दुओं की पुरानी पोथियां और पुस्तकें एक काथानिक मालूम होती हैं किन्तु कोई भी बुद्धिमान इस बात को स्वीकार न करेगा कि पुराने समय की ऐसी बुद्धिमान जाति अपनी नैतिक और धार्मिक पुस्तकों को कथानिकमात्र बना जावे। हां! यह बात है, कि इस में समय की अधिकता और ब्राह्मणों की होशियारी से कुछ मिलावट होगई हो तो आश्चर्य नहीं। अब इस मिलावट से सच और झूठ की पहचान हज़ारों वर्षों के उपरांत कठिन वरन् अतिकठिन होगई। किन्तु वह कथानिक भी इस वस्तु की वास्तविकता कापता बता रही है, कि उस समय में भी इस वस्तु का अस्तित्व था, और मानुषिक आचार पर ध्यान करने से प्रतीत हो सकता है, कि जो बात अपने मस्तिष्क से बाहिर हो, वह झूठ या चमत्कार प्रतीत होती है। जैसे यही रेल जिस पर लाखों मनुष्य भाप के बल से यात्रा करते हैं, और यही तार बिजली जिस पर क्षण मात्र में हज़ारों कोस के समाचार लेजाते हैं, न होती, और सौ पचास वर्ष पूर्व की पुस्तकों में लिखा

(६) बिना पति मैथुन के मसीह का कंवारी स्त्री से उत्पन्न होना
(कुरान सूरत तहरीम व मरयम)

(७) पृथ्वी का चपटा और समकक्ष होना, और न चलना, और पहाड़ों का कीलों की भांति ठोका जाना। (कुरान सूरत बक़र तथा सूरत नूह)

होता तो यह भी एक कहानी प्रतीत होती और सम्भवतः आगे कभी ऐसा ही कहा जावेगा, किन्तु इसका अस्तित्व बाकी रहेगा। इसलिये पहले की कलाओं और विद्याओं को भी इसी प्रकार अनुमान कर लेना चाहिये, कि यद्यपि वह अब कहानी प्रतीत होती हैं, पर कभी न कभी उनका अस्तित्व अवश्य होगा, और किसी न किसी प्रकार उनका प्रयोग अवश्य किया जाता होगा, और यद्यपि उन विद्याओं को ब्राह्मणों ने प्राचीन राजाओं की चमत्कारों में सम्मिलत करके एक धार्मिक रूप देदिया है, किन्तु वस्तुतः वह इस बुद्धि प्रधान देश की कारीगरी तथा विद्वत्ता का परिणाम है। तथा च हिन्दी पोथियों में लिखा है, कि अमुक राजा पाताल के राजा से लड़ने गया, तो अब समझ में नहीं आता, कि भूमि तोड़ कर किस प्रकार पाताल में चला गया, अब कि अमरीका देश जिसको नई दुनियां कहते हैं, पृथिवी के गोलाकार के कारण इस स्थानसे पाताल में है, अतः यदि उस समय में भी यहां का राजा वहां गया हो, तो बुद्धिमानों के विचार में झूठ नहीं होसकता, और इसी प्रकार हिन्दी पुस्तकों में लिखा है, कि अमुकराजा इतनी बड़ी सेना लेकर इतने सौ कोस कुछ क्षणों में चला गया। यद्यपि इस में भी अत्युक्ति हो, पर रेल पर दृष्टि डालने से प्रतीत होसकता है कि उस समय में भी यदि कोई ऐसा यंत्र हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार इस वायु गुब्बा के विषय में भी हिन्दी पुस्तकों से निश्चय हो सकता है। जैसे हिन्दी पुस्तकों में लिखा है, कि अमुक राजा के यहां विमान था, और उसके द्वारा जाया करता था, यद्यपि इसकी आकृति इस बेलून से भिन्न प्रकार की हो, पर इससे उस की वास्तविकता मिथ्या नहीं हो सकती, और इस अवस्था में कोई आलोचक और शुद्ध विचार वाला मनुष्य यह नहीं कहसकता, कि यह विमान (बेलून) नया आविष्कार है।"

ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका मिति जून १८८५ ई० के पृष्ठ ७३ में बाबू नवीन चन्द्र सभासद ब्राह्म समाज लाहौर मिस्टर ई० पी० विनिन्ग साहिब का प्रमाण देते हुए लिखते हैं कि "अमेरिका के पुराने धर्म और रीतियों के वर्णन से प्रतीत होता है कि उनकी रीति आदि हिन्दुओं से ऐसी मिलती हैं, जिससे निश्चय यह अनुमान होता है, कि पुराने समय में हिन्दू लोग अमरीका गये थे, या अमरीका वालों से हिन्दुओं का किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ था, जैसे उनका विवाह में अग्नि के गिर्द सात फेरे लेना, ठीक हिन्दुओं के अनुकूल है, इत्यादि॥" पांचवीं सदी में अमरीका में एक बौद्ध संन्यासियों का जत्था गया था, उनमें से एक शर्मण या संन्यासी जिसका नाम 'हाइन शान' था, ४१ वर्ष पश्चात् चीन देश में लौट आया, और उसने अमरीका के उस भाग का जो उसने देखा था,

(८) ख़ुदा की बातों को सुनने के लिये शैतानों का आस्मान पर जाना और फरिश्तों का आग के गोले मारना जो सर्वथा संदिग्ध है।
[कुरान सूरत हिजर वा तारिक़ वा मुल्क]

[९] याजूज माजूज का अस्तित्व, उनके कान पावों तक लम्बे होना और हज़ारों वर्ष तक जीवित रहना [कुरान सूरत कहफ़ व तफ़सीर हुसैनी]

[१०] असहाब कहफ़का सैकड़ों वर्षों तक कुम्भकरण की न्याई स्वप्न में रहना। [सूरत कहफ़]

[११] सिकन्दर ज़ुलकर नैन का सारे संसार को जीतना और वहां पहुंचना जहां सूर्य कीचड़ के चश्मे में डूबता है, और पीतल और तांबे की दीवारें बनाना। [कुरान सूरत कहफ़]

[१२] सात आस्मानों और सात ज़मीनों का होना और ख़ुदा का उसके ऊपर बुर्ज़ बनाना। (कुरान)

(१३) जिन्नों का होना; और मुहम्मद साहिब पर उनका विश्वास लाना (कुरान)

(१४) कोहक़ाफ़ (पर्वत) का सारी पृथिवी के चारों ओर होना, और ज़मुर्रद का होना और सिकन्दरसे उसका बातें करना (मसनवी रूमी * दफ़्तर चार)

(१५) मक्के का पृथ्वी की नाभि में होना (मुआरिज उल नबुव्वत बाब २)

(१६) हिजर उल अस्वद के चूमने से लोगों के पापों का दूर होजाना, और पत्थरका रंग पापों के कारण स्याही पर आना (मुआरिज उल नबुव्वत बाब७

(१७) औज बिन उनक़ का क़द बीस हज़ार तेंतीस गज़ लम्बाई में होना और सारे पर्वतों से ४० गज़ ऊंचा होना, और तीन हज़ार छः सौ वर्ष तक जीवित रहना। (मुआरिज उल नबुव्वत बाब ५)

(१८) बाबल के कुएं में हारूत व मारूत का कैद होना और लोगों को जादू सिखलाना (कुरान सूरत बकर)

(१९) ख़ुदा का शैतान को संसार के बहकाने के लिये नियत करना, और क़यामत तक उसको अवधि और आज्ञा देना। (कुरान)

वृत्तान्त लिखा। ऐसा प्रतीत होता है, कि वह मैक्सीको देश में गया था, वह वृत्तान्त चीन के सरकारी इतिहास में लिखा है, और विनिंग साहिब ने अब उस का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, (इन घटनाओं से आर्यों का दूर २ देशों में यात्रा करना और उपदेश सुनाना स्पष्ट प्रगट है) भारत त्रिकालिक दशामें करनल अलकाट साहिब ने लिखा है "कि लगभग छः हज़ार वर्ष व्यतीत हुआ कि आर्यवर्तीय यात्रियों का एक जत्था मिश्र की ओर (जो उसी समय आबाद हुआ था) रवाना हुआ। उस समयमें वहां का प्रथम राजा मीना नाम था। वहां जाकर सब को शिक्षित किया, और वेद पढ़ाया, और कारीगरी का कार्य सिखाया, वहां से वह विद्या यूनान गई, यूनान से रोम और अरब आदि में फैल गई, और अबतक हम वह विद्या विज्ञान नहीं जानते, जो आर्यावर्तके प्राचीन राजा और ऋषि मुनि जानते थे। इति॥

(२०) शक्कुल क़मर। (कुरान)

सारांश, यह कि इस प्रकार की और कई गप्पें और वहम परस्तियाँ जिनका अधिक वर्णन करना ही व्यर्थ है। और जिन्हें अब सभ्य तथा शिक्षित मुसलमान लोग छोड़ते जाते हैं, और घृणा की दृष्टि से देखते हैं, और विद्या तथा बुद्धि का * प्रकाश होने से दिन प्रतिदिन यह झूठे वहम मिटते जाते हैं। यह इसलाम के प्रारम्भिक काल में निकली थीं, और अब तक भी पक्षपाती मुहम्मदी मिरज़ा साहिब की न्याईं उनके इन्कार को कुफ़र जानते हैं। ईश्वर सुबुद्धि देवें, और इस प्रकार के पाप के भंवर से निकाल, नेकी के किनारे पर

* मौलवी आनरेबल सैय्यद अहमदखाँ साहिब, (तहज़ीब अख़लाक़ भाग ३ नम्बर४) में लिखते हैं, "यह बात प्रगट है कि क़ुरून सलासा में विद्या बुद्धि की कुछ चर्चा न था। विज्ञान और दर्शन से यूनान का कोई परिचित न था, परन्तु उसके पश्चात् समय आया कि जिसमें दार्शनिक सिद्धांतों का प्रारम्भ हुआ। अन्त में उसकी यहां तक उन्नति हुई कि वह सिद्धांत धर्म में सम्मिलित होगये, और धार्मिक पुस्तकों में उन पर विचार होने लगे। धीरे २ यह दशा हुई कि उनसे टीके भर दिये गये और जिस तरह भाष्यों में पैगम्बर और उनके मित्रों के वचन उद्धृत किये जाते हैं, उसी प्रकार अफलातूं और अरस्तूं आदि यूनानी दार्शनिकों के वचन उद्धृत होने लगे। जब यह सिलसिला जारी हुआ तो प्रत्येक भाष्यकार ने दूसरे भाष्यकार से और दूसरे ने तीसरे से उसका उद्धृत करना या चुनाव करना आरम्भ कर दिया। यहां तक कि अन्त में, वह वाक्य भाष्यों में ऐसे मिल गये कि लोगों को पहिचानना कठिन हो गया कि यह वाक्य अरस्तू का है या किसी धर्मसूत्र का अथवा किसी मित्र का या किसी नेता का। इसीलिये उन वचनों पर धर्म निर्भर किया गया।" (तहज़ीब अख़लाक़ भाग २ पृष्ठ १८६) में लिखा है, कि "सात आसमान की सत्ता के खण्डन पर जो युक्तियां हैं, उनका निराकरण किस पुस्तक में लिखा है। सूर्य की गति के सत्य और भूमि की गति के असत्य होने में और दोनों की दूरी में जो युक्तियें हैं, उनका खण्डन किससे जाकर पूछें? अनासरे अरबा (चारों तत्वों) का मिथ्या होना जो अब सिद्ध हो गया, उसका समाधान क्या करें? आयते करीमा, वलक़द....... लहमा का जो भाष्य विद्वानों ने लिखा है, शरीर विज्ञान की दृष्टि से वह मिथ्या मालूम होता है, हम अपनी आंखों से बोतलों में भरे हुये वीर्य से लेकर, बच्चे के पैदा होने तक के परिवर्तनों को देखते हैं, जो भाष्यकारों के भाष्यों को भूल को सिद्ध करते हैं, हम उस पर क्योंकर विश्वास रक्खें! खुदा की बात और उसका काम एक होना चाहिये। यह सिद्धांत सारे संसार ने मान लिया है, फिर उनका अनुमोदन इसलाम का किस पुस्तक में ढूढ़ें, और किस मुल्ला और अध्यापक से पूछें? जब कोई बात भी इनमें से वर्तमान धार्मिक पुस्तकों में नहीं पाते तो उनसे अधार्मिकता जो परिश्रमी तर्क और नवीन अनुसन्धान से होती है, वह क्योंकर दूर होगी। यह बात अत्यन्त स्पष्ट और प्रत्यक्ष है, इनको प्रगट रूप में न मानना दूसरी बात है। पर कोई व्यक्ति ऐसा न होगा, जो अपने हृदय में इन बातों को सत्य न जानता होगा। अतः ऐसी अवस्था में इन पुस्तकों का न पढ़ना उनके पढ़ने से हज़ार गुणा अच्छा है।" (तहज़ीब अख़लाक़ भाग संख्या ३) से विदित है, "ज्योतिष और पदार्थ विद्या आदि सैकड़ों विद्यायें इस प्रकार की हैं कि जिनकी शिक्षा के वास्ते न आज तक कोई नबी हुआ, न कोई पुस्तक इस विशेष विद्या में ईश्वर ने

लावे। क्योंकि इन कुरानी तर्कों का साथ न तो बुद्धि देती है, और न विद्या, और न तलवार। और 'न ज़ुलफ़ेकार' के बिना कोई और साक्षी मिलती है। अतः ज्ञात नहीं, कि लोग समझने पर भी क्यों खुल्लम खुल्ला सत्य के प्रकट करने पर तत्पर नहीं होते, और बार २ पराजित होने पर भी इस भूल को रोते हैं। यह है केवल लाओबाली तथा काल्पनिक शिक्षा कुरान की कि जिसने जगत के गले पर छुरी फेर कर लाखों को शहीद, (बलिदान) करोड़ों को नष्ट करके धोंगा मूरती के धर्म में सम्मिलित किया, और जिसको अब हमारे इलहामी मित्र मिरज़ा गुलाम अहमद भी लेखन कला की आड़ में या यों कहो, कि चमत्कारों के परदे में, यहां तक कि पुरस्कार के झूठे वायदों और बेबुनियाद मसौदों के धोखे में इलहामी सिद्ध करना चाहते हैं। जितनी उसकी विशैली शिक्षा लोगों के रुधिर की प्यासी है, और जहां तक उसकी बात २ में ईश्वर पर दोष लगाये गये हैं, और जहां तक उसे सत्य से विरोध और असत्य से अनुराग है, शोक! कि समय नहीं अन्यथाः—

ज़े कज़बो लाफ़ आंजादू बयाने। बहर हरफ़श नवीसम दास्ताने॥
सदाकत गुमशुद अज़ तालीमे इसलाम। नदारद अज़ख़ुदा तरसीनिशाने॥
जहादश जेहदे ख़ूरेज़ो ये आलम। न कुरआने वलेकिन तेग़राने॥
अग ता हशर कावा रा परस्ती। कि बेहर लामकां साज़ी मकाने॥

इस समय तक किसी नबी पर उतारी। कुरान तथा हदीस में ज्योतिष और पदार्थ विद्या के सम्बन्ध में कहीं किसी वस्तु का नाम आगया, कहीं चुनाचर न्याय और साधारण लोगोंकी जानकारी के लायक किसी वस्तु का कोई संक्षिप्त वर्णन हो गया। कहीं कोई सम्मिलित संकेत किसी वस्तु क ओर हुआ, पर किसी स्थान पर इन वर्णनों से यह बात दृष्टिगोचर नहीं हुई कि इनके द्वार साधारण मनुष्यों को ज्योतिष और पदार्थ विद्या के ज्ञान की शिक्षा दी जावे 'कमा काुलुल्ला'''अनिल अहिल्ला' अर्थात् ऐ मुहम्मद / लोग तुझसे महीनों की सचाई पूछते हैं, और फिर कहदे कि 'क्वलहि'''लनास' अर्थात् कहदे कि महीनोंके द्वारा लोग अपने समय की गणना ठीक कर लेते हैं। आज किसी तुच्छ ज्योतिषी से (बहला) शब्द की आत्म कहानी पूछिये, फिर देखिये कि वह कैसे पृथ्वी और आस्मान के पचचे मिलाता है। गणित के विषय में परमेश्वर के दूत ने यह कहा, कि हम गिनती को उंगलियों पर ठीक कर लेते हैं। सारांश यह है कि उस समय में गणित तथा पदार्थ विद्या आदि की ओर किसी को तनिक भी ध्यान न था।'' फिर तहज़ीब अख़लाक भाग २ के सातवें नम्बर में सैय्यद साहिब कहते हैं कि ''अंग्रेज़ी विद्या प्राप्त करने को पक्षपाती मुसलमान भाई पाप समझते हैं। जब कि बगदाद के खलीफाओं के समय में जितनी अरबी विद्या आई वह सब यूनानी भाषा में अनुवाद किया गया। उस समय के बहुत से यूनानी विद्वानों को जो कि काफ़िरों की भाषा थी उसे पूर्ण रूप से प्राप्त करते थे। यदि ऐसा न होता तो जितनी वैद्यक विद्या हमारे यहां है, वह कुछ न होती, और दर्शन शास्त्र एवं तर्क शास्त्र का तो नाम भी न होता।''

यह युक्ति पूर्ण सम्मतियाँ कुछ इसलामी विद्वानों की हैं, जिनको हमने न्यायप्रिय पाठकों के विचार के लिये ज्यों का त्यों लिख दिया है। ताकि वह स्वयं ही विचार कर निर्णय करें, कि मिरज़ा साहिब के दावे कितने बेबुनियाद हैं।

ग़र्क़े बहरे कुफ़रोशिर्क बाशी। अज़ी बातिल ख़यालो बद गुमाने॥
परस्ती संगे असूदगर बसद साल। चु उफ़तद बरसरत याबी जियाने॥
खु़दा रा कुन हज़र अज़ दरसे कुरआं। कि मेनालद ज़ि ज़ौरे ओजहाने॥

उस जादू बयान के एक २ अक्षर पर उसके झूठ तथा गप्पों के विषय में एक कहानी लिख सकता हूं + इसलाम की शिक्षा से सत्य जाता रहा, उस में ईश्वर के भय का निशान तक नहीं। जगत् में रुधिर बहाने के लिये उसका जहाद है, कुरान नहीं तेग़रान (तलवार चलाने वाला) है। यदि तू क़यामत तक काबे को पूजे ताकि तू उस देश रहित के लिये कोई स्थान बनावे, तो इस मिथ्या कल्पना तथा बुरे विचार के कारण कुफ़र और शिर्क के समुद्र में डूबेगा। यदि तू सौ साल तक संगअस्वद को पूजता रहे तो भी जब तेरे शिर पर पड़ेगा तू हानि पायेगा। ईश्वर के लिये कुरान का पढ़ना छोड़, क्योंकि उसके अत्याचार से जहान रोरहा है।

बुराहीन उल अहमदिया पृष्ठ१०७मार्जन सं०८। जो हालमें हिंदु साहिबों के हाथों में वेद हैं जिन को ऋग्, यजु, साम, और अथर्वण से मौसूम करते हैं, उनका ठीक २ हाल मालूम नहीं होता कि वह किन हज़रात पर नाज़िल हुए थे। कोई कहता है कि अग्नि, वायु, सूर्य्य को यह इलहाम हुआ था, जो बिलकुल नामाकूल बात है।

(युक्त उत्तर) मिरज़ा साहिब ईश्वर आपको सत्यासत्य विवेक की शक्ति प्रदान करे, और अविद्या रूपी गढ़े से निकाल कर उद्दिष्ट पदपर पहुंचावे। पवित्र वेदों का ठीक २ वृत्तान्त किस को कुछ ज्ञान नहीं होता, आर्य्यों को, हिन्दुओं को या मुसलमानों को। यदि पहिला सन्देह है, तो सर्वथा मिथ्या है, और उसके उत्तर देने और समझाने को प्रत्येक आर्य्य सभासद् उपस्थित है। यदि सन्देह दूसरा है, तो यही आपकी भूल है। क्यों कि आक्षेप का उत्तर देना जानकार का काम है, न कि अनजान या भूले हुए का। यदि हिन्दु अपने धर्म्मसे जानकार होते, तो मुसलमान, ईसाई बनकर क्यों पथ भ्रष्ट होते, उन्हें अपना नाम ठीक कहलाने की तो समझ नहीं, फिर धर्म्म इन्हें कैसे प्रिय हो। आप अनजानों से प्रश्न न कीजिये, और न किसी हिन्दु को धोखा दीजिये। यदि सन्देह तीसरा है, तो उनकी मूर्खता हर प्रकार सिद्ध है।

गर नबीनंद बरोज़ शप्परा चश्म। चश्मए आफ़ताब रा चे गुनाह॥

अर्थात् खुले दिन भी चमगादड़ को आंख नहीं देख सकती, तो सूर्य्य का क्या दोष। जब तक वह पक्षपात को हृदय से निकाल, सत्य की ओर ध्यान न करेंगे, तबतक उनकी इच्छापूर्ति न होगी।

चारों पवित्र वेदों का श्री अग्नि, श्रीवायु, श्री आदित्य, और श्री अंगिरः महात्माओं को इलहाम हुआ था, और वह चारों सृष्टि के आदि में ऋषि अथवा सर्व श्रेष्ठ मनुष्य थे। यह बात अनुचित नहीं वरन् बिलकुल उचित और मान्य है। ज्ञान प्राप्ति के प्रथम अधिकारी वही हैं, और ज्ञानसागर के पहिले मथनकार

भी यही हैं। अनुचित बातें मुख से न निकालिये, और न किसी नाम के दो अर्थ होने पर कुतर्क उठाइये, अन्यथा *(१) ब्रह्मा, (२) रहमान, (३) अबूबकर, (४) उमर, (५) उसमान, (६) मसीह, (७) आदम, (८) इबराहीम, (९) मूसा, (१०) अबुहरोरा आदि नामों के विषय में हमें वही शब्द प्रयुक्त करना पड़ेगा, पहिला अपराध क्षमा। बुराहीन अहमदिया, पृष्ठ १०७ उपरोक्त मार्जन "और किसी का यह दावा है, कि ब्रह्मा के चार मुख से यह चारों वेद निकले हैं।"

[युक्त कसार] ब्रह्मा के चार मुख की कहानी एक बनावटी कहानी है, कि जिसका किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में पता नहीं मिलता, क्योंकि इसके विकास देने वाले पुराण हैं, जो सब प्रकार से अप्रामाणिक हैं। बुद्धि के अनुसार यह कथानिक केवल इसी प्रकार की मालूम होती है, जैसा कि आजकल एक पंडित जी सप्त भाषा भाषी हैं, जब कि यह वाक्य उनकी प्रतिष्ठा मात्र के लिये ही कहे गये हैं। राजाओं के हज़ारों कान होते हैं, किन्तु वास्तव में वही दो कान हैं। ब्रह्मा जी का भी एक ही मुख था, चारों वेदों को कंठ करने से चतुरानन प्रसिद्ध हुए। ठीक ऐसे ही लोगों के लिये एक कवि कहता है:—

है ज़बान एक और चार मज़े, उसकी हर बात में हज़ार मजे। पर मिरज़ा साहिब इस में आपका तनिक भी दोष नहीं, केवल हमारे स्वार्थी और अज्ञानी पोपों का अपराध है, बुद्धि के पीछे लाठी लेकर फिरना उनका काम है, और सत्य से दूर बेहूदा बातों के घड़ने पर नाम है। रावण के दस सिर उन्हों ने बनाये, स्वामी कार्तिक के शिर पर छः मुख लगाये, गणेश के चेहरे पर हाथी का सूंड लगाया, और चूहे पर स्वार करवाया। शिवपुराण और लिंग पुराण बना कर निर्लज्जता का सिक्का बिठाया। (शिवपुराण अध्याय ४२) अन्ततः इनकी मूर्खता और अविद्या का क्या और कहां तक बयान करें। गेहूं दिखाने किन्तु जौ बेचने वाले जैनियों के बनाये पुराणों पर इन का विश्वास है, और वहीं अनुमान रहित गाथायें इन के जीवन सर्वस्व (देखो सत्यार्थ प्रकाश पृ० २७३ से ३७३ तक) अब हम प्रकृत विषयकी ओर ध्यान देते हैं, और मूल आक्षेपका निराकरण करते हैं, जिस से कि सत्य का प्रकाश हो, और असत्य का नाश (देखो शतपथ ब्राह्मण कांड ११ अध्याय ५,–३,५ पृष्ठ ८६८ प्रकाशित लंडन)

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त। अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः
सूर्यात्सामवेद अथर्वाङ्गिरसः॥ शतपथ ११, ५, ४ ३-

अर्थात् सर्व स्वामी परमेश्वर ने उन तपस्वी ऋषियों द्वारा वेदों का

*(१) बुज़ुर्ग तथा जज़ीरा के एक गाँव का नाम (करफ़) (२) बहुत क्षमा करनेवाला नाम (ग़यास) (३) अर्थात् जवान ऊंट व अबू अर्थात् पिता (ग़यास) (४) अर्थात् मांस (करफ़) (५) अर्थात् सर्प व हाथी बच्चा (करफ़) (६) अर्थात् किरमान का पहाड़ (करफ़) (७) अर्थात् झूठ बोलने वाला, तेज चलने वाला घोड़ा और महा विषयी पुरुष (करफ़) (८) अर्थात् सफ़ेद ऊंट और बड़े दृढ़ हिरन (ग़यास) (९) अर्थात् दस्तक (ग़यास) (१०) अर्थात् बिल्ली का बाप (फ़रहंग)

प्रकाश किया, अग्नि ऋषि से ऋग्वेद, वायु ऋषि से यजुर्वेद, आदित्य ऋषि से सामवेद और अंगिर: ऋषि से अथर्ववेद का प्रकाश किया।

महाभाष्य से भी स्पष्ट प्रगट है, कि "इन्द्र ने बृहस्पति से सत्य विद्या पढ़ी, बृहस्पति ने आंगिरस् प्रजापतिसे, आंगिरस् प्रजापतिने मनुसे, मनुने विराट से, विराट ने ब्रह्मा से और ब्रह्मा ने अग्नि आदि ऋषियों से विद्या पढ़ी और अग्नि आदि ने ईश्वरीय बोधद्वारा साक्षात् परमात्मा से प्राप्त की।" **गोपथ ब्राह्मण** के प्रथम प्रपाठक के २९ वें ब्राह्मण से भी प्रगट है, कि "अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा, ऋषियों पर चारों वेदों का विकाश हुआ, जिनकी ज्ञान किरणों से सारे संसार पर प्रकाश हुआ।

मनुस्मृति के श्लोकों से भी इन्हीं महात्माओं की पुष्टि होती है, यहां तक कि सत्य सेवियों के लिये सत्य का अधिक प्रमाण ब्रह्मा जी का अग्नि आदि ऋषियों से वेद प्राप्त करने का उल्लेख है, और वही श्लोक इस पुस्तक के कुछ पृष्ठ आगे चलकर, लिखे हैं। सारांश यह कि और बहुत सी पुस्तकों में भी इन्हीं चार महात्माओं का वर्णन है, और किसी योग्य बुद्धिमान पुरुष को इस से इनकार नहीं। अतः प्रत्येक जान सका है कि ब्रह्मा जी ने वेद पढ़े, न कि उन पर प्रगट हुए, जिस प्रकार की शिक्षा कुछ काल से जाती रही थी, उसी प्रकार वेदों के विषय में भी विचार निर्बल होगये थे, जैसा की पुरुष की ओर कुरान को पोथी बतलाते हैं और नमाज़ पढ़ने से शरमाते हैं। मैं आप को सचाई की ओर बुलाता हूं, और "हलमिन मुआरिज़ि" कह कर समझाता हूं कि यह आपकी प्रतिज्ञा संकुचित होने के अतिरिक्त बुद्धिमत्ता के सन्मुख झूठी भी है, और न किसी ऋषि मुनिकृत ग्रन्थसे इसका प्रमाण मिलता है, क्योंकि आप सदैव सुनी सुनाई बातों पर विश्वासला बैठते हैं, और सत्य के जानने से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते, इसी लिये अनुसन्धान की दृष्टि से आपके आक्षेप बहुत दूर हैं और हम भी स्वीकार करने से लाचार रहते हैं।

बुराहीन उल अहमदिया पृष्ठ १०७ "और किसी को यह राय है, कि अलग २ ऋषियों के अपने २ बचन हैं, उन बयानात में यहां तक शक है, कि कुछ पता नहीं मिलता कि आया इन अशख़ास का कुछ ख़ारिज में वजूद था, या महज़ फरज़ी नाम हैं, और वेद पर नज़र करने से यह तीसरी (राय) सही मालूम होती है, क्योंकि अब भी वेद के जुदा २ मन्त्रों पर जुदा २ ऋषियों के नाम लिखे हुए पाये जाते हैं।"

(युक्त उत्तर) मिरज़ा साहिब आपने जनता को बड़ा धोखा दिया, और इलहामी जुआ खेला। झूठ बोलते ईश्वर का भय मनमें न लाकर किस प्रकार एक बेतुकी सी हांकदी, कि 'वेद पर नज़र डालने से' तनिक ईश्वर को साक्षी देकर बतलाओ तो सही कि वेदों का एक अक्षर भी जानते हो, या कि झूठी शेख़ी बघारते हो। क्या कभी वेदों को सारी आयु में देखा भी है ? शोक ! है। इस अज्ञानता पर और इतनी गप्पों पर।

वअंदाज़ा पबूद बायद नमूद, ख़िजालत नबुर्द' कि बिनमूद बूद (जितना हो उसी के परिमाण में ही दिखाना चाहिये। जिसने वास्तविकता को प्रगट किया उसे लज्जा नहीं उठानी पड़ी)

हज़रत यह सम्मति किसी पादरी को होगी, या किसी क्रिश्चियन हिन्दु की या किसी शेख़ जी की, अन्यथा और किसी हिन्दु या आर्य की यह सम्मति नहीं है। इसलिये आप शङ्का न कीजिये, और दृढ़ होकर उत्तर सुनिये। वेद किसी मनुष्य के बनाये हुए नहीं हैं, किन्तु पारब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से प्रकाशित हुए हैं। इन चार ऋषियों द्वारा जगत में इनका उपदेश हुआ, पर वह भी वेदानुसार किसी के सिफ़ारिशी या भेजे हुए नहीं। आपकी व्यक्तिगत शङ्का केवल पक्षपात की बड़ २ है, और संस्कृत से अनभिज्ञता ही इसकी जड़ है, अन्यथा किसी आर्य विद्वान की यह सम्मति नहीं। सारे महात्मा लोग मानते हैं, जिन दिनों मारीच आदि ऋषियों का और व्यास एवं वशिष्ठ आदि मुनियों का जन्म भी न हुआ था, उससे पहिले वेद जगत में विद्यमान थे, और सृष्टि के आदि में चारों वेद वैसे ही थे जैसे कि अब हैं। ऋषियों और मुनियों के भिन्न २ वचन ही ब्राह्मण पुस्तक, उपनिषद अथवा शास्त्र हैं न कि वेद भगवान। अतः यह आपका कथन केवल भ्रान्तिऔर शङ्का है, जो मिथ्या होने से किसी प्रकार मानने योग्य नहीं। वेद भगवान् परमात्मा का ज्ञान है, न कि इनका रचयिता कोई इन्सान है।

गल्प,

जब अरबमें मुहम्मद साहिब का देहान्त हुआ तो खिलाफ़तके विषय मेंझगड़ा हुआ, और गद्दी निशीनी काकोलाहल मचा। कुछ मनुष्य मजनूं से पूछने लगे, कि तुम्हारी क्या सम्मति है, मुहम्मद साहिब की खिलाफ़त किसको मिले। मजनूं ने हंस कर उत्तर दिया, कि "लैली" को। वही दशा हमारे मिरज़ा साहिब की है। स्वयं ही सम्मति देते हैं और स्वयं ही उसकी प्रतिष्ठा करते हैं और स्वयं उसकाकुतर्क उठाते हैं,कि "अब भी वेदके जुदा २ मन्त्रों पर जुदा२ ऋषियोंके नाम लिखे पाये जाते हैं।" मिरज़ा साहिब! यह आपका केवल वहम और भ्रम है जिसको आप अविद्या से बढ़ाना चाहते हैं। यह ऋषि वेद के रचने वाले नहीं वरन् भिन्न २ समयों में व्याख्याता हुए हैं। इस बात को महात्मा यास्क मुनि के बनाये निरुक्त में पूर्ण रूप से व्याख्यात किया गया है, और वहां का मूल लेख यह है,**"ऋषयो मंत्र दृष्टय: मंत्रा सम्प्राददः"**

अर्थात् वेद मन्त्रों की व्याख्या जिस २ ऋषि के द्वारा की गई और सबसे पहिले जिसने उत्तम व्याख्या किसी एक या अनेक मन्त्रों की की अथवाउसको प्रकाशित किया या पढ़ाया, इसी स्मृति के कारण उक्त मन्त्र की व्याख्या के अवसर पर दूसरे व्याख्याताओं ने उस ऋषि का नाम भी किनारे पर लिख दिया। जो कोई ऋषियों को मन्त्रों का कर्त्ता, वा रचयिता बतलाता है वह नीचे से ऊपर तक मिथ्यावादी है। वे ऋषि तो मन्त्रोंके अर्थ प्रकाशक हैं, अर्थात् वेद व्याख्याके। मूल चारों वेदों में उनके नाम या उनके वर्णन नहीं हैं, इस लिये आपका यह पक्ष भी भ्रान्त और सत्ता शून्य होने से अमान्य है।

बुराहीन उल अहमदिया पृष्ठ १०७, और अथर्वण वेद को निस्वत तो अकसर मुहक्किक पंडितों का इसी पर इत्तिफाक है, कि वह एक जाअली वेद या ब्राह्मण पुस्तक है, जो पीछे से वेदों के साथ मिलाया गया है और यह राय सच्ची भी मालूम होती है, क्यों कि ऋग्वेद में जो सब वेदों का असल असूल और सब से ज़्यादह मोतबिर ख़याल किया जाता है, सिर्फ ऋ०, यजु० और सामवेद का ज़िक्र है, और अथर्ववेद का नाम तक दर्ज नहीं। अगर वह वेद होता, तो उसका भी ज़रूर ज़िक्र होता, और फिर यजुर्वेद के २६ अध्याय में साफ़ लिखा है, कि वेद सिर्फ तीन हैं, ऐसा ही सामवेद में भी वेदों का तीन होना बयान किया है!"

(युक्त उत्तर), आज कल आर्य्यवर्त्त में चार प्रकार के पंडित हैं,

(१) वह अपढ़ नाम के पंडित जो शनिश्चर के दिन तेल जोड़ कर लोगों के दिवाले निकालते हैं, और स्वयं चैन उड़ाते हैं। यह लोग मूर्खों के आगे निस्सन्देह पंडित हैं, किन्तु विद्वानों के आगे शूद्रों से भी गये बीते हैं, इस लिये इनका कथन किसी दशा में विश्वास योग्य नहीं।

(२) ब्राह्मणों के वो बेटे जिनके बाप दादा किसी समय पूर्ण विद्वान हुए हैं, किन्तु स्वयं खेती बाड़ी, दुकानदारी, वा नौकरी सरकारी करते हैं, और संस्कृत से सर्वथा शून्य हैं। बाप दादे की प्रसिद्धि के कारण मूर्ख लोग इन्हें भी पंडित कहते हैं, जो सर्वथा भूल तथा अज्ञान है। इन्हीं लोगों में से जब कभी कोई सांसारिक प्रलोभन से किसी के जाल में फंस गया, तो झट उसे पंडित कह कर अपने पक्ष का साक्षी बना कर प्रमाण सिद्ध करना चाहा। ऐसे लोग यद्यपि पूर्वकाल में भी बहुत हुए हैं, किन्तु आज कल भी पाये जाते हैं। हम और स्थानों को छोड़ कर स्वय मिरजा साहिब के गवाहों की ओर संकेत करते हैं, जो संस्कृत के एक अक्षर से भी खाली और मिरज़ा साहिब उन्हें पंडितों के पद से सुशोभित करते हैं। जिन्हें मिरज़ा साहिब मुहम्मदी धर्म्म और क़ादयानी परमेश्वर के जबराईली अभियोग में अपनी गवाही का लिखवैया अर्थात् गुलाम अहमदी कह कर अपनी बुराहीन अहमदिया में प्रगट कर चुके हैं। कादियान का बच्चा बच्चा यहां तक कि मुसलमान भी इस बात को जानते हैं, कि महात्मा ने लोगों को एक भारी धोखे में फंसाने के लिये ही यह चाल चली।

(३) वह लोग हैं, जो विद्या की योग्यता तो रखते हैं किन्तु उदर दरी के प्रेम से श्वान भक्त बने हुए हैं। पंडित होने पर भी महामूर्खों के काम करते हैं। जैसे अकबर बादशाह के समय में चन्द लालची पंडितों ने मोहरों और रुपयों के लालच से "अकबर सहस्र नाम" और "अल्लोपनिषद्" या "अल्लाह सूक्त" रच कर बादशाह को उसकी पैगम्बरी की बधाई पहुंचाई, कि तू खुदा का खलीफ़ा है, तेरा वर्णन हमारे वेदों में आया है। "अंधा पीसे थोथे धान" उसी बादशाह और खुशामदी वज़ीर ने बिना सोचे समझे उन पंडितों को मालामाल करके दीन इलाही या अकबर शाही जारी करना आरम्भ किया। इसका विस्तृत वर्णन

कसस उलहिन्द तथा दबिस्ताने मजाहिब में आता है। अकबर ने कलमा यह बनाया "लाइला इलल्लिल्लाह अकबर खलीफतुलल्लाह" सलाम अलेकुम के स्थान पर अल्लाह अकबर तथा जल्ल जलालहु पर ही सन्तोष किया (देखो कसस हिन्द द्वितीय भाग)

(४) वह लोग हैं, जो ज्ञान और महत्व से पूर्ण, सचाई और सत्य भाषण में अद्वितीय हैं। लोभ और लालच से परे ईर्षा और द्वेष से किनारे, झूठ से से घृणा करने वाले और सत्य से प्रेम रखने वाले हों। सत्य शास्त्रों में उन्हें पंडित बतलाया है, और उन्हीं को सम्मति को प्रामाणिक ठेहराया है, आर्य्य समाज भी उन्हीं को पंडित स्वीकार करता है, न किसी और को, जैसे के लिखा है,

आत्मज्ञानं समारंभस्तितिक्षा धर्म्म नित्यता।
यमर्थानापकर्षन्ति सवै पंडित उच्यते॥

अर्थात् जिसको आत्म ज्ञान आलस्य से रहित हो सुख दुःख, मान अपमान, लाभ हानि, स्तुति निन्दा, एवं हर्ष और शोक आदि कभी न करे। धर्म्म में ही नित्य निश्चित रहे, जिस के मन को विषय सम्बन्धि वस्तु खींच नसके वही पंडित कहलाता है।

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्य्य मर्यादा पण्डिताख्यां लभेत सः॥

(अर्थ) जिस की बुद्धि ज्ञान के अनुकूल और जिस का ज्ञान बुद्धि के अनुकूल हैं, जो निरन्तर आर्य्य मर्य्यादा के भीतर रहता है वही पंडित कहलाता है। इस लिये मिरज़ा साहिब! शास्त्रोक्त रीत्यानुसार विश्वास अर्थात् धर्म को पहचान कर परमेश्वर को सन्मुख जान कर तनिक बतलाईये तो सही, कि वह विवेकी पंडित कौन हैं, जिन का यह वर्णन है। मिरज़ा साहिब! 'शेरे कालीन दीगरो शेरे नियस्तां दीगरस्त' अर्थात् शेर बब्बर और है और शेर ख़ोर बच्चा उससे भिन्न। वह आपके घरेलू पंडित और शास्त्रानुसार गुण दोष जानने वाले आलोचक और हैं। अब प्रस्तुत उत्तर सुनिये, वेद सुतरां एक है, क्योंकि एक पुस्तक के चार भाग हैं, जेसे तौरेत, ज़बूर और नबियों के दूसरे पुराने धर्म नियमों को सब ईसाई पुराना धर्म्म नियम और मसीह की सारी इंजीलों को नया धर्म्म नियम या केवल इंजील कहते हैं, जब कि वह चार हैं। किन्तु इस से भी बढ़ कर बहुत से ईसाई नये और पुराने धर्म नियमों को एक ही बायबल कह कर प्रसिद्ध करते हैं, और बुरा नहीं जानते। इसी प्रकार कई पंडित चारों को एक वेद करके पुकारते हैं किन्तु पूछते समय चार भाग बतलाते हैं। इसी कारण ब्रह्मा का नाम चतुर्मुख प्रसिद्ध है, किन्तु उसके चतुर्मुख होने पर चारों वेदों ही की योजना है। इस वास्ते किसी बुद्धिमान को आलोचना का स्थान नहीं, यदि ज्ञान शब्द को लिया जावे, तो यह कहना उचित है, और प्रत्येक न्यायप्रिय सज्जन के निकट निर्दोष है। कई पण्डित चारों को दो करके बतलाते हैं, और इसी से परा,

अपरा विद्या, अर्थात् कर्म्म और ज्ञान सम्बोधित करते हैं। कई चारों को तीन करके उच्चारण करते है, और इसीसे ज्ञान, कर्म्म एवं उपासना की व्याख्या करते हैं। पर इसमें किसी प्रकार का तनिक भी हर्ज नहीं और न वेदों के चार भाग होने में शङ्का का स्थान है।

दूसरे सम्पूर्ण महात्मा विद्वान् लोग इन चारों को चार ही बतलाते हैं और ज्ञान, कर्म्म, उपासना और विज्ञान के वास्तविक विभाग के अनुयायी और अनुगामी कहलाते हैं। यही बात सर्वथा सत्य और सबसे अधिक ठीक और वैदिक नियमों के अनुकूल है। किन्तु उपयुक्त व्याख्या किसी विद्वान् के निकट चारों बातों में से कोई भी संदिग्ध नहीं और हमें भी स्वीकृत है। अथर्ववेद जाली (बनावटी) नहीं है, किन्तु आप झूठ बोलना धोखेबाज़ी करना चाहते हैं. ताकि कोई मूर्ख,हिन्दु किसी प्रकार,संदिग्ध हो उठे और सत्य से हाथ उठावे, परन्तु अब वह समय नहीं रहा। घबराइये नहीं, और इसके उत्तर में दार्शनिक मत के नियमों का अनुशीलन कीजिये ताकि आपको तसल्ली हो जावे। यजुर्वेद के २६ अध्याय का नाम भी आपने झूठमूठ लिख दिया, और लिखते हुए ईश्वर का भय हृदय में न आया, कि झूठ का क्या दंड है। यजुर्वेद के २६ अध्याय में २६ मन्त्र हैं, और किसी में इन वेदों की गणना का वर्णन नहीं है। भले मनुष्य! झूठ से घृणा करो, परमेश्वर को न्याय के दिन क्या उत्तर दोगे हाँ ऋग्वेद मंडल १० अनुवाक ७ सूक्त ६० मन्त्र ६ में चारों वेदों का वर्णन है, जिससे आपके सम्पूर्ण सन्देहों का निस्सार होना सिद्ध है। पर "शर्म क्या वस्तु है, जो झूठ बोलने वालों के निकट आवे।" आप को किसी लालची ने धोखा दिया, अथवा इलहाम देने वाले को गुप्त भूल हुई, अन्यथा आप ऐसे अन्धे तो नहीं थे कि "जान मान कर, बिना पानी देखे रेतीले मैदान में जा कूदते।"

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ऋ० मं१० अ०७ सू० ६० मं०६

सर्व व्यापक सच्चिदानन्द, ज्ञान स्वरूप, परमेश्वर से (जो सब मनुष्यों के उपासना योग्य है) ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद प्रकाशित हुए हैं और यह वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं। सब मनुष्यों को उचित है, कि वेदों को ग्रहण करके इनके अनुसार कार्य करें. और यही वर्णन यजुर्वेद के ३१ अध्याय के सातवें मन्त्र में भी है।

इन दोनों मन्त्रों से स्पष्ट प्रगट है, कि वेद चार हैं, और आरम्भ से आज तक चारों प्रगट हैं। किसी प्रकार का विरोध नहीं, शतपथ ब्राह्मण में भी इसके विषय में स्पष्ट लिखा है, जो किसी प्रकार की व्याख्या नहीं चाहता।

एवं वा अरे स्यमहतोभूतस्यानिः श्वासितमेतद्दग, वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः॥ शतपथ ब्राह्मण।

याज्ञवल्क ऋषि वर्णन करते हैं, कि जो सर्वव्यापक आकाश से भी बड़ा

परमेश्वर है उससे ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्ववेद उत्पन्न हुए हैं और किसी से नहीं। किसी आर्षग्रन्थ में यह लेख नहीं है और न ईश्वर दया से कोई दिखला सकता है कि अथर्व वेद (कृत्रिम) बनावटी या जाली पुस्तक है। जिनको ईश्वर ने ज्ञान चक्षु दी हैं, और जिनके हृदय में सत्यप्रेम विद्यमान है वह अवश्य निश्चय करेंगे कि वेद भगवान् चार ही हैं। किसी प्रकार न्यूनाधिक नहीं। इसी प्रकार मुंडकोपनिषद् में वेदों को उत्तम व्याख्या से वर्णन किया गया है। ऋषि महात्मा वेदों की विद्याओं का विभाग करके वर्णन करते हैं कि वेद चार हैं:—

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद। इसी प्रकार देखो, तैत्तिरीय उपनिषद् अनुवाक ३ और बृहदारण्यक ब्राह्मण २ मन्त्र ५ और महाभाष्य अध्याय १ पाद १ आन्हिक १।

हमारे शास्त्रों को छोड कर प्राचीन काल ही से अन्य मतावलम्बी भी ऐसा ही मानते हैं (देखो * ग़यास उल्लुग़ात रदीफ़ बे।

बुराहीन उल अहमदिया पृ० १०८ "और मनु जो अपनी पुस्तक के सातवें अध्याय के बियालीसवें श्लोक में तीन वेद ही तसलीम करते हैं।"

[पुस्तक उत्तर] मनु स्मृति एक राज नीति की पुस्तक है जिसमें जहां तक राष्ट्रीय विषय के सम्बन्ध में उसने अपनी सम्मति में उचित जाना, दर्ज किया। वास्तव में मनु स्मृति को सारे आर्य्य लोग प्रामाणिक मानते हैं, और अब भी उसी के अनुसार कार्य्य करते हैं, परन्तु आर्य्यों का यह सिद्धान्त सदा से रहा और अब भी उसी प्रकार है कि जो पुस्तक वेद विरुद्ध हो, उसे अपना धर्म्म पुस्तक न मानना चाहिये, यतः मनु महाराज स्वयं भी इसके विषय में अध्याय १२ श्लो० २ व ३ श्लोक में यही फरमाते हैं कि जो ग्रन्थ वेद विरुद्ध कुत्सित पुरुषों के बनाये हैं संसार को दुःख सागर में डुबाने वाले हैं। इसी लिये निष्फल हैं और असत्य और अंधकार की ओर ले जाने वाले हैं और इस लोक और परलोक में दुःख पहुंचाने वाले हैं।

जो वेदों से विपरीत लेजाने वाली स्मृति उत्पन्न होती हैं, वे अयुक्त और दोष युक्त होने से शीघ्र ही नष्ट होजाती है। इनका मानना निष्फल और व्यर्थ है, वेदों ही को सब परम धर्म्म जानें।

यतः मनु स्मृति में अधिक भाग राज नीति का है इस लिये प्रायः मनुजी का तीन ही वेदों से काम पड़ा चौथेवेद से उनका सम्बन्ध बहुत कम रहा, क्यों

* ग़यासुल लुग़ात रदीफ़ बे में 'बेदार' शब्द की व्याख्या की गई है। उसका आशय यह है कि 'बेदार' वेद+आर से बना है। वेद का अर्थ ज्ञान है, यह हिन्दुओं की पुस्तक का नाम है, जिसे ब्राह्मण ईश्वर की वाणी कहते हैं और वह वास्तव में एक है, जिस के चार भाग हैं और इसी कारण से चार वेद कहते हैं ऋग, यजुः, साम और अथर्व। पहिले तीन वेदों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य तथा उनके सब धर्म्म नियम हैं और चौथे वेद में सृष्टि के आदि से अन्त तक और जो कुछ मध्य में हैं। अतः वादी की शङ्कायें केवल बकवाद और मिथ्याकल्पनायें हैं।

कि राज नीति का प्रायः तीनों ही में वर्णन है, पर चौथे वेद से किसी स्थान पर इन्कार नहीं किया, जहां आवश्यकता पड़ी, वहां स्वीकार हो किया, और स्वीकार न करने का कारण ही क्या था। इसके अतिरिक्त जब तक खुल्लम खुल्ला इन्कार न हो, न मानने का प्रगट करण किसी हठी या दुराग्रही के सिवा कोई नहीं कर सकता। हां यह तो मैं भी मानता हूं कि मनु के हर स्थान पर अकारण ही अथर्ववेद का प्रमाण नहीं दिया, अब असली श्लोक लिखता हूं।

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम्॥ मनु १—२३

(अर्थ) अग्नि, वायु, आदित्य, ऋषियों से सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने क्रमशः ऋग्, यजुः, साम, वेदों को ज्ञान, कर्म्म और उपासना सिद्धि के लिये प्राप्त किया।

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्य्यादित्य विचारयन्। वाक् शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः॥ मनु ११—३३

(अर्थ) अथर्ववेद जो अंगिरः ऋषि पर प्रकाश हुआ है, उसके मन्त्र को आपत्त काल में (जब कि कोई अत्याचारी राजा किसी विद्वान को सतावे, या कष्ट देकर लूटना चाहे) तब उसकी प्रार्थना से दुःख शोक दूर होकर उसको सुख व आनन्द होगा, क्योंकि ब्राह्मण का शस्त्र केवल वाणी है और उसका काम ईश्वर की भक्ति है। शास्त्रों के जानने वालों ने प्रकट किया है, कि वह मन्त्र जिनका प्रमाण मनु जी देते हैं वह अथर्ववेद के कांड ६ सूक्त ११ के दो मन्त्र हैं।

अब पाठकवृन्द! स्वयं विचार कीजिये, कि मनु जी इन्कार के विरुद्ध स्पष्ट इक़रारी हैं, कि ऋग्वेद अग्नि ऋषि के, यजुर्वेद वायु ऋषि के, सामवेद आदित्य ऋषि के और अथर्व वेद अंगिरः ऋषि के आत्माओं में प्रकाश हुए और वही ईश्वरीय ज्ञान के प्राप्तकर्त्ता हैं, न कि कोई और, उन्हीं से ब्रह्मा आदि तक पहुंचे। अब क्या सिद्ध करना हमारी ओर बाक़ी रहा। और मनुस्मृति के ४२ श्लोक का वादी ने प्रमाण दिया है, वह भी अशुद्ध है, देखो असली श्लोक यह है।

पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेवच। कुबेरश्च धनैश्वर्य्यं ब्राह्मण्यश्चैव गाधिजः॥ मनु ७-४२

(अर्थ) पृथु और मनु ने विनय से राज्य को पाया, कुबेर ने धन ऐश्वर्य्य को और गाधिजा ने विद्वत्ता को।

अब यदि मनुष्यत्व और लज्जा का कुछ अंश भी मौजूद है तो इतने स्पष्ट झूठ बोलने से लज्जा के मारे डूब जाना चाहिये। क्योंकि "लानतुल्ला अललकाज़बीन" (झूठों पर ईश्वर का धिक्कार) का आपके सम्बन्ध में क़ुरानी फ़तवा है।

पाठक वृन्द ! ऐसे स्पष्ट प्रमाण के पश्चात् किसी के इन्कार का कारण अज्ञान, हठ तथा दुराग्रह के अतिरिक्त और कोई ज्ञात नहीं होता। वास्तव में इन लोगों ने बिना विचारे मूर्खों के अनुकरण को अपना धर्म जाना हुआ है। मानो ईश्वर ने विवेक का नाम भी इनमें नहीं रखा, और "योविज्ञो मंन्यथा" (जिसे चाहे दुःख दे) को प्रति क्षण रट रहे हैं। चक्षु तो मुख पर दो मौजूद हैं, पर अन्धे बन कर काम करना अपना असूल जानते हैं। इस बात को प्रत्येक बुद्धिमान जान सकता है, कि जिस विद्या में निपुणता न हो, उसके विषय में सम्मति देना नीचता है। जब हज़रत मनुस्मृति जानते ही नहीं तो यों ही आक्षेप करने से क्यों नहीं शरमाते। परमेश्वर ऐसे मनुष्यों को पक्षपात रूप शतान के पंजे से छुड़ा कर सत्य मार्ग दिखा देवे और मूर्खता के भंवर से बचावे।

बुराहीनुल अहमदिया पृष्ठ १०८ भाग २ हाशियासं० ८, "और योगवशिष्ठ में जो हिन्दुओं की बड़ी मुतबर्रिक किताब शुमार की जाती है, और इन तालीमात का मजमूआ है। जो ख़ास राजा रामचन्द्र जी को उनके बुज़ुर्ग उस्ताद ने दी थी, चारों वेदको निस्बत ऐसा साफ़ लिखा है, कि बस फ़ैसला ही कर दिया, जिसका खुलासा यह है, कि सिर्फ़ अथर्ववेद के होने में बहस नहीं, वल्कि सारे वेदों का ही यही हाल है, और कोई इनमें ऐसा नहीं, जो तग़य्युर और तबद्दुल और कमो बेशी से ख़ाली हो।"

(युक्त उत्तर) यह सत्य है, कि हठ और पक्षपात मनुष्य की आंखों को अन्धा कर देता है और उसे दिन का प्रकाश होने पर भी कुछ नहीं सूझता। वही हाल बुराहीनके लेखक का है, जहां प्रमाण देते हैं, अशुद्ध और झूठा होताहै, उन्हें पुस्तक बनाने और झूठी प्रसिद्धि प्राप्त कर रुपया कमाने से काम है, न कि सत्य निश्चय। मुसलमानों में दाढ़ी हिलाने के लिये योग वासिष्ठ का नाम लिख मारा, और विचार कर लिया, कि बस अब वेदों का खण्डन हो गया, परन्तु वादी को याद रहे, कि बिना हेतु के प्रतिज्ञा उसको स्वयं ही अपमानित करेगी। न प्रकरण का पता, न अध्याय का पता, न मूल लेख का पता। अरे इलहामी ! यही इलहाम है, कि योग वासिष्ठमें है। महात्मन् ! योग वासिष्ठमें नहीं है, आओ छः प्रकरण युक्त सम्पूर्ण योग वासिष्ठ हमारे पास मौजूद है, आंखें खोल कर पढ़ो, अन्यथा किसी ब्राह्मण से सुनलो, पूछ लो, आप के पक्ष का कहीं भी निशान नहीं है, वरन् उसके विरुद्ध ही मौजूद है (देखो मोक्ष प्रकरण) "जब तक तुरीय अवस्था में न पहुंचे तब तक सत्संग, गुरु सेवा, और पूज्य जनों से अलग न हो, प्रत्युत उचित सहवास करता रहे और श्रुति स्मृति एवं धर्म शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के नियमों का आचरण करता रहे, तथा सभ्य रीतियों, आचार क्रम और नैतिक नियमों का पालन करता रहे। और जो मनुष्य इस पद को प्राप्त करता है वह देवताओं से भी उच्च पद पा लेता है।" चोथे स्थिति प्रकरणमें भी लिखा है " ऐ रामचन्द्र !

जिसको मुक्ति की इच्छा हो, वह वेदों को पढ़े और वेदानुकूल आचरण करे।" "स्वाधीनता के पाने और मुक्ति प्राप्त करने के लिये वेद और शास्त्र ही सत्य ज्ञान हैं।" छठे निरवाण प्रकरण में लिखा है, "यदि मनुष्य के शिर पर प्रलय भी आ उपस्थित हो, तो भी वेद, शास्त्र एवं गुरुजनों की आज्ञाका उलङ्घन न करे।" यद्यपि जो वसिष्ठ स्वयं चारों वेदों को ईश्वरकृत और मान्य जानता है, पर 'एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति' जैसे वेद विरुद्ध सिद्धांत का प्रचारक होने से हम लोग उसे सत्य और प्रामाणिक पुस्तक नहीं मानते। इसके अतिरिक्त निम्न लिखित कारण भी उसके मान्य होने मे बाधक हैं:—

(१) विद्वन् मंडली का मत है कि यह पुस्तक वसिष्ठ जी के नाम से किसी दूसरे ने बनाया है, इसका लेखक न बाल्मीकि है और न वसिष्ठ, यह किसी दूसरे की ही रचना है। क्योंकि बाल्मीकि के विषय में यह बहुत विरुद्ध है और वसिष्ठकी सम्मतियां से भी जो अन्य सत्य ग्रन्थों में प्रस्तुत हैं, उसका विरोध है। इस लिये इसका लेखक वसिष्ठ और बाल्मीकि से भिन्न कोई और है, इसी लिये अप्रमाण। (२) शङ्कराचार्य्य के समय तक केवल बाल्मीकि रचित रामायण प्रामाणिक थी, योग वसिष्ठका पता भी नहीं था, इस लिये अप्रमाण है। (३) इसमें १८ पुराणों का वर्णन पाया जाता है, जिससे पता लगता है कि यह पुराणों के बाद की रचना है, जो आठ नोसौ वर्षोंका काल है,इस लिये अप्रमाण है। (४) बहुत से विद्वान पंडितों ने मान लिया है,कि यह शंकराचार्य्य से पीछे की रचना है,यहांतक कि इसका बनाने वाला और पञ्चदशी का लेखक एक ही है क्यों कि दोनों की लेखन शैली मिलती है। इनका लेखक शंकराचार्य्य के चेलों में से एक नवीन वेदान्ती था, इसलिये अप्रमाण है। आर्य्यसमाजके समासद् साधारणतया इनका और विशेष कर "एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति" (अद्वैतवाद) का खंडन करते हैं। हमारे यहां यह पुस्तक कभी भी प्रामाणिक नहीं माना गया और न माना जाता है, किन्तु पता नहीं कि धींगा धींगी आक्षेप करके वादी ने क्या लाभ उठाया। यदि उससे वेदों की निन्दा भी प्रगट होती है तोभी वह और पुस्तकों की भांति अप्रामाणिक है। इस लिये उससे हमें किसी प्रकार की हानि नहीं, और न उसके मिथ्या अथवा सत्य होने से आर्य्य समाज पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है। अतः यह आक्षेप सर्वथा व्यर्थ है, और किसी सत्या-भिलाषी को स्वीकृत नहीं।

बुराहीन अहमदिया पृष्ठ १२१ "अब इन साहिबों को सोचना चाहिये, कि तौहीद जो मदार नजात का है किस किताब के ज़रीये से सबसे ज़्यादह शाया हुई। भला कोई बताए तो सही कि किस मुल्क में वेद के ज़रीये से वहदानियत इलाही फैली हुई है, या वह दुनियां किस परदे ज़मीन पर बस्ती है कि जहां ऋग, और यजु और साम और अथर्व ने तौहीदे इलाही का नक़ारा बजा रखा है। जो कुछ वेद के ज़रिये से हिन्दुस्तान में फैला नज़र आता है, वह तो यही आतिश परस्ती, शमस परस्ती, बिशन परस्ती, आदि अ·

नवा औ इक़साम की मख़लूक़ प्रस्तियां हैं, कि जिनके लिखने से भी कराहियत आती है हिन्दुस्तान के इस सिरे से उस सिरे तक नज़र उठा कर देखो, जितने हिन्दु हैं, सब मख़लूक़ प्रस्ती में डूबे हुए नज़र आवेंगे। कोई महादेव जी का पुजारी और कोई कृष्ण जी का भजन गाने वाला और कोई मूर्तियों के आगे हाथ जोड़ने वाला।"

(युक्त उत्तर) वेद भगवान् ने सारे संसार में एकेश्वरवाद फैलाया, और सारे संसार के दार्शनिकों, पूर्वजों और पैग़म्बरों ने यहां से एकेश्वरवाद पाया। अद्वैत की नींव वेद हैं, और ज्ञान के सागर भी। सचाई पहिले यहां से निकली, ईश्वर उपदेश के प्रथम अध्यापक वेद ही हैं न कि और कोई। जैसा कि हम वेद और कुरान की तुलना में दिखा चुके हैं।

जितने आक्षेपवादी ने किये हैं वह वेद शिक्षा न होनेका परिणाम हैं, और वेद विरुद्ध चलने के कारण। किन्तु फिर भी अनीश्वर पूजा में हिन्दु, मुसलमानों की अपेक्षा अधिक बुरे नहीं। जहां हमें कुरान से शिक्षा मिलती है और उसको अद्वैत वादिता दिखाई देती है वह केवल इतनी ही है कि कहीं मुहम्मद की पूजा, कहीं अली की पूजा, कहीं ग़ौस आज़मकी पूजा इत्यादि नाना प्रकारकी पूजायें और सृष्टि पूजा फैल गई। कोई पीरप्रस्तीको धर्म्म जानता हैं और कोई कबरप्रस्तीको लोक परलोक साधक, सखी सरवरप्रस्ती, मदीनाप्रस्ती, काबाप्रस्ती, करबला प्रस्ती नजफ़प्रस्ती संग असवद्प्रस्ती, ज़मज़मप्रस्ती, मुईनउद्दीन, प्रस्ती किताबप्रस्ती, तक़लीदप्रस्ती, दस्तारप्रस्ती ताज़िया प्रस्ती, ताबूत स्कीना प्रस्ती, मेहराब प्रस्ती, ज़ुहरा प्रस्ती, चान्द प्रस्ती, मूसा की आतिश प्रस्ती, बेतुल मुक़द्दस प्रस्ती, आदम प्रस्ती, ख़र प्रस्ती, मलायक प्रस्ती और जिन भूत प्रस्ती, सारांश यह कि लाखों भांति की मूर्खता अविद्या संसार में कहां से फैली? कोई मुहम्मदी निशान देसकता है, कि इसका आदिश्रोत कोई और है? कुरानसे पहिले इस अज्ञान और अविद्याका संसार में कहीं पताभी नहीं था। फ़ी सदी ८५ मुसलमान इसी बला में बंधे हैं। मक्के से लेकर हिन्दुस्तान के इस सिरे तक सारे मुसलमान इसी पीर प्रस्ती, हसन प्रस्ती, हुसैन प्रस्ती और फ़ातिमाप्रस्ती में डूबेहुए हैं। यद्यपि चिरकाल तक वैदिक शिक्षाके न होने से बहुत ख़राबी फैल गई थी, किन्तु फिर भी वह कुरान की पीर प्रस्ती से किसी प्रकार बुरी नहीं है।

मिरज़ा साहिब पहिले अपनी चारपाई के नीचे लाठी फेर लो, फिर किसी पर ऊंगुली उठाओ। छाज यदि बोले तो बोले किन्तु छिलनी तो किसी प्रकार बात करने के लायक भी नहीं।

या सख़ुन बरजस्ता गो ऐ मर्दे नादां याख़मोश,
(ऐ बुद्धिहीन पुरुष ! या समझ कर बोल या चुप रह)

बुराहीन उल अहमदिया भाग २ पृ० ११२ से ११६ तक

(वादी) "इस जगह हमें पंडित दयानन्द साहिब पर बड़ा अफ़सोस है जो वह तौरेत, इंजील व कुरान शरीफ़ की निस्वत अपने बाज़ रिसालों और नीज़ वेद भाष्य भूमिका में सख्त २ अलफ़ाज़ इस्तेमाल में लाये हैं, और मुआज़ अल्ला वेद को खरा सौना और बाकी खुदा की सारी किताबों को खोटा सोना करार दिया है।"

(सिद्धान्ती) यदि मुसलमान हो, और ईमान मुहम्मदी का कुछ चिन्ह भी हृदय में रखते हो, तो कहीं भी वेद भाष्य भूमिका में से अपने कल्पित पक्ष का निशान दिखलाइये और सिद्ध कराइये। मैंने पृष्ठ १ से लेकर ३७६ तक (आपके आक्षेपके विचार से) पड़ताल की पर आपका यह निरर्थक आक्षेप वहां न पाया। क्योंकि झूठ के पांव नहीं होते, इसी लिये अपने बाज़ रसालों का शब्द भी सहायता में लिख मारा, और यूं हीं इलहाम को अपराध लगाया। ईश्वर का डर हृदय में न आया, और सादी के कथनानुसार अनुकरण पर विश्वास लाया, जैसा कि वह प्रधान ईरानी और प्रतिष्ठित मुहम्मदी बोस्तां में कहता है—

बतकलीद काफ़िर शुदम रोज़े चन्द, ब्रह्मण शुदम दर मकालात यन्द।

(अर्थात् मैं अनुकरण करता हुआ थोड़े दिन के लिये काफ़िर बना और जन्द के बचनों में ब्राह्मण बना।)

तौरेत व इंजील का आप ठेका न लीजिये, और जबूर पर ईमान न दीजिये, इनके रक्षक पादरी व अंगरेज़ हैं, जो मुहम्मदियों से विद्या बुद्धि में तेज़ हैं। जहां तक मालूम हुआ है, स्वामी जी ने कभी किसी ईसाई वा मुहम्मदी पर वह आक्षेप नहीं किया, जो कुरान व इंजील में न हो, किन्तु उनके आक्षेप प्रायः इस प्रकार के होते थे, जिनको सुन कर ईसाई व मुहम्मदी या तो मिथ्या सिद्धांतों से हाथ धो बैठते थे, नहीं तो यदि पक्षपात के कारण, सत्य के ग्रहण करने से लाचार थे, तो मुख पर चुप की मुहर ज़रूर लगा देते थे। बड़े २ ईसाई व मुहम्मदी मतके पक्षपाती आये, पर यथोचित खण्डन के कारण पक्षपात की बाज़ी भी हार गये। पंजावके एक प्रसिद्ध मुसल्मान रईस ने अमृतसरको रेलवे यात्रा में बातचीत करते हुए मुझे बताया, कि "स्वामी जी सचमुच ऊंचे दरजे के महात्मा और सत्य कर्म्म परायण थे। मुझे स्वामी जी के उपदेशों से तीन लाभ हुए।

पहिला—मुझे पूर्ण विश्वास होगया, कि ईश्वरीय न्याय के आगे सिफ़ारिश केवल ठग विद्या है। वहां न तो कोई सिफ़ारशी है और न वकील। अब मैं सच्चे हृदय से मानता हूं, कि सत कर्म्मों के विना किसी प्रकार भी मुक्ति मिलना कठिन है, शिफ़ाअत जैसी और पाप तथा पाप के लिये साहस वाली वर्धक कोई बात नहीं।

दूसरा—आत्मा का अनादि होना भी उन्हीं की कृपा से मेरे मनोगत हुआ, और मेरा पूर्ण विश्वास हुआ, कि यदि आत्मा का अनादि होना न माना जावे, तो खुदा पर उनके उत्पन्न करने की आवश्यकता अनिवार्य्य है, औ

परमेश्वर को जीव का मोहताज बनाती है । उत्पन्न करने से उसके सारे गुणों की अनादिता हाथ से जाती रहती है और न कोई उचित कारण उत्पन्न करने की आवश्यकता को सिद्ध करता है, मैं सैंकड़ों मौलवियों से प्रश्न कर चुका हूं कि खुदाने आत्मा को किस वस्तु से कब और क्यों उत्पन्न किया, पर आज तक कोई उत्तर किसी ने नहीं दिया, इस लिये मेरी तुष्टि होगई, कि वह बात सर्वथा सत्य है । झूठ का इसमें लेशमात्र नहीं ।

३—आवागमन सिद्धान्त पर भी जिस पर पहिले अज्ञानता के कारण मेरा विश्वास न था, स्वामीजी के संतोष जनक कथनसे दृढ़ विश्वास होगया । बिना आवागमनके सैंकड़ों प्रकारके आक्षेपों से जो तर्क पर उठते हैं किसी प्रकार भी परमेश्वर की सत्ता शुद्ध और पवित्र सिद्ध नहीं होती । इसी लिये उनके सत्योपदेश से अब मैं पूर्ण रूप से मानता हूं कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त ठीक है, और उसका न मानने वाला ईश्वर को अत्याचारी ठैहराता है । इसके अतिरिक्त मांसभक्षण आदि से भी चित्त उपराम होगया है । मिरज़ासाहिब ! जब कि वेद—क्या शिक्षानुसार, क्या एकेश्वर वादिता आदि से, सब प्रकार से अद्वितीय है तो इस के खरा सोना होने में इनकार करना अज्ञानता है । हमें किसी विशेष पुस्तक से विरोध नहीं है किन्तु जो पुस्तकें सत्य से दूर हैं, उन से हम भी उपराम हैं ।

वादी—पंडित साहिब न अरबी जानते हैं, न फ़ारसी, बजुज़ संस्कृत के कोई और बोली, बल्कि उरदू ख़ानी से बिलकुल बे बेहरा व बे नसीब हैं ।

सिद्धान्ती—मिरज़ा साहिब न संस्कृत जानते हैं, न प्राकृत, न गुरुमुखी जानते हैं न गुजराती, भाव यह कि फ़ारसी के बिना और कोई बोली, यहां तक कि नागरी अक्षरों के ज्ञान से भी हज़रत सर्वथा वञ्चित, और शून्य हैं, पर स्वामी जी संस्कृत के बहुत बड़े ज्ञाता, विद्वान् और आचार्य थे । पवित्र वेद के पूर्ण ज्ञानी, और इसी लिये अरबी, फ़ारसी न जानने से भी उन पर कोई दोष नहीं आसक्ता ।

वादी—और इसी वजह से वेद की वह तावीलें जो कभी किसी के ख्वाब में भी नहीं आई थीं, वह करते जाते हैं, और फिर उन बे बुनियाद ख्यालात को छपवा कर लोगों से अपनी रुसवाई कराते हैं, और अगरचे सारे हिन्दुस्तान के पंडित शोर मचाते हैं, जो हमारे वेद में तौहीद का नामोनिशान नहीं, और हमारे बाप दादा ने वह सबक कभी पढ़ा भी नहीं है, और वेद ने हमको किसी जगह भी मख़लूक़ परस्ती से मने नहीं किया है ।

सिद्धान्ती—स्वामी जी महाराज की वेद सम्बन्धि व्याख्याओंने सारे संसार की आंखें खोलदीं और वेदोक्त अद्वैत का चर्चा नये सिरेसे विश्वव्यापी कर दिया । वह व्याख्यायें वैदिक निघण्टु, वैदिक निरुक्त, वैदिक व्याकरण और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार हैं, इन में किसी प्रकार का विरोध नहीं । प्रत्येक न्याय प्रिय मनुष्य अध्ययन करने और सोचने के उपरान्त सत्यासत्य के स्वरूप को

जान जाता है, किन्तु ईर्षा द्वेषबुद्धिवाले को क्या किया जाय कि जो स्वयं ही कुढ़ता रहता है। भारतवर्ष के वे पंडित कौन और कहां के रहने वाले हैं, जिन्हों ने आपके अथवा आपके सहयोगियों के पास वावेला मचाया अथवा आवेदन पत्र भेजा है। वे अब क्यों मुख छिपाते हैं और क्यों मैदान में नहीं आते। वे पंडित नहीं, वरन् कुरान के कंठ करने वाले सूरदास हैं अथवा किसी ईसाई मिशन या मुहम्मदी सरकार के नौकर होंगे, जो यह कहते फिरते हैं कि वेद में एकेश्वरवाद का निशान नहीं, इसी लिये वे सत्यभाषण से कोसों दूर हैं। उन्हों ने वेद को आंखों से भी न देखा होगा या वे केवल व्याकरणी पंडित होंगे अथवा केवल जाति के पंडित और विद्या से कोरे, अन्यथा कोई विद्वान पंडित वैदिक एकेश्वरवाद और परमात्मा से इन्कारी नहीं होसका। जिन के बाप दादा ने सौ २ या दो २ सौ वर्ष से एकेश्वरवाद का पाठ नहीं पढ़ा, उसे पंडित कौन कहता है, किन्तु इसके विपरीत वह शूद्र के नामसे पुकारे जाने योग्य है। मनुजी महाराज ने ऐसे ही पंडितों के विषय में कहा है।

यथा काष्ठ मयोहस्ती यथा चर्म्म मयो मृगः। यश्चविप्रोऽन धीयानस्त्रयस्ते नाम विभ्रति। मनु० २—१५७।

जैसे काठ का हाथी, चमड़े का हिरन, वैसे ही अनपढ़ ब्राह्मण है-यह तीनों नाम के सब कुछ हैं किन्तु काम के कुछ नहीं।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः। मनु० २ श० १६२

जो द्विज वेद का पढ़ना छोड़कर दूसरी पुस्तकों की ओर परिश्रम करता है, वह कुटुम्ब सहित जीतेजी शूद्र होजाता है।

यह निराधार विचार नहीं है, किन्तु निराधार इमारतों के गिराने वाले, बहमों और कुसंस्कारों के मिटाने वाले हैं। झूठे नबियों और मिथ्यावादी वलियों के मन घड़ंत विचारों को जो लोग ईश्वरीय ज्ञान बतलाते हैं, वही संसार और धर्म में अपनी प्रतिष्ठा का अनादर कराते हैं। सत्यवादियों का अपमान कभी नहीं होता, वरन् उनके कष्ट उठाने से सम्पूर्ण जाति के पथप्रदर्शन और सत्य का मान सवाया होता है। आप बेहूदा शोर मचाते हैं, और मूर्खता से प्रतिज्ञा करके अपना अपमान कराते हैं। परमेश्वर लोगों को आपके छल कपट से बचावे, और आपको सत्य धर्म पर लावे।

वादी—और उन सदहा देवतों को जो वेद के मुतफ़र्रिक़ माबूद हैं, सिर्फ एक खुदा बनाना चाहते हैं, ताकि वेद के इलहामी होने में कुछ फ़र्क न आजावे।

सिद्धान्ती—मिरज़ा साहिब आप यूं ही उचित बातों में हस्तक्षेप करना पसन्द करते हैं, और ईश्वर से नहीं डरते। सैकड़ों देवता वेद के भिन्न २ पूज्य नहीं हैं, और न वैदिक धर्म वालों का उनसे कुछ पूज्य भाव का सम्बन्ध है, किन्तु

वेद का पूज्यदेव केवल एक निराकार परमेश्वर है, दूसरा कोई नहीं। हां! देवता शब्द के अर्थ मूर्ख लोग अशुद्ध समझते हैं, और तर्क से गिरकर एवं संशयात्मिक होकर सत्य मार्ग से दूर जा पड़ते हैं। देवता 'दिव' धातु से बनता है, इसके पांच अर्थ हैं, (१) क्रीड़ा, (२) अधिकार करने की इच्छा (३) भीतरी और बाहरी व्यवहार, (४) बड़ाई (५) उत्तमता और प्रकाश, जिन से यह काम हों या जिस में यह काम हों उसको संस्कृत की परिभाषा में देवता कहते हैं। पर कोई बनावटी देवता हमारी उपासना के योग्य नहीं है। इसलिये संक्षेपरूप से देवता शब्द के अर्थ विद्वान, गुरुजन, महात्मा, प्रकाशमान हैं। इन सब अर्थों पर यदि कोई बुद्धिमान तनिक भी विचार करे, और सत्य के ग्रहण करने की इच्छा हृदय में हो, तब उसे पूर्ण विश्वास हो जाये कि वादी का प्रश्न सत्य से कितना दूर है। वैदिक रीति से उपासना के लिये सम्पूर्ण देवताओं का स्वामी और सब प्रकाशक वस्तुओं का प्रकाशक एक विश्वदेव अर्थात् सर्वज्ञ परमेश्वर है, दूसरा कोई नहीं, और यही वेद का उच्च भाव है। माता पिता और आचार्य्य आदि महा पुरुषों को भी देवता कहते। जैसा कि उपनिषद् का प्रमाण है:—

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचर्य्य देवो भव अतिथिदेवोभव।

तै० उ०

ईश्वर आपको सत्य की आंखे प्रदान करे, और अविद्या के रोग से (जो मस २ में भरो है) मुक्ति दे। मिरज़ा साहिब! यही बात स्वयं वेद से प्रगट है, जिसके लिये यहां एक प्रमाण लिखता हूं।

यस्य त्रयंस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्राविभेजिरे। तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥ अथर्व, १, ४, २३, २,

जो तेंतोस देवता हैं वह सब व्यवहारिक हैं। परमार्थ मे उनसे कोई सम्बन्ध नहीं, वह परमार्थ या भलाई के किसी काम के नहीं हैं, (जिसको इनकी पूर्ण व्याख्या देखनी हो वह वेद भाष्य भूमिका पृष्ठ ६५ से लेकर ७० तक अध्ययन करे) और न उनमें से कोई उपासना के योग्य है, इन सबका स्वामी जो ब्रह्म है, वही सबके उपासना योग्य है, दूसरा कोई नहीं, वही तुम्हारा एक स्वामी है।

कठोपनिषद् के अध्याय ५ श्लोक १५ में इसी वेद मन्त्र की व्याख्या है कि "सूर्य्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली, अग्नि, यह सब परमेश्वर में प्रकाश नहीं कर सकते, किन्तु इन सबका प्रकाश करने वाला एक वही है। क्योंकि तेतीस देवते हैं जिस को समुदाय रूपसे हम सृष्टि कहते हैं, सब उसी के प्रकाश से प्रकाशमान हो रहे हैं। अतः जानना चाहिये कि ईश्वर से भिन्न कोई पदार्थ स्वतन्त्र अर्थात् स्वयं प्रकाश करने वाला नहीं है। इसलिये एक परमेश्वर ही सब का पूज्य है, दूसरा कोई नहीं।" शतपथ ब्राह्मण जो वेदों की पुरानी व्याख्या है, में इसके विषय में और भी बढ़कर और पूरी व्याख्या मौजूद है, ताकि किसी मूर्ख को भी किसी प्रकार की शंका न रहे।

यान्यां देवतामुपास्ते नस वेदयथापश्चरेवंसदेवानाम ।
शा० कां० १४-४

अर्थात् "जो ईश्वर को छोड़ किसी देवता की उपासना करते हैं, वह सीधे मार्ग से भ्रष्ट हुए हैं, और उनकी वह उपासना वेद विरुद्ध है, अतः वह मनुष्य नहीं, किन्तु देवताओं के गधे हैं, उनका कल्याण कठिन है।"

जब यह बात वेदों, उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रन्थों से स्पष्ट प्रगट होगई, तो अब विचार कीजिये कि यह आक्षेप कितना अनुचित है "ताकि वेद के इलहामी होने में कुछ फ़र्क न आवे।" महाशय! वेद के इलहामी होने में अन्तर आना सृष्टि नियम का टूट जाना और सूर्य्य पर अविद्या से गर्द उड़ाना अथवा महान सागर में कूड़ा करकट डालने से बन्द लगाना, ठीक वही बात है, जैसे वेद के मुक़ाबले में कुरान तथा इंजील का लाना, और उनके सनातनपन को दार्शनिक युक्तियों से प्रमाणित करने का बीड़ा उठाना।

मिसल है जब कि परवाने के सिर पर मौत आती है।
वसूए शमा उसको खेंच कर उलफ़त से लाती है॥
तकब्बुर और नख़वत को भी दिल में आ घुसाती है।
जनूं के जोश को भी मग्ज़ में उसके बढ़ाती है॥
न जां की होश रहती जिस्म की भी सुध भुलाती है।
परों को उसके शमशीरे बरहना कर दिखाती है॥
हविस नुसरत की बढ़ती है तमन्ना जान खाती है।
ग़रज़ कुछ हो मुक़ाबिल शमा के आकर लड़ाती है॥
इधर वह आतशों रू और उधर परवाना नाज़ुक जां।
शहादत उसको होती और आलम को हंसाती है॥
परे परवाना की जुम्बश हवा उस दम चलाती है।
मगर क्या वह हवा उस शमा रौशन को बुझाती है॥
हरारत खून परवाने की जो गरमी दिखाती है।
मुक़ाबिल शमा के बतलाओ वह क्या पेश जाती है॥
तने परवाना से इक ज़र्रा ख़ाकिस्तर जो गिरती है।
बुझाने के ग़रज़ में शमा के गुल को गिराती है॥
पसीना जिस्म परवाने से जो गिरता है चरबी हो।
वह बत्ती बनके उलटा जिस्म को उसके जलाती है॥
मुक़ाबिल ज्ञान के अज्ञान पर यह बात सादिक़ है।
न काम आता जहाद और ने फ़साहत काम आती है॥
पिछत्तर हो गये फ़िरक़े तुम्हारे तेरह सदियों में।
तरक़्क़ी सब तुम्हारे ज़ुलम की बरकत कहाती है॥
खुदा के वास्ते बाज़ आओ गर कुछ हक़के तालिब हो।

बगरनः अब सदाक़त झूठ के धुर्रे उड़ाती है॥
सरापा चश्मए वहदत सदाक़त है रवां जिससे।
खुदादानो का हादी रूह जिससे शान्त पाती है॥
ज्ञान ईश्वर का और रहबर जगत का कोश विद्या का।
यह है उपदेश वेदों का जहालत जिससे जाती है॥
तअस्सुब छोड़ कर इन्साफ़ से वेदों को तुम देखो।
हर इक मन्त्र से बस तौहोद की ताईद आती है॥

मिरज़ा साहिब अब क़ुरान के इलहामी होने में अन्तर आता है, और बहुत से शिक्षित मनुष्यों के हृदयों में से पक्षपात का परदा उठा जाता है। ७५ सम्प्रदाय पहिले मौजूद हैं, और इनके अतिरिक्त लाखों नास्तिक और सामयिक (नेचरियें)। इसीलिये आपको इस चौदहवीं सदी में रसूल बनने का ख्याल आया, और मुसलमानों के परमेश्वर ने भी आसमान से इस बुराई को देख लिया मक्के तथा योरुशिलिम और ईरान के बदले कादियान की बारी आई। इलहाम की डाक चलती होने लगी, ताकि क़ुरान के इलहामी होने में कुछ अन्तर न आ जावे, और मुहम्मद साहिब के तलवारी भंडार को नष्ट होने की नौबत न आवे, किन्तु यत्न निष्फल है और समय बेकार है।

वादी—सिदक़ के अदम सबूत से कज़ब का सुबूत लाज़िम नहीं आता, जिस हालत में किसी शख़्श का कज़ब साबित नहीं, तो उसपर अहकाम कज़ब के वारिद करना और कज़ब २ करके पुकारना, हक़ीक़त में उन्हीं लोगों का काम है, कि जिनका धर्म और परमेश्वर और भगवान सिर्फ़ दुनियां का लालच, या जाहिलाना नंगो नामूस या क़ौम या बिरादरी है।"

सिद्धान्ती—नहीं जानते कि मिरज़ा साहिब ने बनावटी तर्क कहां से सीखा है। क्या किसी मनुष्य का सदाचार सिद्ध न होने से दुराचार में कसर रह जाती है और न्यायालय छोड़ सक्ता है? जिस प्रकार सूर्य्य आदि का प्रकाश न होने से अन्धकार उपस्थित होता है, उसी प्रकार सत्य न सिद्ध होने से झूठ सिद्ध होता है। क्या जिस समय हम कहते हैं कि अमुक आदमी सच्चा नहीं है, तो क्या प्रत्येक मनुष्य नहीं जानता कि वह झूठा अवश्य है। नहीं मालूम कि सच और झूठ के बीच आपने कौनसी रेखा को माना है, जिसे नये इलहामके अनुसार लगाया जाता है। स्वामी जी महाराज ने कभी कोई प्रतिज्ञा ऐसी नहीं की, कि जिसकी सिद्धि व्याख्या चाहती हो, किन्तु वह तो प्रत्येक बात प्रतिवादी से मनवाकर आक्षेप किया करते थे, किसी पर मन माना दोष नहीं लगाते थे। किन्तु इन पंक्तियों में लेखक "बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय" इस कहावत के अनुसार कुछ मनुष्यों के चरित्र साक्षी के साथ आपको बतलाता है, और न्यायाधीश भी आपको ही बनाता है। ईश्वर करे कि आप सत्यासत्य का विवेक कर सको और अपने प्यारे जीवन को नष्ट होने से बचा सको।

(१) जिसने शराब पी, अपनी लड़कियां से मैथुन किया और झूठ बोला। क्या वह धर्मात्मा है ? (लूत ? देखो उत्पत्ति तौरेत पर्व १९ आयत ३० से ३८ तक)

(२) जिसने मूर्ति पूजा की, सैकड़ों स्त्रियों से व्यभिचार किया और हत्या की, क्या वह धर्मात्मा है ? (सुलेमान ? देखो सलातीन१ बाब ११)

(३) जिसने झूठ बोला और बहिनसे सम्भोग किया, क्या वह धर्मात्मा है? (इब्राहीम उत्पत्ति की पुस्तक तौरेत बाब २० आयत १, २, ३, १२ तथा बाब १२, आयत १८, १९)

(४) जिसने सर्व संहार कराये, व्यभिचार कराये, निर्दोष बालक मरवाये, कंवारी छोकरियों से बलात्कार कराय, झूठ बोला और परमेश्वर के इलहाम का अपमान किया, क्या वह धर्मात्मा है ? (मूसा ? खुरूज़ बाब ३२ आयत २६ से ३१ तक और १९, गिन्ती बाब ३१ आयत १४ से १८ तक, ३५, इस्तस्ना बाब २१आयत १० से १४ तक)

(५) जिसने एक विवाहिता स्त्री से जबरी सम्भोग किया और उसके पति को कत्ल करवाया और झूठ बोला, क्या वह धर्मात्मा है ? (दाऊद ? स्मुईल २ बाब ११ आयत २ से २६ तक और कुरान सूरत "साद")

(६)जिसने सबके लिये चार स्त्रियें और अपने लिये अनगिनत और विशेष कर के ९,११,१८ उचित बतलाईं, खून और जहाद करवाये, मांस भक्षण किया, मूर्ति-पूजा की, सेकड़ों वैज्ञानिक पुस्तकों को जलवाया, अविवाहित स्त्रियों से सम्भोग किये, अपने बेटे की जोरू से दिल लगाया एवं बिना विवाह के ही सम्भोग किया और यह सब दोष स्वीकार करने के बदले खुदा के सिर थोपे, क्या वह धर्मात्मा है ? (मुहम्मद कुरान सूरत इसराव, कुरान सूरत इन्फाल, कुरान सूरत इनाम, कुरान नजम, बोस्तान सादी दीबाचा, मदारजउल नबूब्बत भाग २ पृ० २८३, कुरान सूरत इसराव वा तफ़सीर हुसैनी, कुरान सूरत नसा इत्यादि)

(७) जिसने मूर्ति पुजा कराई, परमेश्वर के नाम पर दोष लगाया झूठ बोला, लोगों को धोखा दिया और वध कराया, क्या वह धर्मात्मा, है ? (हारुन देखो खुरुज बाब ३२ आयत १ से ६ और २५

(८) जो खुदा के बिना किसी को प्रणाम न करे, पूर्ण विद्वान हो और एक ईश्वर कोमानता हो, क्या वह धर्मात्मा नहीं ? (शैतान ? देखो कुरान)

अब यदि आप में कुछ भी अनुयायीपन और धर्म्माचार का अंश मौजूद है तोइस पर न्याय पूर्वक उत्तर दीजिये, अन्यथा आप जानें। हम प्रतीक्षा करते हैं कि मिरजा साहिब को इस विषय में अब क्या इलहाम होता है।

वादी—अगर वह हक को कुबूल करे, और हर एक नौअकीज़िद्दियत छोड़दें, तो फिर एक ग़रीब दरवेशकी तरह सबको छोड़छाड़ दीन इलाही में दाखिल होना पड़े, तो फिर पंडित जी और गुरु जी और स्वामी जी इनको कौन कहे, पस अगर ऐसे लोग हक और रास्ती के मज़हम न हों, तो और कौन हो, और अगर उनका ग़ज़ब व गुस्सा न भड़के तो और किसका भड़के।

सिद्धान्ती—मिरज़ा साहिब का उद्देश्य प्रायः इस प्रकार का होता है, कि उन्हें अपनी अंधी आंख तो पूर्ण प्रकाशमय दिखाई पड़ती है। और दूसरों की प्रकाशमय आंख भी अंधी दिखाई पड़ती हैं। आप धार्मिक बिश्वास रखते हैं, कि "अपना गधा तो घोड़ा ही है और दूसरों के घोड़े भी गधे, नहीं तो खच्चर अवश्य ही हैं"। ईश्वरीय धर्म्मको अकबरी धर्म्म और गुलाम अहमदी धर्म्म या मुहम्मदी धर्म के धोखे से अलंकृत करना न्याय की आंखों पर पट्टी बांधना है। विद्वान् को विद्वान् लिखना मनुष्यत्व है, आवश्यक कर्तव्य अपितु ईश्वरीय विद्या, सत्य शिक्षा! कोई आर्य्य उनको गुरु नहीं मानता, हां आर्य्य धर्म या वैदिक शिक्षा के वे प्रचारक अवश्य थे और सत्य धर्म के प्रकाशक। स्वामी जी केवल संन्यासियों की पदवी है, और एक उचित आदर एवं सत्कार। सत्यका विरोध करना इसलाम का धर्म है, न कि आर्य्यों का। स्वामीजी एक निर्धन साधु थे और सत्य सेवी व सत्यकारी आप इसी लिये तो मुकाबले से मुंह छिपाते रहे, और जहां तक हो सका, अवसर को हाथ से गंवाते रहे। वह गुरुदास पुर आये, और चिरकाल तक विराजमान रहे। वहां समाज की स्थापना की, कई शास्त्रार्थ किये, व्याख्यान दिये, और क़ादियान के मान्य सभासद उनसे भेंट करने को गये और संशय निवारण किये, किन्तु आप आलस की निद्रा न छोड़ सके और चार आने किराया यक्के का व्यय न किया। स्वामी जी फिर अमृतसर में पधारे, और आपको उत्तर भिजवाये कि ईश्वर के लिये आइये और तसल्ली पाइये। यदि सत्य समझिये, तो मान जाइये वरनः युक्ति को काम में लाइये, किन्तु अवश्य पधारिये। उत्तर के पहुंचते ही कपकपी जारी हुई और वहम सवार हुआ, इलहाम भूल गये और इसलाम भाल गये। मरणासन्न अवस्था होगई और मृत्यु की प्रतिष्ठा। क़ादियान से बाहिर न निकले, और बारह आने किराये के ख़र्च न किये, और न मुकाबले का साहस हुआ। लज्जा और मर्यादा से हाथ धो, सत्य से मुख छिपाते रहे, और क़ादियान को ही "बैतुल मुक़द्दस" (पवित्र तीर्थ) की माला फेर कर बातें बनाते रहे। यदि इसलाम को छोड़ आर्य धर्म स्वीकार करते अनुचित वासना और इसलामी दुराग्रह से किनारे होकर सत्य को हृदय में धारण करते अथवा यदि सत्य को न मानने के कारण ईश्वरसे डरते, तो वैदिक धर्म के मानने में एक ग़रीब दरवेश (स्वामी जी) की न्याईं सब कुछ छोड़ छाड़ ईश्वरीय धर्म में प्रवेश करना पड़ता और मौखिक उपाधियों के सिवाय पेटियों में रुपया कहां से आता। हज़रत! अंधों में काना राजा होता है, किन्तु आंख वालों के सामने वह भी मान खोता है। वैसे भी आर्य्यों के सन्मुख आपका बड़प्पन न चल सकता, और न इलहाम की कल्पित आज्ञायें चलतीं, और ईश्वर के अनादि इलहाम वेदों पर विश्वास लाना पड़ता, नये नये वाक्य कहां से घड़ सकते। आपको मिरज़ा जी, मुजद्ददजी, इलहामीजी, मुर्शिदजी, गूगापीर और धौंकली पीरों का स्थानापन्न, क़ादियान वाला मियां, दसौंधा बेग आदि कौन मानता।

अतः पाठक वृन्द ! इन घटनाओं पर विचार करें कि यदि ऐसे लोग वैदिक धर्म्म की सचाई के फैलाने में बाधक न हों, तो और कौन हो। यदि मिरज़ा साहिब जैसों का क्रोध न भड़के तो किसका भड़के यदि इतने मुसलमानों को आर्य्य होते देख ऐसे लोभी लोगों की घबराहट न बढ़े तो किसको बढ़े, यदि इनके हृदय में आग न लगे तो कहां लगे, यदि यह अधीर न हों तो और कौन हो, यदि यह लोग इसलाम को डूबती नैय्या के बचाने में हाथ पांव न मारें तो कौन मारें, यदि यह मुल्ला लोग ऐसे समयों में इलहाम के दावेदार न हों तो और कौन हो, यदि यह लोग दाव पेंच खेल कर भूखे मरते हुए कागजों रुपयों का विज्ञापन जारी न करें तो और कौन करे, यदि इनके लालची मुंह से लार न टपके तो किसके टपके, यदि इन लोगों को नींद हराम न हो तो किसको हो, यदि ऐसे कठिन समय पर इनके पेट में चूहे न दौड़ें और खलबली न डालें, तो किस के डालें. सारांश यह कि लोगों के अधिक आर्य हो जाने से जो कुछ हानि है, वह इन्हीं को है, और जितना घाटा है वह इनका।

जिस कदर नुकसान है सारा है मिरज़ा आपका।
आर्य्यों ने रिज़क बस मारा है मिरज़ा आपका॥
मौजिज़ों की खुल गई कलई सारी इन दिनों।
दांवजो था मकर का हारा है मिरज़ा आपका॥
सिक्काहाय मौजिज़ा तलबीस साबित होगये।
अन्दरू(१)तांबा बिरू(२)पारा है मिरज़ा आपका॥
आबे ज़मज़ाम बल्कि कहते थे जिसे आबे हयात।
वह कुआं साबित हुआ खारा है मिरज़ा आपका॥

वादी—इन को तो इसलाम की इज़्ज़त मानने से अपनी इज़्ज़त में फ़र्क आता है, तरह २ के वजूह मुआश बन्द होते हैं. वो फिर क्यों करप न इसलाम को क़बूल करके हज़ार आफ़त ख़रीदलें, यही वजह है कि जिस सचाई पर यक़ीन करने के लियें सदहा सामान मोजूद हैं, इसको तो कुबूल नहीं करते, और जिन किताबों की तालीम हर्फ २ में शिर्क का सबक़ देती है, उसपर ईमान लाये बैठे हैं।

सिद्धान्ती—शोक है। तेरी संकुचित बुद्धि पर, कौनसी इसलामी प्रतिष्ठा थी जिस के मानने से उन्हें इंकार था, कौनसी इसलाम में खूबियां थी, जिनसे वह जानकार न थे, इसलाम में खूबियां ? इसलाम में प्रतिष्ठा के भाव ?? यह दूर की बातें हैं और बहुत दूर की।

कत्ले आलम निशाने इसलाम अस्त। तेग़दर कफ बयाने इसलाम अस्त॥
शर ज़िशैतानो ख़ैर अज़ यज़दां। दर दो फ़बज़ा इनाने इसलाम अस्त॥
बा खुदा मुश्तरिक मुहम्मद शुद। कलमैशिर्क जाने इसलाम अस्त॥
दौरे मै नहल हूरो गिलमां हम। ई नजातो जनाने इसलाम अस्त॥
गश्त वीरां ज़ि ज़ौरे ओ आलम। दीने बिलजब्र शाने इसलाम अस्त॥
दख़ल दरदीं ज़िइल्मो अक़्ल हराम। सुन्नते आलिमाने इसलाम अस्त॥

(१) भीतर (२ बाहिर

बस कुतब ख़ानाए उलूमे लतीफ़। सोख़ता दर ज़माने इसलाम अस्त॥
क़त्लो ग़ारत गरी मज़ीद बरआं। याद-गारे शहाने इसलाम अस्त॥
अज हदीस अना नबी बिल-सैफ़। जौहरे ज़ालिमाने इसलाम अस्त॥
क़ादियानी ज़ि बादे ख़त्मे रसल। नंगे पैग़म्बराने इसलाम अस्त॥
हर कि शक आवरद शवद काफ़िर। बे दलील ईं बयाने इसलाम अस्त॥

(अर्थ) सर्व साधारण की हत्या ही इसलाम का निशान है, इसलाम का बयान हाथमें तलवार लिये है।

शैतान, से बुराई, यज़दान से भलाई-दो के हाथ में इसलाम का बाग है।

परमेश्वरके साथ मुहम्मद भी शरीक होजाना है और यह शिर्कका कल्मा ही इसलाम की जान है।

शराब का दौर दौरा हूरों और ग़िलमानों का सहवास- यही तो इसलाम की मुक्ति और फल है।

उसके अत्याचार से जगत उजड़ गया और ज़बरदस्ती लोगों के गले में इस्लाम ठोसना, यही इसलाम की शोभा है।

धर्म्म में विद्या और बुद्धि का प्रवेश करना हराम है, यही इसलामी विद्वानों की सुन्नत (निशानी) है।

बहुत से सूक्ष्म विद्याओं के पुस्तकालय इसलामी दौर दौरे में जला दिये गये।

हत्या, लूट और ग़ारतगरी और भी बढ़ चढ़ कर मुसलमानी बादशाहोंकी यादगार है।

हदीस का यह लिखना कि नबी तलवार से बनता है—इसलामी अत्याचार के गुण बतलाने को काफ़ी है।

रसालत के बाद भी क़ादियानी रसूल का पैदा होजाना, इसलामी पैग़म्बरों के माथे पर कलंक का टीका है।

कोई भी संदेह करने वाला काफ़िर गिना जायगा—मुसलमानों की यह दलील स्वयं ही बेदलील है।

मिरज़ा साहिब वह कौन से रोज़ी के कारण हैं, जिन के बन्द होजाने की उन्हें फ़िकर थी। ईश्वर को सन्मुख जान कर यदि आप वर्णन करें तो हम इसी से आपकी सचाई की परीक्षा करें, और कुरान के झूठ को इसके पश्चात खोलें, अन्यथा आपकी गाली गलौच से हमें तसल्ली नहीं होती, चाहे आयु भर देते रहो। प्रत्येक बात को युक्ति से वर्णन करो, और सत्य प्रियता की इच्छा से प्रथम अपने घर में उस पर ध्यान धरो, अर्थात् पहिले तोलो फिर मुख से बोलो। सादी कहता है कि, "बुरहां क़वी बायदो मानवी, न रग हाय गर्दन चु हुज्जत क़वी" अर्थात् युक्ति, बलवति सार गर्भित और अर्थवति होनी चाहिये न कि गर्दन की नाड़ियां युक्ति के सदृश बलवती। वेद के विषय में ऐसे शब्द ? अज़ाक अल्ला!

यदि एक स्थल पर भी कोई विद्वान् आदमी वेद से शिर्क (अनेकेश्वरवाद) का एक शब्द भी निकाल कर सिद्ध करे, और खुल्लम खुल्ला बतावे, तो हम उसी समय जो शर्त करें, देने को तैय्यार हैं, और इस वेदवाद की शिक्षा को छोड़ने पर तैयार हैं, किन्तु कोई अन्य मतावलम्बी इस विषय में मुकाबला नहीं करता, मुकाबला तो दूर रहा, इक़रार का शब्द भी मुंह पर नहीं लाता। (हां मेरा आशय इस स्थानपर मुकाबला करने वालों और तैय्यार होने वालोंसे संस्कृत के विद्वानों से है, न कि अरबी के मुल्लानों और अंगरेज़ी के बाबुओं से) ऐसी दशा में हम ऐसे वहम को (जैसा कि आप करते हैं) केवल बकवास मात्रके बिना क्या मानें, और किस प्रकार प्रामाणिक जानें? कुरान से अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा और अग्निपूजा कुरानी आयतों से और उसके प्रामाणिक अनुवादों से इसी पुस्तक में सिद्ध करेंगे। पहिले तो उचित है कि संसार का कोई मुसलमान उत्तर देवे, हमें संगत विचार की आवश्यकता है न कि घातक तलवार की।

इसके पश्चात् वेद से शिर्क और मूर्ति पूजा निकाल कर बतलावें, और मुकाबला करावें, केवल मौलवी साहब का बड़ी दौलतमन्दी नहीं है वरन् कगाली है। घर बैठे गाली निकालना उत्तर देना नहीं है बल्कि हृदय की संकीर्णता है, जैसा कि कहा है—

दहने खेशरा बदुशनाम मियालाय। कैंज़रे कृतवरा हरकस कि दिही बाज दिहिद॥
(गाली से मुख गन्दा न कर, यह सिक्का रुपया तू जिसे देगा लौटा देगा)

वादी—अगर उन मुकद्दमों को कि जिनकी रास्तबाज़ी पर एक न दो बल्कि किरोड़हा आदमी गवाही देते चले आते हैं, बग़ैर सबूत इसके कि किसी के सामने उन्होंने मसौदा इक़रार बनाया, उस मन्सूबे में किसी दूसरे से मशिवरा लिया, या वह राज़ किसी शख़्स को अपने नौकर या दोस्त या औरतों से बतलाया, या किन्हीं और शख़्सों ने मशवरा करते या राज़ बतलाते पकड़ा, आपही मौत का सामना देख कर अपने मुफ्तरी होने पर इक़रार कर दिया, यों ही झूठी तोहमत लगाने पर तैयार हो जाते हैं।

सिद्धान्ती—चेले और चाटुओं की गवाही यदि विश्वास योग्य है, तो मिरज़ा साहिब सबके पार रहे हैं, यह कहावत है, 'पीरां नमे परन्द मगर मुरीदां मेपरानन्द' (गुरुजन नहीं उड़ते चेला लोग उनकी महिमा उड़ाते हैं) इसी प्रकार एक अनुयायी चेला विश्वास करता है कि "मेरा गुरु सच्चा है और मेरा विश्वास पक्का", इसी तरह मुसलमान भी विश्वासी हैं, और छोटी आयु में यही बातें बच्चों को पढ़ाते हैं। यदि बहुत चेलों वालों का कहना ही सच है, तो संसार में बौद्धों से बढ़ कर किसी का कुनबा बड़ा नहीं है और ईसाइयों, हिन्दुओं से अधिक किसी का ऐश्वर्य और मान नहीं।

आपके पूर्वजों की षड्यन्त्र विद्या, गुप्त मंत्रणा और षड्यन्त्र रचना के प्रमाण तो बहुत हैं किंतु दुर्जनतोष न्यायसे कुछ नीचे लिखे जाते हैं,

(क) एक धनवती स्त्री खदीजा की नौकरी मुहम्मद साहब के वास्ते नबुव्वत प्राप्ति का पहिला साधन है। ज्यों ही दूर २ के देशों में यात्रा के लिये जाना हुआ, नई २ हवा लगी, नई २ बातें सुनीं, मन में गर्म सर्द समय देख कर और ही रंग जमाया और पुरानी दुनिया में चैन न आया (देखो कुरान तरजुमा अब्दुल कादिर देहलवी पृ० ६२३)

(ख) जब खदीजा जैसी पढ़ी लिखी स्त्रीने मुहम्मद साहिब को जवान और कमाऊ नौकर पाया, विधवा थी, विवाह का ध्यान आया, और उससे विवाह रचाया और सब माल उसके हवाले किया (देखो कुरान उपरोक्त पृष्ठ और अंग्रेजी में लाइफ आफ़ मुहम्मद छापा १८२३ कलकत्ता पृ० ११ से १३ तक) तब दोनोंके रहस्य भेद और सहानुभूतिसे चित्त मिल गया, दिन रात के संग से पिछले नबियों के चरित्र कंठाग्र किये, कुछ अधिक अनुभवों ने भिन्न मतावलम्बियों से लाभ पहुंचाये, पैगम्बरी की हवा सिर में समाई और (१) जरतुश्त के मेराज ने ऊपर के लोक की सैर दिखाई परिन्द वाला वही पुराना गुरू जिबरईल आखड़ा हुआ और आस्मानों के मनोमोदक खिलाये।

(ग) अली नामी पहिलवान को (जो हज़रत का चचेरा भाई था) अधिक भेदिया बनाने के लिये अपनी बेटी फ़ातिमासे निकाह करवा कर जवाई के सम्बन्ध में जकड़ा, दो और लड़कियां उम्मकलसूम एवं ज़ुकिया को उसमान नामक मधुर ललित भाषीको सौंपकर तीसरा भेदिया बनाया, तथा उसे ही जुलनूरैन की पदवी देकर और भी अच्छी तरह जवाई जाल में फंसाया। इसी मनुष्य ने प्रेमपाश में बध कर आजीवन इसलाम को भली प्रकार चलाया। इसी प्रकार उमर और अबूबकर से यारी लगाई और किसी को किसी पेंच से अपनी ओर मिलाया, यहां तक कि

"पांच पंच मिल कीजे काज। हारे जीते आये न लाज"

(घ) मक्के से बाहिर एक "हरा" नामक खोह थी। उसको मंत्रणाघर बना कर रात के समय पांचों पञ्च पहुंचते और विचार करते। यह सब हाल (मुआरिज उलनबुव्वत तथा मदारिज उल फतवत छापा नवलकिशोर सन् १८७५ के पृष्ट ८८ से ८७ तक, रुकन दो में और पृष्ठ ८८ से १०० तक और इसी प्रकार रुकन चौथे के पृष्ठ ३५ से ४१ तक और पृष्ठ ८३ में से भली प्रकार प्रकट है, और तवारीख़ हबीबुल्ला पृ० ६३ और यही वर्णन फ़िहनजानी ने सहीबुखारी नामक व्याख्या में लिखा है। ऐसेही मदारिजुल नबुव्वत भागदो छापा नवलकिशोर लखनऊ पृ० २७२ में भी वर्णन है)

उन दिनों जिस मनुष्य ने भी कोई शङ्का उठाई, हज़रत अली ने तुरन्त ही तलवार से उसका सिर उतार दिया, वह विचारे मृत शहीद कहां से आकर

---

(1) (See life of muhammad)

षड्यन्त्र विद्या का प्रमाण दें। उस समय कई मनुष्य इस षड्यन्त्र विद्या का प्रमाण देने को तैय्यार हुए पर वहां कौन सुनता था। एक से एक बढ़ कर पक्षपाती, सत बचनिया अनुयायी गुरुसंलेपन के षड्यन्त्र पत्र पर सच्चे हृदय से हस्ताक्षर करचुके थे। षड्यन्त्रों का दोष लगाने वालों के कई नेताओं और गवाहों की पकड़ धकड़ के लिये पुरस्कार नियत होगये, कितनों से धोखाबाजी की गई और कितनों से फिर मेल हुआ। मिरज़ा साहिब उन दिनों पैगम्बरी के लड़कपन का दौर दौरा था और चारों ओर इस दिलासे की भरमार और बौछाड़ थी। सारांश यह कि उसी षडयन्त्र का यह विषय है जिस के अक्षर २ तथा शब्द २ से सत्य तथा सत्य प्रेम की हत्या हुई।

वादी—अविद्या वह लोग हैं, जिन्हों ने अपनी ही कामिल दगाबाजी को कवी हुज्जत पेश करके अपने दुशमनों को भी इलज़ाम दिया।

सिद्धान्ती—"यदि घोड़ा नहीं मिलता तो गधा ही सही।"

नवी यदि न सही तो औलिया ही सही, रसूल न सही तो इलहामी ही सही, कुछ ही हमें तो सत्य की जांच करनी है। आप अपनी ही सचाई को सिद्ध कीजिये और किसी प्रकार कंजूसी न कीजिये। नवी तो आप नहीं हैं, किन्तु क़ादियानी पैगम्बर अवश्य हैं। सब से पहिले आप अपने ही विषय में प्रमाण दिलवाइये, चाल चलन और सद्—व्यवहार प्रमाणित कराइये। यदि नहीं है, तो आप नमूने के तौर पर सब नावियों के लिये आदर्श हैं और इसी लिये अपने बुरे कर्मों में निपुण। हम आपको ही अन्तिम नबी समझेंगे और नवीपन की छाप आप ही के माथे पर लगी मानेंगे।

बिया मिरज़ा रिहाकुन शर्मसारी, जिसको दुर्र पेश आरांचि दारी।

(आ मिरज़ा शर्म छोड़ कर जो खरा खोटा तेरे पास है सामने ला)

बुराहीन उल अहमदिया भाग ४ भूमिका प्रदर्शित आक्षेप

मिरज़ा साहिब इस भाग के आरम्भ में मुसलमानों की हीनावस्था और अंग्रेजी सरकार पर कुछ लिखते हुए कहते हैं कि:—

फ़ि ल हक़ीक़त यह सच है, कि जब कि उनके हमसाया (आर्यो) की नज़र में एक अदना हैवान गाय का इज़्ज़त और तौक़ीर है, उनके दिलों में अपनी क़ौम और अपने भाइयों और अपने दीन की बुज़ुर्गवार को भी इस क़दर इज़्ज़त नहीं

सिद्धान्ती—इस स्थान पर हमें शेख़सादी का कथन याद आया, जो आपने मानो इसी अवसर के लिये कहा है:—

गावांनो खरांने बार बरदार विह अज आदमियांने मरदुम आज़ार।

अर्थात् बोझ उठाने वाली गाय और गधा उन मनुष्यों की अपेक्षा अच्छे हैं, जो दूसरों को सताते हैं, धार्मिक कारनामों से मिरज़ा साहिब का अभिप्राय केवल बुराहीनउल अहमदिया की सहायता है और कुछ

नहीं। इसके भीतरी भेद का उस विज्ञापन से ज्ञान होगा, जो मिरज़ा इमाम उद्दीन साहिब ने प्रकाशित किया था और इस पुस्तक के अन्त में उद्धृत कर दिया गया है।

वादी–मुहक्किक पंडितों को खूब मालूम है कि किसी वेद में गायका हराम होना नहीं पाया जाता, बल्कि ऋग्वेद के पहिले हिस्से से भी साबित होता है, कि वेद के ज़माने में गायका गोश्त आम तौर पर बाज़ारों में बिकता था, और आर्य लोग ब ख़ुशी ख़ातिर उसको खाते थे।

सिद्धांती—मिरज़ा साहिब सदा सचाई से हटते और झूठे दोष दूसरे पक्ष पर धरते हैं। भीतरी पक्षपात उनकी इस लीपा पोती से प्रगट है। निरर्थक हठ और कटु भाषण उनका मूल उद्देश्य है। मालूम नहीं कि परमेश्वर को सम्मुख जान कर भी झूठ बोलने से क्यों नहीं शरमाते, और किस वास्ते बकवास करके अपनी हंसी कराते हैं! एक यति का कथन है कि 'झूठे को स्मरण नहीं रहता', वह मिरज़ा साहिब के विषय में ठीक है, और हमारे लिये उचित। वह स्वयं आगे चल कर उसी भाग के पृष्ठ २३८ पर लिखते हैं, "क्या रहम और अफ़्व को ताक़ीद बुत प्रस्तों की पुस्तकों में कुछ कम है, बल्कि सच पूछो तो आर्य क़ौम के बुत प्रस्तों ने रहम की ताक़ीद को इस कमाल तक पहुंचाया है कि बस हद ही करदी, इनके एक शास्त्र का श्लोक इस वक्त हमको याद आया है जिस पर तक़रीबन सारे हिन्दुओं का अमल है, और वह यह है "अहिंसा परमो धर्म्मः" अर्थात् इससे बड़ा धर्म्म और कोई नहीं कि किसी जानदार को तकलीफ न दी जावे, इसी श्लोक की रू से हिन्दु लोग किसी जानदार को आज़ार देना पसन्द नहीं करते।"

सत्य क्योंकि छुपाने से नहीं छुपता किसी न किसी रूप में प्रकट होजाया करता है, ठीक ऐसे ही पक्षपात पूर्ण एवं लेखनकला के धनी की लेखनी से भी सच बात निकल ही गई जिससे कि उसके पहिले बकवास का स्वयं ही निराकरण हो गया, यहां तक कि उसके पक्षपाती और झूठे होने का प्रमाण भी पुष्ट होगया। सत्य है इस अनाचारी (बैतुल हरामी) को भक्ष्याभक्ष्य की पहिचान नहीं उसके हत्यारे हृदय में हत्या के बिना भक्ष्याभक्ष्य और कुछ है ही नहीं।

गर तुझे शर्म कुछ है ऐ मिरज़ा। शर्मसारी से डूब कर मरजा॥
झूठ की दी ख़ुदा ने तुझको सज़ा। ख़ुद तेरे क़ौल से किया रुसवा॥
ख़ुद लिखी अपने झूठ की तरदीद। इससे रुसवाई और क्या है मज़ीद॥
अपने फ़रज़ी ख़ुदा से सीख लिया। आप मन्सूख़ अपना क़ौल किया॥
यह जो बेहूदा बक रहा है तू। सगे दीवाना बन गया है तू॥
जब कि बदला है जामए इन्सान। फिर हया शर्म्मो अक़्लो होश कहां॥
ज़िस तनासुख़ से सख़्त मुनकिर था। देख अब मुबतला ख़ुद उसमें हुआ॥

यह सज़ा मिस्ले बिलअम * बाऊर। तुझको दी है खुदा ने ए मक़हूर॥

अब हम सूअर और शराब का भेद बतलाते हैं और उनके हलाल होने की शहादत दिखलाते हैं। सूअर पुराने नबियों के दीन में हलाल है और ईसा के अनुयाइयों का सच्चे हृदय से इक़बाल। वे इंजील के अनुसार खाते हैं और इसे अपने लिये हलाल तथा पवित्र ठहराते हैं, (देखो इंजील पमाल बाब ११ आयत ६ से ६ तक, इंजील तीतस बाब १ आयत १५, इंजील रूमियों बाब १४ आयत २ की व्याख्या, छापा १८८१) ऊंट जो सूअर के बराबर माना जाता है (देखो तौरेत अहबार बाब ११ आयत ४, ७) को सारे मोमिन खाते हैं। शराब का पीना पुराने सभी नबियों के मत में असंदिग्ध है, और कुरान के अनुसार भी मनुष्य के लिये लाभदायक। हज़रत नूह, लूत, सुलेमान और ईसा आदि नबी शराब पीते थे, और इसी के सहारे जीते थे (देखो तौरैत पैदायश बाब ६ आयत २१, बाब १६ आयत ३० से ३८ तक, इंजील योहन बाब २ आयत १ से ११ तक, लूका बाब २२ आयत २० और कुरान सूरत बक़र व सूरत नहल) आपके पैग़म्बर साहिब भी स्वर्ग में उसके गुरु घंटाल हैं, और उन्हीं की कृपा से सभी मोमिन मस्त और उन्मत्त (देखो कुरान में शराबनतहूरा का वर्णन) अब असली प्रकृत उत्तर लिखता हूं। पता नहीं लगता कि वह आलोचक पंडित कौन हैं, जिन को वेद में गाय मारने की मनाही नहीं दिखाई पड़ती, आवें और इस मन्त्र को आंखें खोल कर और यदि कम दिखाई देता हो तो ऐनक लगाकर पढ़ें,

अस्मिनगोपतौ स्यातवह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि॥ यजु० अ० १ मं, १॥

परमात्मा आज्ञा देता है, कि "ऐ मनुष्यो! पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये सर्वोपकार और धन के सेवी बन, गाय आदि लाभदायक प्राणियों की रक्षा को मुख्य समझो, जिस से कि तुम्हारी शक्ति और बुद्धि बढ़ती रहे।

यजुर्वेद के आरम्भ में ही जब यह स्पष्ट उपदेश है तो फिर वादी का आक्षेप नीचे से ऊपर तक झूठ है। इस के अतिरिक्त ऋग्वेद के पहिले अध्याय में इस प्रकार की कोई आज्ञा नहीं है और नहीं गाय के विषय में कोई मन्त्र है, हां ऋग्वेद में यह मंत्र अवश्य है।

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपयाउत। गवे च भद्रं धेनवे वीरायच श्रवस्यतेऽने हसोवऊतयः सुऊतयोवऊतयः॥ ऋ० मं० ८ सू० ४७ मं १२॥

---

* एक बार सात अभिन्न मित्र और उनका आठवां साथी कुत्ता, एक कट्टर राजा के भय से गुफा में छिप रहे थे। कुत्ते ने उन मनुष्यों हा का अनुकरण किया, जिससे क़यामत के दिन अल्लाह ने इनको स्वर्ग में बिलअमबाऊर के रूप से जो मूसा के समय में एक पूर्ण पुरुष था, किन्तु वासनाओं का दास होने से विधर्मी हो गया था, प्रविष्ट किया। और बिलअम को कुत्ते का रूप देकर नरक में डाला। (गुलिस्तां सादी छापा १८७६ पृष्ठ ५७)

(अर्थ) "हे सर्व स्वामिन्! आप कल्याण देने वाले हैं, दुष्ट और हत्यारे आपके न्याय से सदैव दण्ड पाते हैं, पवित्रात्मा और दयालु लोगही आनन्द और शक्ति के अधिकारी हैं, हमें अपनी कृपा से शम, दम युक्त इन्द्रियों, गौओं शुभ सन्तानों और उत्तम धनों से युक्त करके सदैव दया आदि उच्च गुणों में प्रवृत्त कीजिये, क्योंकि आप के बिना और कोई रक्षक नहीं"।

मिर्ज़ा साहिब! इसके पढ़नेके बाद अपने शैतानी वहमों को दूर कीजिये, और इस प्रकार की हत्या वर्धक एवं अत्याचार युक्त लेखनकला से विमुख होकर असन्मार्ग से बचिये-नहीं तो मूर्खता का परिणाम दुःख है क्यों कि मूर्ख के लिये सुख का अभाव है।

वादी।—और हाल में एक बड़े मुहक्किक यानी **आनरेबल मौंटस्टुआर्ट इन्फेन्सटन साबिक गवर्नर बम्बई** ने आर्य्य कौम में हिन्दुओं की मुस्तनिद पुस्तकों को रूसे एक किताब बनाई है, जिसका नाम तारीख हिन्दुस्तान है, इस के सुफ़हे ७६ में मनु के मजमूआ की निस्बत साहिब मौसूफ़ कहते हैं, कि उस में बड़े त्योहारों पे बैलका गोश्त खाने को ब्राह्मणों को ताकीद की गई है, यानी अगर न खावे तो गुनहगार हो।

सिद्धान्ती।—जो व्यक्ति संस्कृत विद्या से अनभिज्ञ हो, वह यदि संस्कृत की पुस्तकों का इतिहास बनाये, तो कोई न्याय प्रिय नहीं मान सकता कि वह सच्ची होगी। इसी प्रकार वादी ने भी कोई प्रमाण मनुस्मृति का नहीं लिखा। गवर्नर साहिब बम्बई ने यदि लिखा है तो संस्कृत भाषा की अनभिज्ञता के कारण, उनका कथन हमारे लिये वेद वाक्य नहीं है। हां, यहां पर यह लिखे देता हूं, कि मनुस्मृति में इस विषय को पूर्ण मनाही है, जैसा कि लिखा है:—

गोवधोऽयाज्य संयाजपारदार्यात्म विक्रयाः।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च॥ मनु० ११ अ०श्लो०६०
उपपातक संयुक्तो गोघ्नो मास यवान् पिबेत्।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्म्मणा तेन संवृतः॥ मनु०अ० ११ श्लो०१०८
अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति।
सगोहत्या कृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति॥ मनु०अ० ११ श्लो०११६

अर्थ—गाय का मारना, यज्ञ विनायक मनुष्य से यज्ञ करवाना, पर स्त्री गमन, अपने को बेचना, गुरु माता, पिता, पुत्र और अग्निहोत्र का छोड़ना, वेद का स्वाध्याय न करना, यह सब उप पातक हैं।

अर्थ—गाय मारने वाला पापी, महीने भर जौ का पानी पिये, दाढ़ी मूंछ और सिर के बाल मुंडवा कर और उसी गाय का चरम ओढ़कर गोशाला में तीन महीने सेवा करे।

अर्थ—जो गायका मारने वाला इस विधि से गाय की सेवा और अनुसरण करता है, वह तीन मास में गो हत्या के पाप से छूट जाता है।

जब मनुस्मृति में वादी के झूठे दावे का कहीं चिन्हमात्र भी नहीं। और न गवाही का कोई प्रमाण किसी प्रकार का वह लिखता हैं, तब पाठक वृन्द! हमें कहना पड़ता है, कि—

न वक इतना लईने कोता अन्देश। कि होगा चाहकनरा चाह दरपेश ॥

अर्थ—ऐ ना समझ दुष्ट! इतना बकवास मत कर, क्योंकि कुआं खोदने वाले के मार्ग में कुआं ही पड़ता है।

इन सारे निरर्थक आक्षेपों से आप जान सकते हैं, कि इस इलहामी के हृदय में अविद्या और झूंठ ने कितना घर कर लिया है, जिससे परहेज करना इसे जीवन के मानो मुख्य अंगों का त्याग मालूम हो रहा हैं, पर सिवा इसके वादी सुनी सुनाई बातों और मुहम्मदी पक्षपात को यदि छोड़ कर विचार करे, तो भी उसे ज्ञात हो जावेगा, कि गो हत्या क्या स्वास्थ्य की दृष्टि से, क्या पाप की दृष्टि से, क्या देश हित की दृष्टि से, और क्या गो जाति के नाश की दृष्टि से, बुरी ही बुरी है। (देखो किताब गो रक्षा प० जगन्नारायण शर्म्मा बनारस) जिसमें वेद, कुरान, इंजील, तौरेत, डाक्टरा, हकीमों और संस्कृत तथा फारसी की आचार पुस्तकों के प्रमाणों से गोहत्या की हानियां और गोरक्षा के लाभ बतलाये हैं, इसी प्रकार गो करुणानिधि (महामान्य श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज) जिसमें उन्होंने वेद के मन्त्रों और प्रबल युक्तियों द्वारा गोहत्या की हानियां स्पष्ट बतलाई हैं।

वादी—और ऐसेही एक और किताब इन्ही दिनों में एक पंडित साहिब ने बमुकाम कलकत्ता छपवाई है, जिसमें लिखा है, कि वेद के ज़माने में गाय का हिन्दुओं के लिये खाना दीनी फ़राइज़ में से था।

सिद्धान्ती—क्योंकि वादी ने पुस्तक और उसके लेखक का नाम या पता नहीं लिखा है, और न वह स्थान लिखा है, जहां से मिलती है, और न कोई निशान, इसलिये "ईंट का जवाब पत्थर" तो उचित नहीं है। हम मिरजा साहिब को बधाई देते हैं कि उनके सय्यद साहिब ही कहते हैं, कि अरब के जंगल का काला सूअर हराम है किन्तु बिलायती सफेद सूअर हलाल है। खजूर से खेंची हुई और अरब के बुद्दूओं के हाथ की बनी हुई शराब ख़राब है, किन्तु रम और बरांडी तो हलाल ही नहीं वरंच बकर भी है तथा उसके पीने को शरा(मुसलमानी धर्म्म शास्त्र)में मनाही भी नहीं। आपका गुप्त भाषा भाषी ख्वाजा साहिब कहता है।

बिबीं हलाले मुहर्रमे............कयलतुल अज़रा।

अर्थात् मुहर्रम का हलाल देख, मदिरा के प्याले की इच्छा कर क्योंकि प्रसन्नता तथा आह्लाद का महीना है और शांति तथा प्रेम का साल। मदिरा का पान कर कि विता के दिन नहीं रहेंगे, वैसा नहीं रहा तो ऐसा भी नहीं रहेगा। मैं यह नहीं कहता कि तू वर्ष भर शराब पीता रह, नहीं तीन महीने

शराब पी और नौ महीने भक्त बनजा। ऐ साकी तू हमेशा की शराब दे, क्योंकि जन्नत में रुकनाबाद नदी के तट जैसा आनन्द स्थान और पुष्प वाटिका कहां। वो कड़वा शराब जिसे सूफ़ी ने सब पापों का मूल बताया, यही मेरा अन्तिम उद्देश्य है और अजरा (१) मेरा किबला है।

इसके अतिरिक्त आपके ज़हीरउद्दीन बाबर बादशाह गाज़ी कहते हैं—

नौरोज़ो नौबहारो मैओदिलरुबा खुशअस्त।
बाबर बऐश कोश कि आलिम दोबारा नेस्त॥

अर्थ—नये २ दिन, नई २ बहार शराब और मनमोहनी (माशूक) क्या प्यारी लगती है ऐ बाबर! आनन्द मनाले फिर संसार में नहीं आना।

इसी प्रकार(कसिसउल हिन्द छापा लाहौर सन्१८८६ पृ०८६)जलालउद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह गाज़ीके हालमें स्पष्टतया लिखा है किबादशाह ने आज्ञा दीकि "शेर और सूअर बहादुर जानवर हैं, इनका मांस भी बहादुरी देता है, शराब इतनी पीवो कि, बेहोश न होजाओ", इत्यादि।

इनके अतिरिक्त मुसलमानों की धार्मिक पुस्तकों से भी हमारे पास बहुत से प्रमाण मौजूद हैं, पर अधिक प्रमाण हमें उस समय देने की आवश्यकता होगी जब कि वादी भी किसी धार्मिक पुस्तक का असली लेख उद्धृत करेगा, वादी कह सकता है कि सूअर और शराब के सबूत हमारी और धार्मिक पुस्तकों से नहीं दिये, हमारी ओर से यह स्पष्ट उत्तर है, कि आपने कौनसी धर्म पुस्तक से सबूत दिया। अलफिंस्टन और एक गुमनाम पंडित के मुकाबले पर एक गुमनाम सैय्यद और ज़हीरउद्दीन और अकबर बादशाह और हाफ़िज और इंजील व तौरैत गवाह काफी हैं।

पाठक वृन्द! वेद भगवान् और पवित्र शास्त्र के अनुसार मांस भक्षण साधारणतया और गो भक्षण विशेषतया मना है, जिसको सन्देह हो, हम विचार करने को तैयार हैं।

चमत्कार, करामात, इलहाम, और स्वभाव परिवर्तन

(बुराहीन उल अहमदिया भाग ३ पृ० २१५ से २७८ तक और भाग ४ पृष्ठ ४६० से ५२४ तक)

चमत्कार, करामात, इलहाम, और स्वभाव परिवर्तन आदि ऐसे शब्द हैं, कि जिनसे सारे पाठक प्रत्येक प्रकार से परिचित होंगे, और अनेक इनकी वास्तविकता को जानने के अभिलाषी, कि यह बात कहां तक सत्य है। विदित हो, कि इस पर भी जब कि सारे शिक्षित इनकी असलियत से इन्कार करते हैं, और इन बातों को खुल्लम खुल्ला ठग विद्या जानते हैं वरन् हृदय से मानते हैं, कि यह सब चालें और धोखे हैं। लालच इनकी जड़ है, और स्वार्थ इसका पानी, पर

(१) अज़रा माशूक का नाम

दूसरा पक्ष जो अशिक्षित होने और परीक्षण न होने के कारण पड़ताल व परोक्षा के पद से गिरा हुआ है, वह विद्वानों के विरुद्ध प्रत्येक कल्पित व मन घडन्त बात को (चाहे वह कितनी ही झूठी क्यों न हो) धर्म का प्रकाश जानता है और इंकार करने को पाप और अधर्म मानता है। इस गुण पर भी वह सब से बड़ा अंधविश्वासी और संसार भर में फैला हुआ है। भू मंडल पर ऐसा कोई देश नहीं, जहां इनका बसेरा एवं डेरा न हो, कोई ऐसा मन्दिर, छतरी, धर्मशाला अथवा मस्जिद नहीं जहां इनका बसेरा न हो। विद्या के भंडार यही लोग हैं, और कोई पीर नहीं उड़ते, पर ऐसे हो मुरीद उड़ाया करते हैं। फ़ीसदी सौ इन में मूर्ख होते हैं, और चाहे कितनो ही अप्रामाणिक बात क्यों न हो, यह उसको प्रामाणिक जानते हैं। मेरे कथन की पुष्टि श्रीमान् धौंकल महात्माजी करेंगे अथवा निगाहे वाले पोर खाना से हम गवाही लादेंगे। इसके साथ ही सारे संसार के जाल फैलाने वालों का नियम है कि सदा ताक में लगे रहते हैं और गुप्त स्थानों को ध्यान में रखते हैं, जहां अवसर मिला, शिकार खेलने, दाना फेंकने और जाल बिछाने में सुस्ती नहीं करते। मूर्खों के बहकाने व फुसलाने के लिये कोई भी साधन भूल नहीं जाते, भांति २ के स्वांग और नाटक दिखला कर मूर्खों को लूटना, दम झांसे देना इन के जीवन का बहुत बड़ा उद्देश्य होता है। आरम्भ में इन लोगों के बड़े लम्बे चौड़े दावे होते हैं, और बड़ी सज धज से शर्तें लगाते हैं। कई शिष्य और दलाल पेशा भी उनके सहायक होकर अनजानों और भोले मनुष्यों को लुटवाते, और पीर जी से अपना भाग बांट कर उनको भोग विलास करवाते, और स्वयं भी आनन्द मनाते हैं, "माल पराया, अपनी मौज" के अनुसार कसाईयों को तरह बकरा को जान पर तनिक भी दया नहीं करते। हम इस स्थान पर कुछ चमत्कारी पुरुषों के चरित्र लिखने आवश्यक समझते हैं, ताकि इन ठग विद्याओं का पूरा खंडन किया जावे।

मुन्शी कन्हैयालाल जी अलखधारी प्रणीत ज्ञान प्रकाश पृष्ठ १९६ से उद्धृत।

भारतके मनुष्य अद्भुतके पुजारी हैं, तू कोई चमत्कार दिखा, तब तेरी बड़ाई उनके हृदय पर प्रभाव डलेगी, और तेरे कथन पर विश्वास होजावेगा। जबकुछ मूर्ख लोग तेरी विद्या और चमत्कार पर गवाही देंगे, तब सब लोग तुझे पीर जी और सिद्ध जी कहने लगेंगे। शराब को दूध बनाना, पारे को चांदी बनाना, तांबे को सोना बनाना और भूत एवं चुड़ैल को जन्तर-मन्तर-तन्तर अथवा गंडे से उतारना तू खूब जानता है, यह साधारण लोगों को बतादे। हृदय की इच्छा बताने की तरकीब और अंधे को आंखें और बहरे को कान देने की विद्या मेरे अनुभव में लिखदे। लेखक ने उत्तर दिया, कि मैं इस प्रकार की ऊट पटांग का मानने वाला नहीं हूं, और चाहता हूं, कि साधारण लोग ऐसे दम दिलासों में न आने पावें। जो बातें धोखा देने वालों को मैं जानता हूं, उन्हें यदि लिखूं तो धोखे बाजी का प्रचारक ही बन जाऊं, किन्तु जो आप कहेंगे वही मैं लिख दूंगा"

(१) दैत्यने कहा, कि एक नगर में एक बहुत प्रसिद्ध महापुरुष था, और प्रत्येक जातीय मनुष्य की दृष्टि में सर्वगुण सम्पन्न था। प्रोल विद्या तो इसे पहिले ही आती थी, किन्तु यह इस विद्या से दस हज़ार वर्ष पहिले ही अभाव रूप गुप्त घरमें मोजूद था। जो इच्छुक किसी वस्तुका उसके सन्मुख उपस्थित होता, यह आकृति को देख उसके हृदय को बात बता देता था। अतः वह तन मन और धन उनके अर्पण करता था, और जो कुछ उस पर बीतता था, इन महापुरुष की बाणीका प्रभाव ही मानता था, यह योग्यता इन पूर्ण योग्य महात्मा को इन गुप्त हाथों और चालोंसे साधनों से प्राप्त हुई थी, उन्होंने एक मकान बना रखा था, उसमें आठ दरवाज़े आठ करामातों के लिये लगा रखे थे। पहिले दरवाज़े से बेटा मिलता था, दूसरे दरवाजे से ब्याह होता था, तीसरे दरवाजे से नौकरी मिलती थी, चौथे दरवाज़े से धन मिलता था, पांचवें दरवाजे से रोग जाता था छटे दरवाजे से कैद और कष्ट से छुटकारा होता था, सातवें दरवाजे से अभियोग वा अपील आदि में विजय होती थी, और आठवें दरवाजे से खोई वस्तु का पता मिलता था। घर के दरवाजे पर एक चेला उपस्थित रहता था। जब कोई किसी वस्तु का इच्छुक आता था तब चेला चतुरता से उसके मनकी बात मालूम करके कह देता था कि बाबा जी से अपना भेद न कहना यह स्वयं ही तुम्हारे मन की बात बतादेंगे, यदि वे मनकी बात बतादें तो समझ लेना कि तेरा काम सिद्ध होगया। सारांश यह कि वह पागल की भांति चेले के साथ उस मकान में जाता, चेला उसे उस दरवाजे से ले जाता, जो जिस कामना के लिये नियत कर लिया था। बाबा जी तुरन्त पुकारने लगते, कि तू बेटा चाहता है या खोए हुए का समाचार चाहता है? वह मूर्ख इनको प्रोल बेत्ता जान कर जो कुछ अपने पास नकद होता नज़र करता था। होने को जो उसके भाग्य में होता, वही होता। अन्ततः ऐसे सहस्रों रुपये इन महात्माओं ने कमाये, और अन्त में लूट खसोट कर चलते बने।

(२) एक चतुर मनुष्य चार साथियों को लेकर दूसरे देश में गया। वह स्वयं तो एक मसजिद में बेपरवाह पीर बन के बैठ गया और चेलों में से एक ने अंधे का स्वांग रचा और शहर के एक ओर रहने लगा, दूसरे चेले ने बहरे का स्वांग बनाया, और दूसरी ओर रहने लगो, तीसरा लंगड़ा बना और चौथा उन सबको बेगाना बन कर खाने पीने की सामग्री पहुंचाता रहा। एक वर्ष तक इसी नियम से कार्य्य किया और बनावट को सच कर दिखाया, अर्थात् शहर के प्रत्येक रईस ने पीर को बेपरवाह, लंगड़े को लंगड़ा, अन्धे को अन्धा और बहिरे को बहिरा विश्वास कर लिया। एक दिन पीर साहिब किसी गाज़ी मर्द के दर्शन के लिये जाते थे, लंगडे ने हज़रत का पांव पकड़ लिया और कहा कि मुझे रात को स्वप्न हुआ है कि तुम मेरे लंगड़े पन को दूर कर दोगे, इसलिये मुझ पर दया करो और आशीर्वाद दो कि मैं भला चंगा होजाऊं। पीर साहिब बहुत नाराज़ हुए और कठोर भाषण करने लगे और साथ ही अपनी असमर्थता बताने लगे। लंगड़े ने एक न माना और पैर पकड़े रक्खा।

अन्त को पीर जी ने रुष्ट होकर एक लात मारी और कहा, "परमेश्वर करे, तेरी दूसरी टांग भी टूट जाय"। लात लगते ही लंगड़ा साहिब बन्दर की भांति कूदने लगे। जब बाज़ार वालों ने पीर जी की यह चमत्कार देखी तो प्रत्येक मनुष्य दीपक पर पतंगे की भांति मोहित हो गया। उनके मसजिद तक पहुंचते २ हज़ारों रुपये की भेंट चढ़ गई और पीर जी ने अपनी उसी बेपरवाही से वह सब भेंट लंगड़े को दिलादी। थोड़े ही दिनों के भीतर सारे शहर में हुल्लड़ मच गया, कि आकाश से एक देवता उतर आया है। यह समाचार सुन कर अन्धा और बहरा भी आया और अपनी कामना पूर्ण की। बस अब क्या था, पीर साहिब की धाक बंध गई, चारों यार मिल गये, हज़ारों चेले भी बन गये और लाखों रुपया भी कमा लिया, जब जी खोल कर दौलत मिल गयी तब एक रात बिना सूचना दिये चल दिये।

(३) इसी प्रकार एक फ़क़ीर जो कुछ किसी से नक़द पाता था, उसको गला कर चांदी का कोई टुकड़ा बना भिक्षुओं को देता था। थोड़े दिनों में प्रसिद्ध हो गया, कि यह रसायनी है, प्रत्येक उसके लिये प्रतिष्ठा करने लगा।

ऐ कन्हैयालाल! जब तक ऐसे करामाती मनुष्य पैदा न हों तब तक तुम सर्व गुण निधान कैसे बन सकते हो। मैंने उत्तर दिया, कि जब तक कोई मनुष्य ऐसी कहानियों को जान न ले तब तक वह इन धूर्तों के धोखे से बच नहीं सकता।

(४) रावलपिंडी के ज़िले में एक हाफ़िज़ साहिब करामाती प्रसिद्ध हुए और आस पास से दो चार चेले भी इकट्ठे कर लिये। कुरान का पाठ कंठाग्र और अंगोछे से मुंह ढांपे रहते थे। प्रतिज्ञा यह थी, जो जितने रुपये खुदा के नाम पर देवे, कुछ निश्चित समय के पश्चात् उससे दोगुने पावे। सैकड़ों पढ़े लिखे हिन्दू और मुसलमान, डिप्टी और तहसीलदार आदि तक उस पर विश्वास करने लगे। बहुत से लोग अपनी कामनाओं में सफल भी हुए, और दो गुने चार गुने तकभी प्राप्त किये। चिरकाल तक उनका यह चक्कर चलता रहा। प्रायः लोग खज़ांची सरिश्तेदार तक नोकरी भी पागये, हज़ारों का ख़ज़ाना जमा रहने लगा। अन्त को सरकार ने तहक़ीक़ात प्रारम्भ की तो सारा भेद खुल गया और सिद्ध हो गया कि ठगों का और ठगियों का अड्डा मात्र है। एक लाख के क़रीब या कुछ अधिक लोगों के रुपये उसके जिम्मे निकले। अन्त को कुछ सालों की क़ैद हुई और कोई पाठ अथवा प्रार्थना सहायता न कर सकी। उसकी मिसल रावलपिंडी में मौजूद है, और जनता पर प्रसिद्ध एवं विख्यात, यहां तक कि अब भी बहुत से मूर्ख लोग उसके मुरीद और इस करामाती तलवार के शहीद हैं।

(५) यह घटना मेरे सुयोग्य भ्राता ला० हीरानन्द साहिब डाक्टर इस्का हस्पताल की आंखों देखी और पिछली करामातों से बढ़ चढ़कर है:—

एक करामाती सैय्यद दृढ़ता के साथ उनके पास आया और बात चीत करते हुए कहने लगा कि इसलामी धर्म की बरकतें और मुहम्मदी धर्म की ज्योतियें यहां तक बढ़ी चढ़ी हैं कि तेरह सौ वर्ष बीतजाने पर भी उनके पवित्र नामका प्रभाव रामबाण है। जो लोग सच्चे हृदय से नमाज़ और कुरान के पाठ में लगे रहते हैं, उन पुरुषों पर विशेष रूप से इस करामात का प्रकाश प्रवेश होता है। डाक्टर साहिब ने कहा, कि यदि कुछ सचाई या करामात कहीं मौजूद हो तो बतलाओ, नहीं तो गप्पें मत हांको। सैय्यद साहिब ने कहा कि मैं जो एक परमेश्वर का तुच्छ भक्त हूं, मुझ पर पैग़म्बर साहिब और पवित्र पीर की कृपा से बहुत से चमत्कारों का प्रकाश है। इन सब में से एक अब भी बतला सका हूं, और वह यह है कि जो बात किसी भी भाषा में आप भीतर छुप कर इस पवित्र क़लम से लिख देवें, और वह पत्र भी आप अपने पास रखें, मैं ज्यों की त्यों वही बात बतला दूंगा, किन्तु कुछ समय मुझे अकेला बैठना पड़ेगा। सारे दर्शक विस्मित हुए कि यह तो प्रत्यक्ष चमत्कार है। अन्त में सबने देखने की इच्छा प्रगट की और डाक्टर साहिब ने सैय्यद साहिब की पुस्तक पर एक कागज़ रख कर उनकी कलम से भीतर जाकर कुछ अक्षर लिखे और कागज़ अपने पास रख लिया। सैय्यद साहिब ने झट किनारे बैठ कर, थोड़ी देर सोच कर और कुछ गुनगुनाते हुए कहा कि आपने कागज़ पर 'कर्मचन्द' लिखा था। जब असली कागज खोला गया, तो वही नाम लिखा मिला। सब अचम्भित हुए कि मौलवी साहिबने चमत्कार दिखलाया, किन्तु बुद्धिमानोंके आगे धोखा चलना कठिन है, ताड़ने वाले तोड़ गये कि यह कोई धोखा है। अन्त में सोचते २ मालूम कर लिया कि उस पुस्तक के भीतर एक ओर काला कागज़ रक्खा है। ज्योंही कोई पुस्तक के बाहिर की ओर से किसी कागज़ पर किसी भाषा में कोई अक्षर लिखता है, तो उस काले कागज़ पर पड़ता है, उसके ठीक सामने एक सफ़ेद कागज़ है और उसके दबाव से उस काले कागज़ का निशान सफेद कागज़ पर पड़जाता है। तब एक किनारे लेजाकर देखते हैं, तो इस सफ़ेदकागज़ को निकाल देख-कर धोखा देते हैं। जब सैय्यद साहिब को इस चाल से जानकार किया गया कि यह तुम्हारा धोखा है, जिस को तुम चमत्कार बतलाते हो, तब वह स्वयं भी मानगया औरखुशामदसेछुटकारा पाया। यह डाकखाने की रसीद बुकों के कागज़ से प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य समझ सका है। अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

अब **मिरज़ा गुलाम अहमद** के इलहामों का निराकरण करता हूं और उनक पूरी २ पोल खोलकर पाठकों के आगे धरता हूं। कुरान से मुहम्मद साहिब की करामातें दिखलाने से भी इंकार करता हूं जिस से कि इस कादियानी नबीका वास्तविक स्वरूप प्रगट हो।

(प्रथम) एकवर्ष बीता, कि जान मुहम्मद नामक कश्मीरी जो मिरज़ा साहिब की मसजिद का इमाम है, उसका पुत्र जिसकी आयु उस समय अनुमान

५ वर्ष की होगी ज्वर से रोगी हुआ। बढ़ते २ रोग इतना बढ़गया, कि ज्वर के साथ ही दस्त भी आने लगे, लड़के का खाना पीना बन्द होगया और ऐसा निर्बल, अशक्त एवं क्षीण होगया, कि अस्थि पञ्जर ही दिखाई देने लगा। एक दिन लड़का मृत प्रायः की अवस्था में था और उस समय उसकी अवस्था को देख कर मूर्ख भी यही कहता था, कि लड़का थोड़े समय का ही मेहमान है, अतः इस घबराहट की अवस्था में जान मुहम्मद मिरज़ा साहिब की सेवा में गये और मिरज़ा साहिब उस लड़के को देख भी चुके थे। अस्तु, इमाम साहिबने कुल हाल बताया और कहा, आप विचित्र शक्ति के स्वामी हैं, इस लड़के को आशीर्वाद दीजिये।

मिरज़ा साहिब को इस लड़के की ओर पहिले ही ध्यान था, क्यों कि इनकी मसजिद के इमाम का लड़का था। आपने कहा कि ऐ जान मुहम्मद! आप के आने से पहिले ही मुझ को इलहाम हुआ है, कि इस लड़के के लिये क़बर खोदो। मिरज़ा साहिब के मुख से यह शब्द निकलने थे, कि इमाम साहिब के होश उड़ गये, चेतनता क्यों न जाती रहती और हाथके तोते क्यों न उड़ते, जब कि उसका यही एक बेटा था और वह भी बुढ़ापे की लाठी। सारांश यह कि इमाम साहिब उसी निराशा और उदासीनता की दशा में अपने घर को लौटे, तो देखा कि इलहाम का प्रभाव उलटा निकला और जादू ने उलटी करामात दिखाई अर्थात् लड़के के लक्षण अच्छे देखे। मिरज़ासाहिब का इलहाम कहना ही था, कि खुदावन्द करीम की कुदरत का तमाशा देखिये, लड़के को पल २ पर आराम होना आरम्भ हुआ और एक ही सप्ताह में लड़का निरोग होगया। अब मिरज़ा साहिब अपनी मिथ्या बाणी और भूल की व्याख्या कैसे करते हैं और कहते हैं कि हमारा इलहाम तो झूठा कदापि नहीं होसकता, वह किसी न किसी समय अवश्य पूरा होजावेगा। हम कहते हैं कि किसी समय यहां तक कि शीघ्रही आपके लिये भी क़बर खोदेंगे।

(द्वितीय) घटना २ दिसम्बर सन् १८८५ की है। मिरज़ा गुलाम अहमद ने एक कादियान निवासी विशनदास नाम को बुला कर कहा, कि मुझे तुम्हारे विषय में इलहाम हुआ है, (जब कि मैं अंबाले की यात्रा में था) कि तू लड़के पढ़ाता है और नाम तेरा अज़ीज़ उद्दीन है, परिणाम यह है कि तू एक वर्ष तक मुसलमान हो जावेगा, नहीं तो मर जावेगा। विशनदास ने पूछा, कि यदि यह बात अवश्य होने वाली है, तो मेरा क्या वश है, किन्तु मैं आप से परामर्श करता हूं कि मेरा मरना अच्छा है या मुसलमान होना। मिरज़ासाहिब ने इलहामी भाषा में कहा कि मुसलमान होना। एक दो दिन उपरान्त फिर विशनदास ने पूछा, तो उत्तर दिया कि मुझे स्वप्न आया था न कि इलहाम, किन्तु मेरा स्वप्न भी इलहाम ही होता है, इलहाम प्रायः स्वप्न में होता है और अपना स्वप्न पत्र भी निकाल कर दिखलाया। स्वप्न के परिणाम पत्र में लिखा था कि "ज़ूद बमीरद या मुसलमान शवद" अर्थात् कि जल्दी ही मुसलमान होगा या मरेगा इसलिये तुम अपना प्रबन्ध करो अन्यथा मेरा स्वप्न अवश्य सत्य होगा।

वह बिशनदास भोला था, इस लिये बहुत घबरा गया, किन्तु उसी तारीख़ को लेखक (लेखराम) भी वहीं था। जब इस को पूरी तरह समझाया गया, कि यह केवल धोखा बाज़ी और चालाकी है और आर्य्य समाज के सिद्धान्त उस को समझाये, जिन को समझ कर वह आर्य्य समाज का सभासद होगया। इस पवित्र समाज की दीक्षा से उसकी सारी त्रुटियां, उसके मन से उतर गईं। तब वह खुल्लम खुल्ला मिरज़ा साहिब से मुकाबला करने लगा। मिरज़ा साहिब हाथ मलते ही रहगये कि वह सोने की चिड़िया उनके हाथ से निकल गई। अब एक वर्ष व्यतीत होगया है और यह बात कोरी गप्प और झूठो से भी बढ़ कर सिद्ध हुई। झूंठ के माथे पर स्याही का धब्बा स्थिर रहा, और क़यामत तक रहेगा। इनहीं दिनों में मिरज़ा साहिब के कई पुजारियों, झूठन खाने वाले चेलोंने कई गुप्त पत्र भी विशनदास को हित चिन्तन की दृष्टि से भेजे। ऐसे सब पत्र विशनदासने मेरे पास भेज दिये। शोक! कि मिरज़ा साहिब फिर भी धोखे बाजी से बाज़ नहीं आते, बहाना और चालाकियों से नहीं शरमाते और ठोकर खाते हैं।

(तृतीय) "अढ़ाई वर्ष हुए, कि मिरज़ा साहिब को इलहाम हुआ था, कि उनके घर में शीघ्र ही एक अहमद मर जावेगा, क्योंकि त्रैत का सिद्धान्त स्थिर होता है।" मिरज़ा साहिब का अपना नाम **गुलाम अहमद** है, बड़े बेटे का नाम सुलतान अहमद और छोटे का नाम फ़ज़ल अहमद है। भोले पन से यह बात फैला तो दी, किन्तु आज दो या अढ़ाई वर्ष बीत जाने पर भी कोई अहमद न मरा और तीनों जीवित हैं, किसीने सच कहा,

"दुरोग़ आदमी रा कुनद शर्मसार। मगर जिस को हो रु सियाही से आर" ॥

अर्थात् झूंठ आदमी को लज्जित करता, है किन्तु उसीको जिसे मुंह काला होने से डर लगता हो।

(चतुर्थ) "मुहर्रम १२९९ में मिरज़ा साहिब को स्वप्न में ख़ुदा ने कहा, कि किसी ने तुझे पुस्तक के वास्ते ५०) रुपये भेजे हैं, और एक आर्य्य ने भी वही स्वप्न देखा कि हज़ार रुपया आया है। जूना गढ़ से मिरज़ा साहिब को ५०) आगया, और हिन्दुके स्वप्न में १९ हिस्से झूठ निकला, क्यों कि वह मुहम्मदी धर्म्म से ख़ारिज था, कई लोग और कई आर्य्य गवाह हैं"।

शोक! कि मिरज़ा साहिब ने निरर्थक इस बात की पुष्टि के लिये किसी आर्य्य का नाम न लिखा, और लिखते भी कैसे जब कि वह था ही नहीं। कई आर्य्य लोग तो उन दिनों क़ादियान में मौजूद न थे, और न इन कई आर्य्यों के नाम हैं। अतः हम कहते हैं कि मिरज़ा साहिब ने केवल धोखा बाज़ी की, और पहिले यदि यह सत्य है, तो भीतरी रूप से मिरज़ा साहिब को पत्र आचुका था, क्यों कि रुपया कमाने के लिये यह सब चालाकियां होती हैं, इस लिये स्वप्न में देखाती क्या नई बात है। 'सच है बिल्लीको स्वप्न में भी छीछड़े ही नज़र आते हैं।'

(पंचम) "एक बार ख़ुदा ने एक राजा के मरजाने की सूचना दी, और उसने एक हिन्दु को बतलाई। जब वह सूचना पूरी हुई, तो हिन्दु ने कहा, कि स्पष्ट रूपेण प्रोक्त का वृत्तान्त तुम्हें क्या कर मालूम होगया"। वाहरे क़ादियानी

इलहामी ! हम तेरी इस चालाकी की क्या प्रशंसा करें, न तो उस राजा का नाम लिखा न उस हिन्दु का। इस लिये हम तो मानते नहीं, और इसके अतिरिक्त एक गुवाही मुद्दई की तबही है और माथे पर काला टीका। (देखो सूरत नूर कुरान)

(षष्ठम्) "एक बार एक वकील साहिब ने परीक्षा दी, और लोगों ने भी परीक्षा दी, वह पास होगये, बाकी इस ज़िले से और कोई पास न हुआ, हमने उनको पहिले कह दिया था और १८६८ में इस वकील ने सूचना दी कि मैं पास होगया।"

पाठक वृन्द ! यह नम्बर पांच से भी अधिक धोखा है, चालाक आदमी बहुतसी ऐसी बातें करके बहुत से लोगों को मोह लिया करते हैं। शोक ! कि मिरज़ा साहिब ने वकील का नाम न लिखा, और साथ ही कोई साक्षी भी न बतलाई। मिरज़ा साहिब के बड़े भाई जिले के सरिश्नेदार थे, और मिरज़ा साहिब खुद भी बहुत दिनों तक सरकार के नौकर रहे और तजरुबेकार हुए। आज कल यह बात तो करामात नहीं कहलाती, किन्तु चतुरता और जानकारी चाहती है। लाहौर में बीसियों आदमी ऐसे हैं, जो इस प्रकार की अचूक भविष्यवाणी करते हैं और झूठी नहीं होती। अतः यह बात किसी प्रकार भविष्यद्वाणी नहीं किन्तु चलती बात है।

(सप्तम्)एक संक्षिप्त बात लिखी है, "कि हमने एक आर्य्य को एक भविष्यद्वाणी बतलाई और उसने अचम्भा किया, पर हम इस भविष्यवाणी की इस स्थान पर व्याख्या नहीं करते।" मिरज़ा साहिब खुदा के चोर क्यों बनते हो और प्रगट क्यों नहीं करते। मुहम्मद साहिब के लिये आर्य्य का नाम और भविष्य का इलहाम प्रगट तो करो।

(अष्टम्) बारह वर्ष बीते,कि एक हिन्दु आर्यसमाज क़ादियान का सभासद मुहम्मदी करामाती से इन्कारी था। घटनावश उसका एक बन्धु कैद होगया और एक हिन्दू भी उसके साथ कैद हुआ। उसने मुझ से पूछा कि इस मुकद्दमे का क्या परिणाम होगा। मैंने कहा कि प्रात्न की बातें खुदा के पास हैं। उसके बहुत कहने पर मैंने प्रार्थना की, और स्वप्न में मुझे खुदा ने प्रगट किया, कि वह आधी कैद काट कर आधी शेष रहने पर छूट जावेगा, इस में पण्डित दयानन्द सरस्वती के अनुयायी की गवाही है, इसी प्रकार हुआ।" ऐ चालाक नबी ! क्यों सत्य बोलने से मुंह फेरता है, न तो उस हिन्दु का नाम लिखा, न उस आर्य्यका पता बताया। जिन दिनों लेखक कादियान गया था, उसकी खोज भी की, किन्तु कोई गवाह इस प्रकार का न मिला जो आपका अनुमोदन करता। हां, यह इलहाम किताब में लिखा मिला कि जो हिन्दु कैद से छूटा था, वह इसकी सचाई से इन्कारी है, इसलिये यह भी इस की मक्कारी है। पंडित साहिब के किसी अनुयायी का नाम न लिखा, और न वह आपके इलहाम का अनुमोदक है, वह तो कोई गुम नाम होगा। मैं खुल्लम खुल्ला मुहम्मदी, ईसाई और गुलाम अहमदी करामाती से इन्कारी हूं। लाखों आर्य और सैंकड़ों मुसलमान भी मेरे

साथ हैं। यह मुक़द्दमा बाजों की बातें हैं, और दल्लालों की घातें। वकील विशेष कर इन विषयों में चालाक होते हैं, और इस प्रकार की भविष्य वाणियों में निर्भीक।

(नवम) "सरदार मुहम्मद हयात खाँ जब पदच्युत हुए तो हम को स्वप्न में सूचना मिली कि कुछ डर न करो, खुदा शक्तिमान है, वह तुम्हें छुटकारा देगा। हयात खाँ छूट गये, साठसत्तर मनुष्य गवाह हैं—जिनमें दस बारह हिन्दू और आर्यसमाजी भी हैं।"

जिन दिनों सरदार मुहम्मद हयातखाँ साहिब पदच्युत हुए थे, उनके सारे शुभचिन्तक छुटकारा चाहते थे, और बहुत से प्रार्थना करते रहते थे, जिन में सहस्रों हिन्दू और सहस्रों मुसलमान हैं। न्यायी सरकार ने जब पूर्ण जाँच के पश्चात् उनकी ओर कोई अपराध सिद्ध न पाया तो छोड़ दिया, जिसका पूर्ण वृत्तान्त गवर्नमेंट गज़ट में छप गया। आपका इलहाम तो सिर से पैर तक असत्य निकला, जिसके शब्द यह हैं। "खुदा क़ादिर है तुम्हें नजात देगा" क्या इससे कोई बुद्धि मान हयातखाँ का मुक्त होना प्रकट कर सकता है? जब इस प्रकार सरदार साहिब छूटे और उनके सहस्रों रुपये ख़र्च हुए, तो आपने बुराहीन उल अहमदिया की सहायता के विचार से यूं ही शुभचिन्तक बनना चाहा, पर वहां दाल न गली और आपका गवाह आर्य्य भी इन्कारी है, और कोई हिन्दू भी गवाही नहीं देता, खुदा आपको शर्मिन्दा करे।

(दशम) "एक बार स्वप्न में इलहामी साहिब ने मसीह के साथ एक बर्तन में रोटी खाई, और दोनों का आपस में भ्रातृ स्नेह हुआ। यह स्वप्न कितना महान् है। यद्यपि अब तक पूरा नहीं हुआ किन्तु पूरा हो जावेगा।" मसीह के साथ रोटी खाना तो गौरव का चिन्ह नहीं है, और वह भी स्वप्न में, किन्तु मसीह के जीवन काल में यहूदो असकरयूती आदि सारे शिष्य उसके साथ खाते रहे, और अन्त में उसको कैद कराया, इससे यदि आप ईसाइयों को धोखे में लाना चाहें तो कठिन है, वह आपके धोखे से एक दम परे हैं।

(एकादश) "मैंने बुराहीन उलअहमदिया के बनाने की आज्ञा भी ख़ुदा से पाई, और दस हज़ार रुपये का विज्ञापन दिया। १८६५ ई० में यह स्वप्न मैंने देखा था, और उसी दिन मुहम्मद साहब के दर्शन भी हुए और बीबी फ़ातिमा ने यह पुस्तक मुझे दी।" मिरज़ा साहिब यह तो कोई इलहाम नहीं, केवल ख़याल है।

तिश्नारा मेनु मायद अन्दर ख्वाब, हमा आलम बचश्म चश्मए आब।

अर्थ—प्यासे को स्वप्न में भी कि सारा संसार जलमय दीखता है।

दस हज़ार रुपये के विज्ञापन की सम्मति आपको खुदा ने नहीं दी। आपने स्पष्ट झूठ बोला, किन्तु यह सम्मति तो हकीम किशनसिंह जी आर्य्य ने आपकी मूर्खता व नीचपन को सारे संसार में फैलाने के ख़याल से दी थी। क्या वह आपका खुदा है या ख़लीफ़ए मौला, सच है झूठे को याद नहीं रहता।

(द्वादश) "एक हिंदू आर्य्य क़ादियान निवासी विद्यार्थी बीमार हुआ, उसकी आयु बीस वर्ष की थी। वह राजयक्ष्मा का रोगी था और मेरे पास आया करता था (क्योंकि आप वैद्य और वैद्यों के पुत्र हैं) ख़ुदा ने मुझे इलहाम दिया, कि "कुलना या नारो कूनो बरदौं व सलामा" अर्थात् हमने बुख़ारकी आग को कहा कि तू ठण्डी और शांत होजा। कई हिंदुओं को इसके विषय में सूचना दी, और उसको भी, और ख़ुदा के भरोसे पर प्रतिज्ञा की गई कि वह अवश्य निरोग होगा। अन्त में वह हिन्दू स्वस्थ्य होगया।" जहां तक क़ादियान के निवासियों को मालूम हुआ, वह केवल इतना ही है, कि मिरज़ा साहिब के दस्तों की दवाई देने और घरेलू इलाजों से उसको निरोगता हुई, न कि इलहामों से। अरबी इबारत मिरज़ा साहिब बना सकते हैं, अतः यह प्रतिज्ञा ही प्रतिज्ञा है। यदि आप वैद्य न होते और वह आपकी दवा और अपने घरेलू इलाज न करता, और आप कोई अवधि नियत करते और लेखक (लेखराम) जैसे पहरेदार होते तब इलहामी हक़ीक़त की क़लई खुल जाती। बिना प्रमाण के मौखिक प्रतिज्ञा केवल निरर्थक बकवाद हैं, न कि आस्मानी इलहाम।

(त्रयोदश) "मिरज़ा साहिब को १० दिसम्बर १८८३ को ख़ुदा ने २१) का इलहाम पहुंचाया, और बड़ी चिन्ता कष्ट तथा प्रतीक्षा के पीछे वह रुपये पहुंचे औरख़ुदा का इलहाम सच्चा निकला, एक आर्य्य उसका गवाह है।" इसके विषय में वही आर्य्य कहता था कि इन दिनों हमको किताब की आवश्यकता के कारण रुपयों के स्वप्न आया करते थे। पश्चात् रुपये आते थे, किन्तु मिरज़ा साहिब के स्वप्नों से तो मेरे स्वप्न अधिक सत्य हुआ करते थे, और मिरज़ा साहिब के झूठे। सारांश यह कि क़ादियान आज कल मुहम्मदी ख़ुदा के इलहामों का निवास स्थान हो रहा है। मिरज़ा साहिब की धोखेबाज़ी देख कर बच्चा २ इलहामी बना हुआ है।

मिरज़ा साहिब के इलहामों के साक्षी लाला मलावामल साहिब तथा शरम्पतराय साहिब हैं, जिन्होंने आज कल विज्ञापन भी मिरज़ा साहिब के विरुद्ध छपवाया है, जो इसी पुस्तक के अन्त में लिखा है। सन् १८८३ में मैंने मिरज़ा साहिब के बड़े बोल देख कर एक पत्र मन्त्री आर्य्य समाज क़ादियान के पास भेजा जिसका विषय यह है, कि "मिरज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी ने किताब बुराहीनुल अहमदिया की जिल्द ३ में लिखा है कि मैं ने आर्य्यसमाज क़ादियां वालों को करामात आदि अस्वभाविक बातें बतलाईं और इलहामों का स्वाद चखाया है। उनके हृदय की बातें पूछी हैं, क्या यह सच है या नहीं?" इसके उत्तर में एक पत्र क़ादियां से मेरे नाम आया, जिसकी प्रति अक्षरशः नीचे लिखी जाती है:—

"जनाब मुकर्रम मुअज़्ज़म बन्दगान लेखराम साहिब नमस्ते!

नवाज़िश नामा दरबारह इस्तफ़सार अहवाल करामात वग़ैरा के जो मिरज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब ने मायाद् की निस्बत बुराहीनुल अहमदिया में लिखा

होगा पहुंचा, कमाल खुशी हासिल हुई । जनावे मन, यहां पर समाज नहीं है, हम सिर्फ चार पांच अशखास आर्य्यमत वाले यहां कादियां में हैं। सो हममें से कोई किसी क़िस्म की करामात वग़ैरह सदाकतें उनको का क़ायल नहीं है। हम लोगों के जो असूल आर्य्यों के हैं वही हैं, फ़क़त नियाज़।

शरम्पतराय, छरूमल, किशनसिंह, दयाराम जय किशन अज़ मुक़ाम कादियान् ज़िला गुरदासपुर १५ मार्च १८८३।"

अब इसके पश्चात यह भी बतलाता हूं कि करामातें मुहम्मद साहिब से भी प्रकट हुई हैं, या नहीं। इस विषय में साक्षी केवल कुरान से लेने की आवश्यकता है न कि किसी और पुस्तक से।

(१) सूरत बनी इसराईल, "कोई कारण हमको बाधक न हुआ, कि तुझको हम चमत्कार के साथ भेजते, किंतु यह कि पहिले पैग़म्बरों को झुठलाया साथ उनके अर्थात् उनके चमत्कार लोगों ने न माने, इस वास्ते हमने तुझको चमत्कार नहीं दिये।

(२) सूरत बनी इसराईल, "और बोले (कुरेश के बूढ़े) कि हम न मानेंगे, तेरा कहा, जब तक तू बना निकाले हमारे वास्ते ज़मीन से एक चश्मा, या होजावे, वास्ते तेरे बाग खजूरों और अंगूरों का, फिर बहा लेवे तू उसके बीच नहरें, चला कर या गिरादे आसमान हम पर, जैसा कहा करता है, टुकड़े टुकड़े या लेआ अल्लाह को और फरिश्तों को ज़ामिन, याहो आवे तेरे वास्ते एक घर सुथरा, या चढ़ जावे तू आसमान में और हम यक़ीन न करेंगे तेरा चढ़ना, जब तक न उतार लावे, हम पर एक लिखा जो हम पढ़लें, तू कह सुबहान अल्लाह मैं कौन हूं, मगर एक आदमी भेजा हुआ।" (शोक कि इतने इक़रारों, शर्तों और प्रतिज्ञाओं पर भी मुहम्मद साहिब ने चमत्कारों से इनकार करके लाचारी प्रगट की, कि मैं केवल भेजा हुआ मनुष्य हूं, न कि करामाती, तुम मेरे से क्यों करामात मांगते हो, मेरे पास करामातें नहीं हैं)

(३) सूरत इनाम, "क़सम खाई है उन्होंने (काफ़िरों ने) साथ सख़्त क़सम अल्लाह के कि अगर कोई मौजिज़ा देखें, तो ईमान लावेंगे, कह ऐ मुहम्मद! कि मौजिज़े खुदा के पास हैं, और तुम नहीं जानते हो, अगर मौजिज़ा होगा, तब भी ईमान न लावेंगे," (हे मोमिनों! न्याय से सोचो कि यह कैसा स्पष्ट चमत्कार दिखलाने से बहाना बनाया गया है, नहीं तो काफ़िरों का ईश्वर को सौगन्द खाना, स्पष्ट बतलाता है, कि वह अवश्य विश्वास लाते।

(४) सूरत इनाम, "कह ऐ मुहम्मद! वह चीज़ अर्थात् मौजिज़ा जिसके लिये तुम जल्दी करते हो, नहीं मेरे पास, क्यों कि खुदा की तरफ़ से है और वही हक़ को जाहिर कर देगा, और वह सब हाकिमों से बेहतर और बरतर है, कह ऐ मुहम्मद! वह चीज़ अर्थात् मौजिज़ा जिसे तुम चाहते हो, कि जल्द ज़हूर में आजावे, अगर मेरे पास होता, तो मेरा

तुम्हारा झगड़ा फैसला होजाता।" यहां से स्पष्ट निर्णय होगया कि हजरत के पास करामातें नहीं थीं, वरन् यहां पर करामात न होनेका स्पष्ट सकार दिया है।

(५) सूरत आल उमरान. 'जो कहते हैं कि अल्लाह ने हम को कह रखा है कि हम यकीन न करें, किसी रसूल का, जब तक न लावे हम पर एक नियाज़ जिसको कहा जावे आग, तू कह, तुम में आचुके कितने रसूल मुझ से पहिले निशानियां लेकर और यह भी जो तुमने कहा, फिर क्यों कत्ल किया, तुमने उनको यदि तुम सच्चे हो"। (चमत्कार के शाब्दिक अर्थ झुकाने के हैं। शोक! कि परमेश्वर ने मुहम्मद साहिब को कोई करामात न दी, नहीं तो इतने खून खराबे और अत्याचारों की आवश्यकता न होती। खुदा का नबियों को मुहम्मद साहिब के पहिले चमत्कार देकर भेजना और लोगों का बध कर देना, एक तमाशा जान पड़ता है)

(६) सूरत इनाम, "अगर तुझ पर भारी है उनका प्रमाद करना तो अगर तू होसके, कि ढूंढ निकाले कोई सुरंग ज़मीन में या कोई सीढ़ी आस्मान में फिर लावे उनको एक निशानी, और अल्लाह अगर चाहता तो जमा कर लाता सबको उसके राह पर।" शोक! कि मुहम्मदसाहिब चमत्कार दिखाने से घबरा कर सुरंग ढूंढते हैं, ताकि भाग जावें, या आसमान पर सीढ़ी लगावें, और चढ जावें, ताकि चमत्कार मांगने वाला से छूट जावें न कि चमत्कार दिखावें।

हे मोमिनो! नहीं मौजिज़ा हक़ को मंजूर है।
ज़मीन सख़्त और आस्मान् दूर है।

(७) सूरत रांद, "कहते हैं पुनकिर क्यों न उतरे उस पर (मुहम्मद पर) कोई निशानी उसके रब से, तू कहदे अल्लाह बहकाता है, जिस को चाहे, और राह देता है, अपनी तरफ़ उसको जो रुजू हुआ।" (इस स्थान पर करामात दिखलाने से घबरा कर गालियां निकालना आरम्भ करदिया, कि वह गुमराह हैं। क्या यही करामात दिखाना है ?

(८) फिर सूरा रांद में है।

"कहते हैं लोग क्यों न उतरी उस पर कोई निशानी उसके रब से (कह हे मुहम्मद) तू तो डर सुनाने वाला है, और क़ौम को हुआ है राह बताने वाला"। (यहां चमत्कारों से सर्वथा इंकार किन्तु केवल डराना ही अपना कर्तव्य कह कर साधारण पथ प्रदर्शकों की न्याईं बन गये, सच है चमत्कार दिखाना खाला जी का घर नहीं है)

(९) सूरत अंकबूत में है, " और कहते हैं (काफ़िर) क्यों न उतरी उस पर आयत उसके रब से तू कह निशानियां तो हैं इख़्तियार में अल्लाह के, और मैं तो (डर या कुरान) सुनाने वाला हूं खोल कर।" (सत्य प्रिय पाठक वृन्द! आप उपरोक्त आयतों से सन्तुष्ट होगये होंगे, कि मुहम्मदसाहिब को चमत्कार

का अधिकार न था, और जो लोग चमत्कार बयान करते हैं, वह अपनी मन घड़ंत बातें बनाते हैं, वरना कुरानमें कोई प्रमाण इस बातका नहीं है कि मुहम्मद साहिब ने चमत्कार दिखलाये, किन्तु यह नौ उपरोक्त साक्षियां नकार में मौजूद हैं, जिन से कोई मुहम्मदी इनकार नहीं कर सका। अतः हमने ४ गवाहोंके बदले ६ गवाह इस बात के उपस्थित किये, कि मुहम्मद साहिब चमत्कार से शून्य थे, और वास्तव में सारे दार्शनिक मौलवी विद्वान् लोग साफ़ इंकारी हैं, कि कुरान में चत्कार नहीं है, अब जब तक कि कोई इन ६ गवाहियों को रद्द करके ६ गवाहियां और चमत्कार के प्रमाण की कुरान से न निकाले, तब तक हमारी प्रतिज्ञा ज्यों की त्यों मौजूद रहेगी। जब खुदाने मुहम्मद साहिबको चमत्कार नहीं दिया और न उन्हों ने कोई दिखलाया और न प्रतिज्ञा की, तो गुलाम अहमद का नबुव्वत व चमत्कार, इलहाम और करामात आदि का खुल्लम खुल्ला प्रतिज्ञा करना कितना कुरान के विरुद्ध और गप्प है। यदि सच पूछो, तो न्याय से दूर है और वास्तव में यह सारी चालाकियां मिरज़ा साहिब को 'पेट पूजा' के लिये हैं। न कोई चमत्कार है, न सृष्टि नियम टूट सकता है, न इलहाम है, न आस्मानी निशान, किन्तु किसी प्रकारकी सांसारिक विचित्रता भी उनके पास नहीं। एक बार मिरज़ा साहिब के मकान पर लेखक बैठा हुआ था, और कई प्रतिष्ठित आर्य्य महाशय और कुछ मुसलमान भी विराजमान थे। मिरज़ा साहिब करामातों का विषय ले बैठे, और बात चीत में कहा, कि "मुझ को फ़रिश्ते दिखाई देते हैं।" मैंने कहा, कि क्या सच कहते हो। उत्तर दिया हां। मैंने एक कागज़ के परचे पर पेन्सिल से "ओ३म्" अक्षर लिखकर अपने हाथ में रख लिया और कहा कि छुपा कर फ़रिश्तों से पूछ कर बताओ, कि मैंने कौनसा अक्षर लिखा है। कुछ समय तक कुछ मुंह में गुन गुनाते रहे, पश्चात् कहा कि इस प्रकार नहीं, किसी और स्थान पर रखो। मैंने अपनी पाकट में डाल दिया, फिर पूछा तो कुछ काल अपने कपोलकल्पित और बनावटी फ़रिश्तोंसे पूछते रहे, पर कुछ न बतला सके और लज्जित होकर अवाक़ होगये। इस बातके लिये वहां दस बारह आदमी एक स्वर से साक्षी हैं, और मिरज़ा साहिब भी विश्वास है, सौगंद दिलाई जाय तो इन्कार न करेंगे।

(गल्प) एक कुरानी हाफ़िज़ आंख से अंधा था, पर बहुधा स्वप्न में अपने आपको सुजाखा देखा करता था। एक दिन इसी सुजाखे पन को धुन में लकड़ी का सहारा छोड़कर कुएं में गिरपड़ा। इसपर किसीने क्या सच कहा है।

देख अकदे सरैय्या उसे अंगूर की सूझी।
ऐ बादा कशी उसको भी क्या दूर की सूझी।

(परिणाम) शिकारी जब बुलबुल को जाल तोड़ वृक्ष पर चह चहाता देखता है, तो फिर उसे दाना दिखला कर बुलाता है ताकि किसी प्रकार वह बेसमझ बुल बुल मेरे जाल में फंस जावे और मेरी रोजी चलती रहे। यदि समझदार बुल बुल को स्वतन्त्रता रूपी अमूल्य धन का ध्यान आगया, कैद के दुःख न भुला बैठी, तो उड़कर चली गई, वरना फिर वही पिंजरे का दाना

पानी मिला। ठीक यही हाल इनका है। ज्यों ही कोई मुहम्मदी शिक्षा की चमक से दार्शनिक तर्क की ओर झुका, और स्वतन्त्रता का समय देख कर सम्मति देने के योग्य बनना चाहा, तो झट उसे डराना धमकाना आरम्भ किया और निरर्थक फ़तवे मिलने लगे। यही दशा हमारे मिरज़ा की है, कि जब कोई मुसलमान कुरान के इलहामी होने से इंकार करने लगा, तो तत्काल जाल फैलाने लगे, और इलहाम की प्रतिज्ञा सुनाने लगे कि इस तेरहवीं शताब्दी में हम भी गोप्य बातों के बताने वाले हैं। खुदा हमारी प्रशंसा में अब तक अरबी में आयतें उतारता रहा है। नमाज़ के समय जिबराईल हमारे कान में भी वही फूंकता है, हम भी करामाती हैं। मूर्खों के बहकाने को लाल बुझक्कड़ हैं। हमने अमुक आर्य को दरूद से निरोग किया। हमने अमुक अभियोग में अमुक पुरुष को खुदा की दरगाह में अपील करा के, सिफ़ारिश पहुंचा कर अभियोग जिताया, और हमने अमुक नोटों की भविष्यद् वाणी की, और उसी दिन डाक खाने से मिले। "क्या ही एक पन्थ दो काज वाली बात है।"

सच पूछो तो इनकी अंड संड प्रतिज्ञाओं ने पहिलों की करामातों का भी सत्यानाश कर दिया। खुदा मिरज़ा साहिब को बुद्धि का प्रकाश दे और इनके धोखे से मनुष्यों को बचावे।

बुराहीन उल अहमदिया के लेखक के आक्षेप

(भाग ४ पृ० ३९७ से ४२७ तक)

वादी ने पूरे तीस पृष्ठों के मार्जन पर आर्य समाज वालों को सम्बोधन करके अत्यन्त पक्षपात से दिल के फफोले फोड़े हैं, और प्रायः विरोध के तमाम बुख़ार निकाल दिये, पर सर्वथा निरर्थक वा बिना प्रमाण। असली पुस्तक को देखिये, सारी प्रतिज्ञाओं के विषय में (जो अपने विचार में उन्होंने सत्य भाषी की पदवी ग्रहण की है) कोई श्रुति नहीं लिखी, और इसी प्रकार गंदे, अपमान सूचक, और बुरे शब्द ईमानदार हृदय से निकाले हैं। जिनका पुनः लिखना, "नक्ल कुफ़ बदतर अज़ कुफ़" का हुक्म रखता है। सभ्य लोग इस प्रकार के शास्त्रार्थों को सभ्यता से गिरा हुआ समझते हैं, इसलिये "अतापओ बलकापओ वलशोदम" (उसका दान उसी के मत्थे मारा) पर आचरण करके तात्पर्य की ओर आता हूं।

वादी ने अपनी सारी पुस्तक में जहां वेद के विषय में कोई आक्षेप लिखा है, वह अपनी योग्यता से नहीं, किन्तु उस अशुद्ध निरर्थक, अनियमित तथा क्रम रहित उर्दू अनुवाद से है, जो सन् १८७२ में देहली सोसायटी की आज्ञा से ला० लछमणदास अध्यापक सेन्ट स्टीफ़नस (मिशन) कालिज ने प्रो.फ़ेसर विलसन साहिब के अंगरेजी अनुवाद से उर्दू में किया है। जो नाम मात्र का अनुवाद ऋग्वेद के आठवें भाग का हुआ है, और प्रो.फ़ेसर विलसन साहिब ने वह अनुवाद "सायण" के भाष्य से किया है। अब मुझे

सब से पहिले उन बातों का प्रगट कर देना आवश्यक है, कि इस खराबी की जड़ कहां से निकली।

चौदहवीं शताब्दी में जिन दिनों कि अविद्या अन्धकाररूपी बादल सारे आर्यावर्त्त में फैला हुआ था। जिन दिनों कि सत्यधर्म तथा सत्य कर्म की ओर पाश्चात्य आक्रमणों के कारण सर्व साधारण की रुचि घटी हुई थी, उन्हीं दिनों में हिन्दुओं में एक ऐसा पन्थ बना, जो मांस भक्षण तथा मदिरा पान को धार्मिक नियम समझने लगा। व्यभिचार तथा वैश्यागमन उनके मत का पहिला कर्तव्य ठेहरा। भोग विलासी तथा निर्दयी पंडित जो रुपयों के मुक़ाबले में धर्म को कुछ वस्तु नहीं समझते थे, उन्होंने इस मत में बड़े २ पद प्राप्त किये। वस्तुतःजिस मत को संस्कृत में 'वाम मार्ग' और साधारण परिभाषा में 'शाक्तिक' नाम है, उन्हीं दिनों में निकला था। सायणाचार्य्य और महिधर आदि बहुत से ऐसे पंडित उनके अगुआ बने और अत्यन्त परिश्रम से नई २ परिभाषायें निकाल कर वेदों की ओर से लोगों की श्रद्धा हटाने लगे। या यूं कहो, कि "वाममार्ग के सिद्ध" करने को भाष्यों में कई प्रकार की व्याख्यायें जोडनी पड़ीं। मूर्खों के उपालम्ब से बचने के लिये वेद के द्वारा वाम मार्ग मत चलाना आरम्भ किया। उसका दूसरा भाई एक राजा का मन्त्री था। अतः शासन के बल से भी बहुत सी अनियमित कार्यवाही करवाई,(देखो उपरोक्त भाष्य पृ० ३४ पंक्ति ३से ६ तक)

एक तो सायणाचार्य्य का भाष्य स्वयं भी वैदिक कोष और ब्राह्मण ग्रन्थों से विरुद्ध है, दूसरे मैक्समूलर साहिब और विलसन साहिब जो उसके अनुवाद को भी समझने और समझाने तथा दूसरी भाषाओं में अनुवाद करने की योग्यता नहीं रखते (स्वार्थ या पक्षपातका दोषन लगावें तो भी स्वयं वेद विषय को न समझने और जानकार न होने को भूमिका में स्वीकार करते हैं। अतः इसी अनुवाद के पृष्ठ ३२५ पर स्वयं डाक्टर मैक्स मूलर साहिब ने यह सम्मति लिखी है कि २० वर्षके समयके पश्चात् जो मैंने मन्त्रों और शाखाओंके एकत्रित करने और छापने में लगायें हैं, ऋग्वेद के अपने किये हुए अनुवाद को जनताके सन्मुख उपस्थित करता हूं, पर तो भी इनमें से सारे मन्त्रों के अनुवाद का इकरार नहीं करता। यद्यपि मेरे पास सायणाचार्य्य का अनुवाद और तत् सम्बन्धि भाष्य, कोष तथा व्याकरण आदिकी पुस्तकें विद्यमान हैं, पर तो भी ऋग्वेद में बहुत से ऐसे मन्त्र हैं, कि जिनके अर्थ मालूम नहीं होते। इस बात का कहना,कि जिस को मैं कईबार कह चुका हूं कुछ आवश्यक नहीं, कि ऋग्वेद के एक मन्त्र का भी अनुवाद करना असम्भव है। जब तक कि सायणाचार्य्य का भाष्य ब्राह्मण पुस्तक, निरुक्त, बृहद्वल्ला तथा सूत्र आदि और बहुत सी संस्कृत काव्य ग्रन्थ, दर्शन शास्त्र आदि की पुस्तकों को अत्यन्त विचार के साथ न पढ़े। डाक्टर विलसन साहिब का भी कथन यह है, कि सायणाचार्य्य का अंगरेज़ी में अनुवाद भली प्रकार नहीं हो सकता, क्यों कि यह एक ऐसी अपूर्ण भाषा है कि जिसमें वास्तविक भाष्य के बहुत से शब्दों और वाक्यों का अनुवाद होना ही असम्भव

है। आजकल योरुप में संस्कृत का ऐसा प्रेम और इतनी उन्नति है, कि अनुमान ५० वर्ष के भीतर लोग मेरे अनुवाद को सर्वथा भूल जायेंगे। जिसकी बुराइयों और अशुद्धियों को जितना मैं जानता हूं और कोई नहीं जान सकता। हां अपने अनुवाद के विषय में मैं इतना कह सकता हूं कि यह उन व्यक्तियों की उन्नति के लिये एक छोटासी सीढ़ी हो सकता है. जो मेरे बाद संस्कृत विद्या के लिये उत्सुक हों। इसके द्वारा वह मनुष्य हमारे पूर्वजों के विचारों को उनके विषय में, जिनकी भाषा हमारी भाषा में अब तक मौजूद है, और जिनकी पुस्तकें हमारे लिये अब तक सुरक्षित हैं, भली प्रकार जान सकेंगे।

इसी प्रकार उस उर्दू अनुवाद की भूमिका में भी मास्टर लछमनदास साहिब ६ पृष्ठ पर लिखते हैं, "इस भाग में कई ऋचायें ऐसी हैं जिनके अर्थ भली प्रकार समझ में नहीं आते। इनके देखने से पाठक वृन्द यह विचार न करें, कि अनुवादकी त्रुटि है किन्तु उनको यह समझना चाहिये कि इस समय में बहुत से विचार ऐसे भी थे, जो अब भली प्रकार समझ में नहीं आसकते।"

(पृष्ठ ३) "और मन्त्रों के रचयिताओं के नाम और देवता जिनकी महिमा में यह मन्त्र है, वेद में नहीं लिखे हैं। यह वृत्तान्त बहुत कुछ और पुस्तकों से ज्ञात होता है, जो वेद से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखतीं।"

(पृष्ठ ६) "इसका परिणाम निकालना कुछ कठिन नहीं है, किन्तु अब तक हमें पूरा परिणाम निकालने या अपनी सम्मति लिखने के पात्र नहीं हैं।"

(पृष्ठ ११) "बहुत से वेद के वाक्य अभी तक बिना भाष्यकार की सहायता के समझ में नहीं आते।"

(पृष्ठ १३) "प्राचीन और धार्मिक नियमों के संग्रह करने में और उनके दृष्टिगत रखने में जो अभिप्राय प्रकट किया गया अद्भुत है। क्योंकि हम जितना अब तक पहिचान सकते हैं, यह बात मालूम होती है कि उनमें उन धार्मिक और सामाजिक नियमों का कुछ भी वर्णन नहीं है, जो अवश्य ही वेदों के संग्रह के समय में भली प्रकार पूर्ण होगये थे। हम अब तक कोई निश्चित स्थिति, धार्मिक मन्तव्य और रीति नीति के विषय में नहीं बता सकते, जो ऋग्वेद में पायी जाती है, और न सामाजिक अवस्था के विषय में जो इन मन्त्रों की रचना के समय थी। यह सर्वथा अनुचित होगा, यदि हम यह कहें कि ऋग्वेद में ब्राह्मणों के मन्तव्यों के बड़े २ लक्षणों की स्वीकृति नहीं पाई जाती जब तक हम सारे ऋग्वेद का अध्ययन न करें और भली प्रकार निश्चय न करलें कि ऐसी बातों का ऋग्वेद में कुछ भी वर्णन नहीं है। अतः जान लो कि इन विषयों में सम्मति देने में जो कुछ वृत्तान्त हमें ज्ञात हुआ, वह ऋग्वेद की उस प्रथम पुस्तक द्वारा हुआ, जिसका अब अनुवाद हुआ है। कोई बात हमको आगे मालूम हो और वह इसके विरुद्ध हो, तो इससे हमारी सम्मति बदल सकती है, और यदि सम्मत हो, तो नहीं।"

(पृष्ठ २७) "पर अधिक सम्भावना है कि वेद में "क्या रखेण" शब्द के कुछ और अर्थ हों, और अब कोई नहीं जानता हो।"

(पृष्ठ २७) "और हम यह बात नहीं विचार सकते कि वह इन देवताओं के ऐसे श्रद्धालु थे, या कि वह इसे केवल प्रत्यक्ष द्रव्यों की पूजा उनमें किसी और भावना से करते हों। इसके अतिरिक्त कि यह द्रव्य उत्पादक की शक्ति के चिन्ह हैं। चाहे इन देवताओं की प्रशंसा में किसी प्रकार की अत्युक्ति हो, परन्तु हम यह विचार नहीं कर सकते कि इनके रचयिताओं ने यह शब्द अवश्य मुख से निकाले हों। विशेष कर जब कि हम यह बात देखते हैं कि यह मन्त्र उन लोगों की रचना है, जिनकी योग्यता और विचार में कुछ सन्देह नहीं हो सकता, और जिनको विद्वत्ता और तीव्र मेधा प्राप्त थी।'"

(पृष्ठ ३४) "क्योंकि यद्यपि सायण ने जो अर्थ लगाये हैं, उनमें कहीं २ आक्षेप हो सकता है, तो भी निस्सन्देह कोई योरुपीय विद्वान् ऐसा न होगा, जो उसकी योग्यता को पहुंच सके।"

उपरोक्त सम्मतियों का परिणाम [सारांश]

जब अनुवादक स्वयं ही पृष्ठ ६ में लिखता है, कि उस भाग में बहुत सी ऋचायें ऐसी हैं, जिनका तात्पर्य भली प्रकार विदित नहीं हो सकता। जिन ऋचाओं के आशय को अनुवादक नहीं जानता, क्या सम्भव है कि उस अनुवादक का शिष्य सरीखा पुरुष उसके आशय को जान सके? अतः निश्चय हुआ, वेदमन्त्रों के शब्दों का तात्पर्य्य स्वयं अनुवादक ने बहुत स्थानों पर तनिक भी न समझा और न ऋचाओं के सच्चे अर्थ समझ सका। इसलिये उसके शब्द चुराने, उद्धृत करने और उसके अनुवाद अर्थात् तीनों से सत्य की आशा नहीं।

पाठक गण! प्रोफ़ेसर विल्सन १ पृष्ठ पर कहते हैं कि, "हम अभी इस अनुवाद के विषय में किसी प्रकार का परिणाम निकालने या सम्मति देने के योग्य नहीं हैं।" जब उसका गुरू अंगरेज़ अनुवादक स्वयं ही परिणाम निकालने के योग्य नहीं और न सम्मति देने का अधिकारी, तो फिर मिरज़ा साहिब का इस संदिग्ध अनुवाद पर सम्मति देना कितनी मूर्खता को सिद्ध कर रहा है, जब कि वह अनुवाद स्वयं अनुवादक के विचार में विश्वास के पद से कोसों दूर है।

प्रिय पाठको! विचार करो कि पृष्ठ ११ में अनुवादक ने जब स्वयं ही कह दिया कि, "बहुत से वेद के वाक्य अभी तक बिना भाष्यकर्त्ता की सहायता के समझमें नहीं आते।" तो पहिले अनुवादकका न समझना, दूसरेका भूल करना तीसरे का धोखे से या धोखा देने के विचार से, उस अशुद्धि को शुद्ध मान कर सत्य से आंख मींच कर लोगों को धोखे में डालना, कितना धर्मयुक्त है। निस्सन्देह सत्य है कि बहुत से वेद वाक्य बिना संस्कृत के पंडित के सर्वथा विद्या शून्य की समझ में नहीं आते। इसलिये मिरज़ा साहिब का इस अशुद्ध अनुवाद पर अन्धाधुन्ध अनुकरण करना निरी धोखेबाज़ी और जालसाज़ी है।

पृष्ठ १३ में अनुवादक लोगों की उन सम्मतियों पर अत्यन्त विस्मित होता है कि, "यह वैदिक काल के विरुद्ध हैं। धार्मिक, सामाजिक नियम वेदों के काल में पूर्ण हो चुके थे, पर आज कल के अनुवादों से हमें वह तात्पर्य्य नहीं मिलता। इसीलिये हम अभी तक कोई निश्चित व्यवस्था, धार्मिक मन्तव्य और सामाजिक नियमों के विषय में जो वेद में हैं, नहीं कर सकते हैं", और यह भी लिखा है कि, "यह सर्वथा अनुचित होगा यदि हम यह कहें कि ऋग्वेद में ब्राह्मण मत के बड़े २ चिन्हों का प्रमाण नहीं मिलता, जब तक कि हम सारे वेद का अध्ययन न करें"

पाठक वृन्द! ईश्वर के लिये कहिये कि जिसने अनुवाद करते समय चारों वेद पढ़े ही नहीं, किन्तु एक ऋग्वेद भी नहीं पढ़ा। क्या वह अनुवाद करने की योग्यता रख सका है? क्या वेद ऐसी पुस्तक है कि साधारण संस्कृत की कुछ पुस्तकों का पढ़ने वाला उसका अनुवाद करे? हमें उन लोगों की बुद्धि पर अत्यन्त शोक है, जो उसको संस्कृत का प्रोफ़ेसर या कोई और उपाधि देते हैं और उसके कल्पित अनुवाद को (जो संस्कृत से अंग्रेजी, और अंग्रेजी से उर्दू में किया गया है) मान्य जानते हैं, जो सर्वथा अशुद्ध, अपूर्ण और अप्रामाणिक है। किन्तु वह स्वयं ही वर्णन करते हैं कि, "हम को कोई बात आगे मालूम हो, और वह इसके विरुद्ध हो, तो हमारी सम्मति बदल सकती है" अब तो उनके सारे अनुवादों का स्पष्ट रूपेण खंडन होगया है और सारे जगत् में विज्ञापन दिये गये हैं, जिससे निश्चय है कि प्रोफ़ेसर की सम्मति भी बदल गई होगी। इसके उपरांत उनकी सम्मति बदलवाने के लिये हमें इंग्लैंड से पत्र व्यवहार करना पड़ता है, जो आर्यसमाज लंडन के मन्त्री का कर्तव्य है। पर मिरज़ा साहिब यदि सत्य प्रिय हैं, तो उनके वास्ते हमें क़ादियां से सम्मति बदलवानी सुगम है, किसी प्रकार कठिन नहीं। सबसे अधिक उत्तमता यह है कि वह संस्कृत से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। यद्यपि इस अवस्था में उनकी सम्मति का पहिले ही कुछ गौरव नहीं, पर फिर भी ईश्वर करे, कि इस असत्योपदेश के अनुकरण से मिरज़ा साहिब अपनी मिथ्या और विरुद्ध सम्मति को वापिस लेलेवें और सन्मार्ग पर आवें।

पृ० १७ में लिखा है, कि "ग़ालिबन यह है, कि वेद में (कारुविद्या) शब्द के कुछ और अर्थ हों, और वह अब कोई न जानता हो" वाह २। जब वेद के किसी शब्द के अर्थ और हैं, जो कोई अब न जानता हो, तो कोष, निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थ किस काम के हैं। वेद में ऐसा शब्द कोई नहीं जिसके अर्थ प्राचीन पुस्तकों से ज्ञात न हो सकते हों। बड़ा कारण यह है, कि वेद में निरर्थक शब्द कोई नहीं। वैदिक कोष के पंडितों ने अत्यन्त उत्तमता से इस सेवा को पूर्ण किया है, पर बिना योग्यता और कोष आदि देखने के सफलता असम्भव है। हां, यदि यह विचार हैं कि जिस बात को अनुवादक न समझे, उसके अर्थ कौन जानता होगा, यह निसन्देह प्रतिज्ञामात्र तो है, पर उससे कोई आर्य्य सहमत नहीं हो सकता, किन्तु यह अनभिज्ञता का एक प्रमाण है।

पृष्ठ २७ में लिखा है, " लेकिन हम यह नहीं ख़याल कर सके, कि इन के मुसन्निफ़ों ने यह अलफ़ाज़ बिल यक़ीन मुंह से निकाले हों। " हज़रत! जब उन्हों ने निश्चित रूप में मुख से नहीं निकाले हैं तो आप का अनुवाद करना और मिरज़ा गुलाम अहमद साहिब का सम्मति देकर और अनजान मनुष्यों को धोखा देना कितना अविद्या का चिन्ह है। पृष्ठ ३४ में लिखा है कि " सायणाचार्य्य ने जो अर्थ लगाये हैं, उन में कहीं शंका होसकती है. पर तो भी निस्सन्देह कोई योरुपीय विद्वान् ऐसा न होगा जो उसकी योग्यता को पहुंच सके। " जब सायणाचार्य्य के अर्थ पर अनुवादक को भी स्वयं शंका है तो अनुवादक के अर्थों पर कितने आक्षेप होसकते हैं। इस अवस्था में स्पष्ट भूल नहीं तो और क्या है यदि हम या कोई और सत्यप्रिय मनुष्य कभी इन पर विश्वास तथा भरोसा करे? जब सायण के भाष्य पर आक्षेप है तो इन मौलवी विद्वानों के अनुवाद में (जिन में से कोई भी उसकी योग्यता को नहीं पहुंच सकता) कितनी अशुद्धियां और आक्षेप होने आवश्यक हैं। इस लिये सायणाचार्य्य कृत अनुवाद के अशुद्ध होने से योरुपीय विद्वानों का अनुवाद जो उसे स्वयं भी अशुद्ध समझते हैं अशुद्ध होगया, और उन अनुवादों से मास्टर लछमनदास का अनुवाद निवान्त अशुद्ध होकर, मिरज़ा गुलाम अहमद के आक्षेप जो झूठी नींव पर, झूठी दीवार, झूठी छत और झूठी इमारत के समान हैं, वह किसी प्रकार प्रामाणिक नहीं और न सन्मान के योग्य हैं। यही सिद्ध करना हमारा कर्त्तव्य था, जो ईश्वर कृपा से पूर्ण रूप से पालन हुआ।

बुराहीन उल अहमदिया पृ० ३९९ से ४०१ तक ऐतराज़ नं० ३,

ऋग्वेद संहिता अष्टक १ सूक्त ६१ की यह श्रुति जिस में लिखा है, ऐ इन्द्र! धरित्रा पर अपना वज्र चला, और इसे ऐसा टुकड़े २ कर, जैसे बूचड़ गाय के टुकड़े २ करता है। एक तो यह तशबीह ग़ैर मौज़ूना है और एक बुज़ुर्ग को बूचड़ से तश्बीह देना गोया उसकी हजव मलीह करना है, जो दरजए बलाग़त और शाइस्तगी कलाम में बईद और एक तरह की बेअदबी है वग़ैरः।

उत्तर—लेखक ने वादी की सचाई के खोज लगाने को सारे प्रथम अष्टक के ६१ सूक्त की पड़ताल की, पर इस बात का कहीं चिन्ह न पाया। नहीं मालूम कि हज़रत को यह बात कहां से सूझी, परन्तु साथ ही जब देहली वाला उर्दू अनुवाद देखा, तो इलहामी की योग्यता प्रकट होगई। पाठक वृन्द! निस्सन्देह इस अनुवाद से जिसके विषय में हम पहिले लिख चुके हैं, मिरज़ा जी को बड़ा धोखा हुआ। इसी संख्या१२के चित्र में जिसको मिरज़ा साहिबने उद्धृत किया है व्याख्याता मार्जन पर संख्या २ 'काटता है', पर लगाकर लिखता है"धरित्राके अङ्गों को भान्ति पृथक् २ कर डालो," (शेष शब्द व्याख्याता अपनी ओरसे बढ़ाता है) जैसे सांसारिक मनुष्य मांस काटने वाले पशुओं के अङ्ग पृथक् २ करते हैं। यह वर्णन विचारने योग्य है। यद्यपि यह बात भली प्रकार स्पष्ट न हो,कि व्याख्याता जो शब्द लिखता है,अर्थात् वकायजा काटने वाले या छीलने वाले, इसके क्या अर्थ

हैं। सम्भव है यह शब्द (घक्कायता) हो, जिस के अर्थ मांस बेचने वाले या कसाइयों के हैं। कुछ ही हो, इससे यह बात साबित होती है कि गो मांस के लोथड़ों से प्राचीन हिन्दु घृणा न करते थे।"

भाष्यकार ने इस स्थान पर जितना ज़हर उगला है और जितना झूठ कहा है, वह लेख तथा कथन से बाहिर है। इसी प्रकार बुद्धि से हीन मिरज़ा साहिब ने उसका अनुकरण किया, अपनी बुद्धि को तनिक भी दख़ल न दिया कि यह बात कितनी बनावटी है, तथा असत्य। अस्तु, सत्या सत्य की जांच के लिये हम वेद का असल मन्त्र ठीक २ अनुवाद सहित लिखते हैं, ताकि वादी की अन्य अशुद्धियां की भी इसी से वास्तविकता प्रगट होजावे और उनके धोखे में आगे कोई न आवे।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।

ऋचीषमायाधिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा॥

ऋ० मं० १ सू० ६१॥

इस ६१ सूक्त के कुल १६ मन्त्र हैं। यह सारा सूक्त राज्य धर्म्म और शस्त्र विद्या के विषय में है। यह बारहवां मन्त्र भी सभापति के सम्बन्ध में है। हे सभाध्यक्ष! कितने गुणों को धारण करने वाले, ऐश्वर्य्य युक्त शीघ्र करने हारे आप जैसे सूर्य्य जलों के सम्बन्ध से जलां के प्रवाहों को बहाने के अर्थ बादल के लिये वरतता है, वैसे इस शत्रु के लिये ठहरी गतिवाले शस्त्र को अच्छे प्रकार धारण कर।

वाणियों के विभाग की तरह इसके भाग पृथक २ करने की इच्छा करता हुआ, ऐसे ही अनेक प्रकार हनन कीजिये।

व्याख्या—इस मन्त्र में परमेश्वर ने सभाध्यक्ष के लिये उत्तम शिक्षाओं से युक्त उपदेश किया है।

(१) सभाध्यक्ष गुणवान् ऐश्वर्य्य वाला और तेजस्वी हो। (२) शस्त्रविद्या में भी भलि प्रकार निपुण हो और प्रयोग अवसर को ठीक २ जानता हो। (३) ऊंचनीच जो अनेक प्रकार के राज्यकार्य्यों में होते हैं, उनको जानना भी सभाध्यक्ष का प्रथम कर्तव्य है। (४) अन्याइयों को उनके कुकर्मों का शीघ्र दंड देना, प्रमाद न करना और शान्ति के स्थापन करने पर तत्पर रहना, जो साम्राज्य का असली उद्देश्य है। (५) जैसे सूर्य्य की किरणें जल के सम्बन्ध से वर्षा के परवाह के चलाने के लिये बादल से वरतती हैं। (६) जैसे वाणियों के विभाग को अन्याभ्य स्थानों में उसके छिन्न भिन्न करने की इच्छा करते हैं। (७) वैसे ही शत्रुओं के मुकाबले में सुशिक्षित सेना को उत्तम शस्त्रों युक्त करके यात्रा तथा क्षेत्र के ऊंच नीच को जान कर सफलता प्राप्त करे।

(भावार्थ) हे सभापति! जैसे विद्या सम्बन्धी विषय प्राणवायु से तालु आदि स्थानों में जिह्वा को ताड़न कर भिन्न २ अक्षर या पदों के विभाग करते हो वैसे शत्रुओं के बलको अपनी सेना के नियम बद्ध युद्ध से छिन्न भिन्न करो।

(टिप्पणी) जब कि विलसन साहिब के कथनानुसार वेद में केवल यही इबारत है, " वरित्रा के अङ्ग गौकी तरह पृथक २ कर डालो। " वरित्रा मेघ को कहते हैं और गोनाम बाणोंका है, अर्थात् मेघ के अङ्ग को बाणो की तरह पृथक २ कर डालो। शोक! कि लोग बिना किसी प्रकार की योग्यता के बड़ी २ प्रतिज्ञायें करने पर उद्यत होजाते हैं। भाष्यकार लिखता है 'वकायता" काटने वाले को कहते हैं। हम जहां तक वेद को इस श्रुति के अक्षर २ पर दृष्टि पात करते हैं, "वकायता" शब्द बिलकुल नहीं मिलता, जिस से विलसन साहिब और सायण, क़साई तथा मांस काटने वाले के अर्थ निकालते हैं। हमारे इलहामी मित्र भीतरी द्वेष और आत्मिक मैलके कारण बूचड के अर्थ लगाते हैं। जब यह शब्द ही इस मन्त्र में नहीं है, तो आक्षेप भी सर्वथा असत्य और निर्मूल होगया। हम यहां पर विलसन साहिब और मिरज़ा साहिब या किसी और उनके हितैषी, यहां तककि इलहाम लाने वाले को चैलेञ्ज करते हैं, कि वह यातो वेद की इस श्रुति से जो हमने ऊपर लिखी हैं, "वकायता" शब्द निकालकर बतलावे और कसाई या बूचड बनने को प्रमाणित करादें, अन्यथा इस रक्त पात और दुराचार का इलाज करके इसका निषेध प्रकाशित करें और भविष्य में ऐसे बाज़ारू आदमियां जैसे कथनों से बाज़ आयें। हम पुनः इस बात को दुहराते है, और पाठकों को बताते हैं कि इसका प्रमाण तथा उत्तर कोई भी किसी प्रकार महा प्रलय तक नहीं दे सकेगा, क्यों कि अभाव से भाव किसी प्रकार नहीं होसकता? इसी प्रकार जो वेदोंमें नहीं है उसका निकालना भी कठिन अपितु असम्भव है मिरज़ा साहिब की सारी अशुद्ध प्रतिज्ञाओं और उर्दू अनुवाद के विषय में हमारी ओर से यह अकाट्य उत्तर है, जो उनको ऐसे ही सारी बकवास के आशय के सत्यानाश करने के लिये " हिलमनमुआरज़ " का निवेदन है।

बुराहीन उल अहमदिया पृष्ठ ४०३ माज़ीन सं ०३

वादी—एक जगह भी मुंह खोलकर वेदने बयान नहीं किया कि मख़लूक़ प्रस्ती से बाज़ आजाओ, आग वगैरह को पूजा मत करो बजुज़ ख़ुदा के और किसी से मुरादें मत मांगो।

सिद्धान्ती— "यदि चिमगादड़ की आंख दिन के समय न देखे तो सूर्य्य का क्या दोष"। मिरज़ा साहिब आइये और इन पवित्र श्रुतियां को आंखें खोल कर पढ़िये। वेद भगवान् मूर्त्तिपूजा का बल पूर्वक खडन कर रहे हैं।

(१) यह मन्त्र ऋग्वेद का है:—

न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।

ऋग०मं० ७ सू० ३२ म २३।

हे सर्व ऐश्वर्य्य के स्वामी ! सब के जीवन मूल परमात्मा ! आप जैसा द्यौ लोक अथवा पृथ्वीमें (तीनों कालों में) न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा और न है। आप सब वस्तुओं की मिलावटसे पवित्र हो. हम घोड़े आदि शोभा तथायश की सामग्री बलके बढ़ाने वाले आत्मिक और शारीरिक कल्याण और आवश्यकताओं की इच्छा रखने वाले आपही की शरण में आते हैं। आपसे भिन्न हमारा स्वामी कोई नहीं है।

(२) यह ऋग्वेद का मन्त्र है:—

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ऋग० अ० ८ सू० १२१ मं० १

(अर्थ)जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही आत्मा का विज्ञान देने वाला है, जो सब विद्या और सब सुखों की प्राप्ति का हेतु है, जिसकी उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं और जिसके अनुशासन को सब उत्तम लोग करते हैं, जिसका आसरा करना ही मोक्ष सुख का कारण है और जिसको भूलना ही जन्म मरण रूप दुख का कारण है, जिसकी आज्ञा का पालन ही सब सुखों का मूल है, जो सब संसार का पति है, उसी परमेश्वर की हम उपासना करें।

(३) यह यजुर्वेद का मन्त्र है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो यउसंभूत्यांरताः ॥ यजु० अ० ४ मंत्र ६

जो प्रकृति की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। जो सम्भूति अर्थात् पृथ्वी आदि लोकों, पाषाण और वृक्ष तथा मनुष्य आदि के शरीरों की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे इस अन्धकार से भी अधिक दुःख में पड़ते हैं।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ॥ कठ० अ० २ व० ६ श्लोक ३

(अर्थ) परमात्मा के तेज से ही सूर्य्य चमकता है और उसी की शक्ति से अग्नि जलाती है। उसी की कृपा से वायु चलती है और उसी की कृपा से वृष्टि विद्युत आदि अपने २ काम करते हैं। मृत्यु और काल उसके पूर्ण ज्ञान और आज्ञा से सारे जगत के नाश में लगे हुए हैं।

(५) यह भी यजुर्वेद का मन्त्र है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ यजु० अ० ४० मंत्र ५

(अर्थ) परमेश्वर सब जगत को यथा योग्य अपनी २ चाल पर चला रहा है, पर आप नहीं चलता। एक रस सर्वव्यापक है, अधर्म से

बहुत दूर और धर्म्म से बहुत ही निकट है, (अर्थात् अधर्म से उसका जानना असम्भव और धर्म से उसकी प्राप्ति सुगम है) वह सबका अन्तर्यामी अर्थात् भीतर और बाहिर का जानने वाला है, उसी के जानने से कल्याण होता है, न किसी और से इत्यादि। सैंकड़ों मन्त्र वेदों में परमात्मा की एकता के मौजूद हैं।

अब मिरज़ा साहिब स्वयं ही न्याय करें, कि वेदों ने पृथ्वी पूजा से कितना मना किया है। सब वेदों में अद्वितीय परमेश्वर के बिना किसी नाशवान् वस्तु की उपासना या पूजा की आज्ञा नहीं है, और न कोई आर्य्य किसी प्रकार की मूर्ति पूजा करता है।

बुराहीन उल अहमदिया पृ० ४०७ से ४२४ तक हाशिया का हा०

वादी ने ८ पृष्ठों के हाशिया सं० ३ में उसी अशुद्ध देहली वाले उर्दू अनुवाद से (जिसका हम पूर्ण वृत्तान्त पहिले वर्णन कर चुके हैं,)अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र, मित्र, वरुण, इन्द्र आदि को आर्य्यों का परमेश्वर जान कर या देवता मान कर आक्षेप किये हैं, कि यह मूर्त्ति पूजा है। इतनी श्रुतियां से जिनका बड़ा संग्रह यहां उद्धृत कर, कई पृष्ठ हमने काले किये हैं, क्या कुछ ईश्वर का भी पता मिलता है ?

उत्तर—वादी ने अपनी सारी पुस्तक में प्रत्येक स्थान पर बिना हेतु बकवाद किया है। और कहीं भी ठीक प्रमाण व पता नहीं बतलाया। उसको उचित था कि पहिले वेद मन्त्र लिखता, पश्चात् उसका अनुवाद करता और पूरा प्रमाण देता, ताकि उसको वाक्चातुर्य की असलियत मालूम होती। यदि यह योग्यता नहीं थी और न है, तो निरर्थक लेखनी घसाई। पर विचार किया होगा, कि इन दिनों जो वैदिक धर्म्म देदीप्यमान होकर सारे संसार पर प्रकाश फैला रहा है, और हर स्थान पर आर्य्यसमाजें बनती जाती हैं, जहां पर मुसलमान (निन्दक कब तक प्रशंसित रह सकते हैं) पीठ दिखा २ शास्त्रार्थ से भाग रहे हैं। मिरज़ा साहब ने ऐसे समय में बाधक होकर आवश्यक जाना और तृष्णा ने भी आवश्यकता का मुख दिखाना आरम्भ किया। ऐसे अवसर पर कुरानी खुदा को अपने तलवारी दीन के बचाने को फ़रिश्तों से सलाह करनी पड़ी। इसी अवस्था में मिरज़ा ने सोचा कि हम भी कुछ हाथ पांव हिलावें, और व्यर्थ गप्पों तथा प्रमाण शून्य चमत्कारों का घर बैठे ढंडोरा पिटवावें, ताकि—

मशहूर होवें यारों में, हम भी हैं पांच सवारों में।

हमारा नाम भी मुहम्मदियों में इमाम मुनाज़रा, मुजद्दद वक्त, मुलहिम कलाम रब्बानी, मसीह सानी रटा जावे और बैठे बिठाये ऐसे दाव पेंच में अक़ल के अंधों और गज़ंमन्दों से, कुछ रुपया भी हाथ में आवे। जैसा कि कहा है:—

चि खुश बुवद कि बरायद बयक करिश्मा दोकार।
यके हिमायते कौमो दिगर हसूले मुआश॥

(एक पन्थ दो काज) वेद में किसी मूर्ति व सम्भूति की पूजा सर्वथा नहीं है और न किसी मनुष्य कृत या बनावटी वस्तु की पूजा लिखी है, किंतु स्पष्टतया युक्त रीति से इनकी पूजा का बलपूर्वक बहिष्कार किया है। पर क्या किया जाये। आंख वाले को आदमी दिखला सकता है, और कान वाले को सुना सकता है, जिसके दोनों नहीं वह लाचार है।

तुवानमआं कि नियाज़ारम अन्दरूने कसे।
हसूद रा चिकुनम को ज़े ख़ुद वरंज दरस्त॥

बमीर ता विरही ऐ हसूद कीं रंजेस्त।
कि अज़ मुशक्कते आंजुज़ बमर्ग नतुवां रस्त॥

(मैं यह कर सकता हूं कि किसी का हृदय न दुखाऊं, पर द्वेषी को क्या करूं, वह आपही दुःख में है। ऐ द्वेषी मरजा, ताकि तू छूट जावे, क्योंकि यह ऐसा दुःख है, जिसके कष्ट से मृत्यु के बिना छुटकारा नहीं)

भाइयो! बाहरी दो आंख और दो कान वाले तो किरोड़ों आदमी मौजूद हैं, पर इनमें बहुत से ऐसे हैं जिनको आंखें पक्षपात ने अंधी करदी और जिनके कान हठधर्मी की गरमी से बहरे हो गये हैं। उनके लिये हमारे पास कोई इलाज नहीं। वही हाल मिरज़ा साहिब का है। संस्कृत विद्या क्या, उसके अक्षर ज्ञान से भी कोरे हैं, वेद भगवान को आज तक परमेश्वर जानता है, शक्ल भी नहीं देखी। आर्य्यसमाज को पुस्तकें देखने से पक्षपात के कारण घृणा है। किसी आर्य्य से भेंट करने और उसका उपदेश सुनने से वह सर्वथा शून्य है। अतः ऐसी अवस्था में प्रत्येक बुद्धिमान जान सकता है कि इनके कपोल कल्पित आक्षेप विश्वास के पद से कितने गिरे हुए होते हैं।

यदि वह किसी जानकार सभासद् आर्य्यसमाज से एक घण्टा भी बात चीत करते, तो उनके सब झूठे भ्रम और निरर्थक कल्पनायें तत्काल दूर हो जाती। यह भी उन्होंने नहीं किया, इसलिये संस्कृत और वेद पुस्तक से शून्य रहने के कारण मिरज़ा साहिब अन्धे हैं। किसी आर्य्य के उपदेश न सुनने व विवरण न ज्ञात होने से मिरज़ा साहिब बहरे हैं। वरना ऐसे शुद्ध और पवित्र धर्म्म तथा सिद्धांतों के विषय में ऐसे संदिग्ध और अपवित्र भाव मन से न निकालते। श्रीमान् मिरज़ा साहिब! वेद में अग्नि, वायु, जल और मिट्टी खानिज पदार्थ आदि से उपकार लेना तो अवश्य लिखा है, जिससे मानवीय आवश्यकताओं का दूर करना, कला कौशल तथा शिल्प सम्बन्धि आविष्कारों को कर दिखाना अभिप्रेत है, पर इन अनित्य और जड़ वस्तुओं को परमेश्वर मानने की कहीं भी आज्ञा नहीं है। सूर्य्य, चन्द्र अग्नि, जल, पृथ्वी, मित्र, इन्द्र 'वसु' अश्विनी आदि जिनको वेद ने सहस्रों स्थान पर अनित्य बताया है उन पर वादी भी मूर्ख मुसलमानों की न्याई आक्षेप कर गर्व करता है, परन्तु जिसका हिसाब साफ़ है उसे हिसाब लेने वाले से क्या डर।

हमको आपके आक्षेपों से किसी प्रकार का डर नहीं है। यदि डर है, तो तलवार के दीनदारों को, जिन के कुरान में ज्यों के त्यों यह आक्षेप मौजूद हैं। जिन को हम आगे इसी पुस्तक में विस्तार से लिखेंगे और अपनी प्रतिज्ञाओं का प्रमाण कुरानी आयतों से देंगे। आप को न्याई शब्दों को दोहराना हमारा काम नहीं, न कल्पित तथा अप्रामाणिक बातों पर हठ और दुराग्रह। जिस बात का वेद विरोधी है, आप उस बात को उस से साक्षी दिलाते हैं और प्रमाण के लिये केवल मौखिक हदीसों से काम चलाते हैं।

अगर कोशिशकुनीतो हशर ऐ जां । नयाबी ज़ीं सखुन हरगिज़ निशाने ॥

(यदि कयामत तक तू यत्न करे तो प्यारे इस बात का कदापि लेश मात्र न पायेगा) हां, कई अवसरों पर अग्नि आदि नाम परमेश्वर के भी है, जिस की व्याख्या वदिक कोष में विस्तार पूर्वक मौजूद है, बल्कि स्वयं वेद में इस का निर्णय किया गया है, ताकि मूर्ति, सूर्य्य, अथवा अग्नि पूजा आदि को ओर मनुष्यों की रुचि न हो और सच्चिदानन्द के अतिरिक्त किसी को अपना उपास्य न जानें, जिससे प्रत्येक सत्याभिलाषी के लिये निश्चय होजावे और किसी प्रकार की शंका न आने पावे।

विशेषतया श्रीमान् स्वामी जी महाराजने इन बातों को इतनी उत्तम रीति से छानबीन करदी है कि अब साधारण संस्कृतज्ञ भी न्याय रूप से देखने पर तसल्ली पासक्ता है। अतः इन भ्रान्तियों को दूर करने के लिये स्वामी जी ने एक पुस्तक "भ्रान्तिनिवारण" नाम बनाया है, जिस में भूले भटके जगत को सन्मार्ग दिखाया है। प्रमाण रूप से कुछ मंत्र यहां भी प्रस्तुत करता हूं, ताकि सत्यासत्य का पूर्ण प्रकाश हो।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋ० म० १। अ० २२। सू० १६४। मं० ४६॥

यह ऋग्वेद का मन्त्र है, "जो एक अद्वितीय,सत्य ब्रह्म है, उसी के इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गुरुत्मान्, मातरिश्वा, यम, नाम भी हैं।

मनुजी भी अध्याय १२ के श्लोक १२३ में कहते हैं।

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेकेपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्॥ मनु० अ० १२ श्लोक १२३॥

मनु० अ० १२ श्लोक १२३

"जो सब का परमात्मा है, उसी के अग्नि, मनु, इन्द्र, प्राण, प्रजापति, ब्रह्म भी नाम हैं"

और इसी प्रकार यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद से भी प्रगट होता है कि अग्नि आदि नाम कई स्थानों पर ईश्वर के भी हैं, पर यह भौतिक अग्नि और सूर्य्य आदि ईश्वर नहीं है, किन्तु उसकी रचना हैं।

अग्नि शब्द जो ऋग्वेद में बहुत से स्थानों पर आया है, उससे अल्प बुद्धि तथा अल्प विद्या वालोंको भ्रम होता है। प्रथम तो स्वयं इन लोगोंको इतनी बुद्धि कहां, कि इस शब्द के वास्तविक अर्थों को पूरा २ मालूम कर सकें। यद्यपि ऋग्वेद के मन्त्र और मनुस्मृति के कथन से भी सिद्ध किया गया है, कि अग्नि आदि परमेश्वर के नाम हैं, जिस मे पूर्ण विश्वास है कि किसी सत्यप्रिय को संदेह नहीं है, पर वह लोग कि जिनके ज्ञान नेत्र को वर्तमानकाल के विद्यारूपी सूर्य्य ने ऐसा धुंधला कर दिया है कि अज्ञानता के अंधेरे कोने को अपना निवास स्थान समझते हैं, उन्हें सत्य के ग्रहण करने में लज्जा मालूम होती है। यदि कभी ज्यों त्यों कर सिर उठाते हैं, तो पक्षपात का आवरण सत्य प्रियता के मुखड़े पर डाल लेते हैं। फिर कहिये! कि वह तत्त्व जो न्याय के तीव्र प्रकाश में सत्यग्राही बुद्धि के सच्चे दर्पण से दीख सकता है, वह इनके हृदय या आंखों में कैसे चमके। हम पाठकों की सेवा में अग्नि शब्द के अर्थ उपस्थित करके नम्र निवेदन करते हैं, कि न्याय की डोर को हाथ से न छोड़ें, और शुभ परिणाम निकालें।

अञ्चु गति पूजनयोः अञ्च्यते प्राप्यते सत्क्रियते वा वेदादिभिः सत्यशास्त्रै र्विद्वद्भिरसावग्निः॥

इस धातु से अग्नि शब्द निकलता है, और वेदादि सत्य शास्त्रों के अनुसार विद्वान लोग जिसका सत्कार करते हैं, जो ज्ञान स्वरूप और सर्वव्यापक हैं, वह अग्नि है। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण के निम्न वाक्यों से यह बात और भी अधिक स्पष्ट होजाती है, कि अग्नि का अर्थ ईश्वर करना किसी प्रकार की खेंचा तानी नहीं, बल्कि यथार्थ है। पिछले सारे ऋषियों ने ऐसा ही माना है, और वेदादि सत्य शास्त्रों में ऐसा ही आदेश है। जो सर्वथा सत्य, यथार्थ, व्याकरण और कोष के अनुसार तथा सर्व प्रकार से युक्त है, उसको अधिक स्पष्ट करने के लिये अगली वाक्यों को उद्धृत करते हैं।

ब्रह्माग्निः॥ श० १-४-२-११

आत्मा वा अग्नि॥ १-२-३-२

अयं वा अग्नि प्रजाश्च प्रजापतिः॥ श०

निश्चय ब्रह्म, आत्मा, प्रजापति और अग्नि शब्द के अर्थ तथा तात्पर्य में प्रविष्ट हैं। सारांश यह कि उपरोक्त उत्तरा से यह बात भली भान्ति सिद्ध है, कि अग्नि शब्द यौगिक है। उसके बहुत से अर्थों में ईश्वर, आत्मा, प्रजापति के अतिरिक्त भौतिक अग्नि है। यदि इस प्रकार के प्रमाण मौजूद न होते और वेदमें स्वयं ही इसका पूरा निर्णय न होता, श्रुतियां न मिलतीं और इसके उपरांत केवल अर्थ विद्या को सन्मुख रख कर, अग्नि शब्द का तात्पर्य परमात्मा वर्णन किया जाता है तो निस्सन्देह कोई बुद्धिमान शंका न करता। साधारण तया ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक

व्यक्ति अपने ज्ञान के नपेने में दूसरों को विवेचना को नापता है और पाशविक वृत्तियों के प्रधानत्व से यही चाहता कि मेरा ही पलड़ा भारी रहे। ऐसे महात्मा बहुत थोड़े होते हैं कि पाविक वृत्ति को दमन करें प्रत्येक बात को यथार्थ रूप से न्याय की कसौटी पर जांचने और सत्य सिद्ध होने पर (चाहे उसके पहिले विचार से वह कितनी ही सर्वथा विपरीत हो) प्रसन्नता से मान लेते हैं। मिरज़ा जी सूर्य्य मिट्टी उड़ाने से नहीं छिपता, और चन्द्रमा अंधियारी रात्री में भी चमकता है। इसी प्रकार व्याख्या विस्तार अथवा आक्षेप से वास्तविक अर्थ छिप नहीं सक्ते। यतः बुरे आदमी का खरा सोना कसौटी पर अधिक विश्वस्त होजाता है। इसी लिये अग्नि आदि शब्दों के विषय में हम ऊपर व्याख्या कर आये हैं। ईश्वर के बहुत से नामों में अनुमान एकसौ का स्पष्ट रूप से अर्थ सत्यार्थप्रकाश में मौजूद है, जो व्याकरण के सर्वथा अनुकूल संस्कृत और भाषा दोनों में लिखा है, जिससे किसी बुद्धिमान को तनिक भी शंका नहीं हो सकती। इन उपरोक्त मन्त्रों के अर्थ देखने से प्रत्येक सत्याभिलाषी सत्य को जान सकता है। यदि अग्नि पूजा हवन यज्ञ का करना है, तो यह केवल न्याय, विद्वत्ता, और तर्क के गले पर छुरी धरना है। पुराने नबियों का अग्नि को जला कर वर्षा कराना, कुर्बानी का जलाना और खुदाका प्रसन्न हो जाना। (जो तौरेत और नबियां को पुस्तकों में लिखा है) बुराक पर चढ़ कर अस्मानों की सैर को जाना, पापियों, घातकों, लुटेरों, डाकुओं का केवल शफ़ाअत से बख़्शा जाना (जो कुरान, तफ़सीरों और हदीसों में हैं) तो मिरज़ा साहिब अवश्य मानते हैं और उनका विश्वास मुक्ति का कारण जानते हैं। हवन से वर्षा और स्वास्थ्य का होना अप्रोक्ष है और इसको भ्रान्तिसे असत्य तथा जड़ पूजा, समझा है। इस पक्षपात और सत्य को छुपाने का बड़ा भारी कारण यह है कि वह बातें कई पुश्तों से मानते चले आते हैं और विशेष कर कुरान में हैं। अतः इनकार करने से जगत के पालम्वों का डर है। अस्तु कुछ हो, हम इस विषयमें थोड़ासा लिखना उचित जानते हैं। यदि मिरज़ा साहिब हमारे इस विवरण को मुहम्मदी फ़िलासफ़ी से रद्द करदेवें, तो उस समय हमें और हेतु देने की आवश्यकता पड़ेगी। ईश्वर ने चाहा, तो इसी से दूध का दूध और पानी का पानी पृथक हो जावेगा और अधिक परीक्षा की आवश्यकता न रहेगी।

इस लेख के आरम्भ करने से पहिले यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वर्षा केवल ईश्वर इच्छा पर निर्भर है या उसके साधन भी ईश्वर ने बना छोड़े हैं।

जिन दार्शनिकों और चिकित्सकों को वर्षा विज्ञान से जानकारी है उन्हीं की इस में साक्षी है कि वर्षा के होने को यही उचित रीति नियत है कि भूमि से वाष्प ऊपर चढ़ कर वर्षा के रूप में बरसते हैं। अतः इसके प्रमाण के लिये अनेक दार्शनिकों ने वर्षा को परीक्षा भी करवादी। यहां तक कि एक विद्वान् दार्शनिक ने विज्ञापन भी देदिया था कि जिस किसी को वर्षा देखने की इच्छा हो, मैं वर्षा करके दिखला सकता हूं। अतः इस सारे लेख का तात्पर्य्य यह है कि

जिस प्रकार कुनीन द्वारा ज्वर शान्त होता है, जलाने से लकड़ी राख हो जाती है और खाने से शरीर को पुष्टि मिलती है, उसी प्रकार यदि नियमानुसार बाष्प ऊपर चढ़ाये जावें तो वर्षा हो सकती है। यह तो स्पष्ट मूर्खता है कि केवल ईश्वर की इच्छा से नियत नियमों के बिना वर्षा हो जावे। जब वर्षा का एक विशेष नियम है, तो अब हमको विचार करना चाहिये कि कौन सा नियम वर्षा का उत्तम है। अतः मुहम्मदी लोग भी प्रत्येक कार्य्य ईश्वर इच्छा पर नहीं छोड़ते, रोटी के लिये तो परिश्रम करते हैं, रोग में औषधी भी खाते हैं और काम इच्छा के लिये विवाहों को भरमार करते हैं, अर्थात किसी विषय में केवल ईश्वर की आशा पर बैठ नहीं रहते, ऐसा ही हमको वर्षा पर विचार करना चाहिये। हां यह बात तो बहुत उचित है कि प्रत्येक कार्य के साथ परमेश्वर की सहायता का इच्छुक होना, परन्तु कर्म्महीन होकर केवल ईश्वर के भरोसे पर पड़ा रहना किसी नियम के अनुसार उचित नहीं है। अब हमको वर्षा के नियम पर विचार करना चाहिये।

(१) मुहम्मदियों और ईसाइयों की पुस्तक के अनुसार वर्षा के लिये यह नियम नियत किये गये हैं कि मसजिदों या गिरजा में एकत्रित होकर खुदा के आगे प्रार्थना करना।

(२) आर्य्य धर्म के अनुसार हवन यज्ञ के द्वारा ईश्वर से प्रार्थना करनी कि आप दयामय हैं, दयालुता से वर्षा कीजिये।

अब विचारना चाहिये, कि वर्षा के लिये इनमें से कौनसा नियम उत्तम है। मुहम्मदियों का या ईसाइयों का या आर्यों का।

प्रथम सोचना चाहिये, कि यह नियम हाथ से काम करना और मन से ईश्वर को सहायक जान कमाई की इच्छा करना अच्छा है या यह नियम कि हाथ बांध कर बैठे रहना और ईश्वर से कमाई मांगना। पूर्ण विश्वास है, कि अन्तिम नियम को कोई बुद्धिमान स्वीकार न करेगा, और इसे हर प्रकार कष्ट देने वाला और मूर्खता जानेगा। इसलिये पहिले नियम की व्यवस्था हवन के द्वारा ईश्वरके सन्मुख प्रार्थना करने को ठीक है। कारण कि हवन सृष्टि नियम के अनुसार वर्षा, शारीरिक स्वास्थ्य और वायु शुद्धि का विशेष साधन है। हवन की यह विधि है, कि घृत और सुगन्धित तथा पुष्टि कारक वस्तुओं को वेद मन्त्रों से अग्नि में विधि पूर्वक आहुति देना। पृथ्वी से जल के परमाणु दो प्रकार से मेघ मंडल में चढ़ सकते हैं।

(१) सूर्य की उष्णता से (२) अग्नि की गरमी से। अतः जिस समय अग्नि जला कर हवन किया जाता है, तो उसकी गरमी से घृत आदि सुगन्धित और पौष्टिक वस्तुओं के परमाणु ऊपर को चढ़ते हैं। यह बात भी साधारणतया मान्य है, कि कई वस्तुओं को सूर्य की गरमी आवश्यकतानुसार ऊपर नहीं उठा सकती, इस लिये हवन के द्वारा चढ़ाई जाती हैं। यह जो घृत हवन में डाला जाता है, इससे यह लाभ है कि वर्षा को बड़ी सहायता प्राप्त होती है। जब

के जो प्रमाणु सूर्य्य की गरमी से ऊपर चढ़ते हैं, उनको जमाने के लिये घृत के प्रमाणु जाग का काम देते हैं। जैसा कि हज़ार मन दूध में एक पाव दही डालने से सारे को दही बना देता है, वैसे ही जिस समय घृत के प्रमाणु जल के प्रमाणुओं से मिलते हैं, उनको जमा देते हैं। वही प्रमाणु तुरन्त वर्षा का कारण बन जाते हैं। घृत का यह गुण है कि वह सूर्य्य की गरमी से ऊपर नहीं चढ़ सकता। विचार करो कि प्रत्येक वस्तु को सूर्य की गरमी सुखा देती है, पर घृत हज़ार वर्ष पड़ा रहे, तो भी वैसे का वैसा बना रहता है, कदापि सूखता नहीं। इसको अग्नि द्वारा ऊपर चढ़ाया जाता है, जिससे वर्षा में सहायक हो, और साथ ही जो पौष्टिक और सुगन्धित पदार्थ डाले जाते हैं; उनका भी यही लाभ है कि जल स्वच्छ और शीघ्र जम कर गिरे। क्यों कि जिस समय जल के वाष्प सूक्ष्म होते हैं, उस समय मिले हुए नहीं होते, परन्तु जब वह स्थूल होजाते हैं, तो शीघ्र जम कर वर्षा करते हैं। अब वादी कहेंगे कि जिस स्थान पर हवन न होगा, वहां वर्षा न होगी। यह विचार उनका सत्य नहीं, क्यों कि वर्षा का उप करण केवल हवन ही नहीं है, प्रत्युत और भी कई हैं। जैसे वृक्ष वर्षा का उत्तम साधन हैं और यह भी स्मरण रखना चाहिये, कि सूर्य की गरमी से जो जल के प्रमाणु ऊपर चढ़ते हैं वह केवल जल के नहीं होते, किन्तु उनके साथ सूक्ष्म प्रमाणु पौष्टिक तथा सुगन्धित पदार्थों के भी चढ़जाते हैं। इस लिये यह क्रम निरन्तर जारी रहता है। यह व्यवहार बुद्धिमत्ता का और युक्तियुक्त है, यथा कल्पना करो कि जंगल में कुदरती मेवे सहस्रों प्रकार के उत्पन्न होते हैं, तो क्या वृक्ष लगाने की कुछ आवश्यकता नहीं है? कोई बुद्धिमान इस बात को पसन्द न करेगा। अतः उद्यान आदि लगा कर उत्तम रीति से बहुत से फल उत्पन्न करना ईश्वरीय दान को नियम पूर्वक वरतना है। इसी प्रकार यद्यपि कुदरती तरीका भी वर्षा की ही, तो भी मनुष्य इसमें कई प्रकार के कार्यों से अपने प्रयत्न का लाभ उठा सकते हैं। यदि हम विशेष विधि वर्षा होने को लक्ष्य में रख कर उसके साथ ईश्वरीय सहायता की कामना करते हैं, तो वह इस निकम्मी, भद्दी और अनुचित रीतिसे सहस्रगुणा उत्तम है। अब यदि मुहम्मदियों का वर्षा के लिये नियम देखोगे, तो हर प्रकार से निकम्मा और बोदा है, अर्थात् मसजिद में जाकर कुछ बाणी से कहना वर्षा को क्या सहायता देता है, किन्तु आलस्य और उत्साह हीनता का प्रमाण है और यही दशा ईसाइयों की है।

बड़ा शोक है, कि जिस प्रकार और कामों में मुहम्मदी लोग पक्षपात कुतर्क तथा बलात को उत्तम साधन समझते हैं, इस वर्षा के लिये भी वही नीति प्रयुक्त करते हैं और विद्या तथा बुद्धि को काम में नहीं लाते। यद्यपि बहुत से कामों में मुहम्मदी लोग पुरुषार्थ को भी काम में लाते हैं पर वर्षा को केवल दम्भसे चाहतेहैं। क्या (मआज़ अल्ला) वह मूर्ख हैं, जो तुम्हारे धोखेमें आजावेगा? यदि वर्षा तथा आरोग्यता के अभिलाषी हो तो उस नियत विधि हवन रीति को काम में लाओ। भाइयो! क्या कभी काम करने के बिना भी फल मिल सका

है। आप ईश्वर की आज्ञा पालोगे तो वह न्यायकारी अपनी शक्ति से प्रत्येक वस्तु को देसक्ता है। महात्मा कृष्ण जी का वचन है कि:—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म-समुद्भव ॥ कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ श्रीभगवद्गीता।

(अर्थ भोग से शरीर बनता है और खाद्य पदार्थ वर्षासे होते हैं। हवन से वर्षा होती है और आहुति आदि कर्म्म से हवन होता है। वेद मन्त्रों से आहुति आदि कर्म्म उत्पन्न होता है और वेदमन्त्र ब्रह्म परमात्मा से प्रकाशित होते हैं। इसलिये सबका स्वामी ब्रह्म है और उसकी आज्ञा पालन करने का नाम हवन है। ईश्वर को अपना स्वामी, हवन को उसकी आज्ञा और जगतोपकार का कारण जान कर नित्य यज्ञ करना चाहिये।" इन उपरोक्त प्रमाणों से प्रत्येक बुद्धिमान जान सकता है कि जिस प्रकार कोनीन खाना, कोनीन पूजा नहीं, इसी प्रकार अग्नि से रोटी पकाना और उसमें उत्तम सुगन्धित वस्तुओं का जलाना अग्नि पूजा नहीं किन्तु स्वास्थ्य का कारण, वायु शुद्धि का हेतु और वर्षा आदि सैकड़ों अनेक सुखदायक बातों का साधन है। अतः कोई वेदानुयायी, अग्निपूजक व मूर्तिपूजक नहीं हैं, किंतु ईश्वर भक्त और ब्रह्म के उपासक हैं। मुझको बुराहीनुल अहमदिया के लेखक के ऐसे विचारों पर कि जिनका अनुमोदन किसी दर्शन से नहीं हो सकता, अत्यन्त आश्चर्य तथा शोक होता है, कि वह क्यों इस दुखदाई भंवर से छुटकारे का यत्न नहीं करते, किंतु हिलमनमज़ीद का दम भरते हैं। हजरउल अस्वद की पूजा, मक्के को यात्रा वा तीर्थपूजन से पापों का दूर होना और कावे को ईश्वर का घर समझना, तथा उसके हज से परलोक का सुधार और अनन्त भलाई मानना, यह दोनो विशेष कर ऐसे विषय हैं, जिनके मानने से बुद्धि तथा विद्या दोनों दूर हो जाते हैं। एक विद्वान ने कहा है दिलबदस्त आवरकि हज्जे अकबर अस्त। अज़ हज़ारां कावा यकदिल बेहतर अस्त॥ काबा बुन गाहे खलीले आज़रस्त। दिल गुज़र गाहे जलीले अकबरस्त ॥

(मन को वश में करो यही बड़ा हज है। हज़ारों कावों से एक मन अच्छा। कावा, हज़रत इबराहीम का जन्म स्थान है और दिल तथा मन उस महान तथा शक्तिशाली ज्योति स्वरूप परमात्मा का निवास स्थान।)

किन्तु मैं विचार करता हूं, कि जब मिरज़ा साहिब के ऐसे कच्चे विचार हैं, तो उनको आर्य्य लोगों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का शब्द भी वाणी से न निकालना चाहिये। कारण कि बुद्धिमानों का कथन है कि, 'अपने सिर पर सौ मन बोझ न देखना और दूसरों के बाल भर बोझ को भी भारी समझना।"

तो बर औजे फलक चिदानी चीस्त।
चूं न दानी कि दर सराये तो कीस्त ॥

(तू क्या जानता है कि आसमान के शिखर पर क्या है, जब तुझे यह भी ज्ञात नहीं कि तेरे घर में कौन है ?)

मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि आर्य्य लोग कभी किसी अयुक्त बात को पसन्द न करेंगे, चाहे आप लोग अपने पक्षपात के कारण इसे जान से प्रिय और माननीय समझें।

यदि वेद में सम्भूति अथवा मूर्ति पूजा होती, तो सैकड़ों पंडित, जिनका स्वामी जी से मुकाबला हुआ, कोई श्रुति उपस्थित करते, वा आज कल अपने पक्ष का प्रमाण देते और दिन प्रति दिन आर्य्यसमाजों में प्रविष्ट न होते। इसके उपरान्त प्रकट हो कि एक सेठ साहिब बम्बई निवासी ने ६ वर्ष से एक विज्ञापन दिया हुआ है, कि जो पंडित साहिब आर्य्यों के मुकाबले पर वेद से मूर्ति, सम्भूति व मनुष्य पूजा या किसी प्रकार की अनीश्वर पूजाका प्रमाण देवें, सत्य सिद्ध होने पर वह पांच सहस्र रुपये का पारितोषिक पावें। वस्तुतः आजकल सहस्रों और लक्षों विद्वान् होने पर भी (जो अभी तक किसी विशेष कारण से आर्यसमाज में प्रविष्ट नहीं हुए) कोई भी इस बात को सिद्ध नहीं कर सका और वही सत्य का बोल बाला होता रहा और होता रहेगा। इन्हीं दिनों में जब वह विज्ञापन छपा था, "अखबार आफ़ताब पंजाब लाहौर" आदि समाचार पत्रों में भी वह छापा गया था।

विक्टोरिया पेपर सियालकोट द्वितीय सप्ताह जुलाई १८८२ भाग ३ पृष्ठ १ शीर्षक "हमें चाहिये चिड़िया का दूध" में यह लेख छपा था "वकील आफ़ताब पंजाब लाहौर, बम्बई के एक मुनमय्विल भाई ने पांच हज़ार रुपये उस पंडित को देने किये हैं जो यह साबित करदे कि वेद शास्त्र बुतपरस्ती को इजाज़त देता है। विक्टोरिया पेपर रायदेता है कि मैं डंकेकी चोट से कहता हूं कि शास्त्र वेद खुदा परस्ती की इजाज़त देते हैं, न कि बुतपरस्ती की। पंडित जी क्यों झगड़ते हैं बाज़ आजावें बेजा इसरार से।"

सायण और महिधर आदि के भाष्य निघन्टु आदि कोष और ब्राह्मण पुस्तकों के विरुद्ध होने से प्रमाण योग्य नहीं हैं। उन्हीं का अनुकरण करने से मेक्समूलर तथा मोनियर विलयम और विलसन के भाष्य भी सत्य से पृथक् हैं। उन्हीं अनुवादकों का आर (मिरज़ा साहिब) ने आयत और हदीस माना है, जो सर्वथा भूल और मूर्खता की बात है। क्योंकि वेद का अनुवाद वही सत्य और यथार्थ है, जो ऐतरेय, गोपथ शतपथ साम विधान, ब्राह्मणों और निरुक्त तथा निघन्टु आदि के अनुकूल हो और उन्हीं के अनुसार उसका पूरा समर्थन होसके। महाराज स्वामी दयानन्द जी ने संस्कृत के महान विशाल सरस्वती मन्दिरों के खंडहरों में वर्षों भटकते और तप करते हुए यह ख़ज़ाने और दफ़ीने मालूम किये थे और उन्हीं प्राचीन भाष्यों के अनुसार एकेश्वरवाद से सुसज्जित वेद के पुष्प वाटिका रूप भाष्य में वह अद्वैत की शिक्षा और पुष्प वर्षा की है, कि उनके सच्चे विचार अर्थ ज्ञान और धारा प्रवाह व्याख्यान को, विधर्मी भी

प्रशंसा करते हैं। जब कि आप संस्कृत जानते ही नहीं तो संस्कृत साहित्य से आपका जानकार होना कहां रहा। भला आपके ऐसे आक्षेपों से जिन की नींव ही भूल पर है, हमारा क्या बिगड़ सकता है। किसी ने कहा है कि, "चना यदि कूदेगा तो क्या पहाड़ गिरा देगा।" मिरजा साहिब आपकी जांच की सीढ़ी सत्य शिखर से नीचे होने के अतिरिक्त असत्य और कमज़ोर भी है। यही कारण है कि हर स्थान से टुकड़े २ होकर टूट रही हैं और आपको सत्य के उद्देश्य से हटा कर अविद्या की खोह में भटका रही है। हां यदि किसी आर्य्य के मुख से सुनते, और वह मुक़ाबले में उनको या उनमें से किसी को उपासना के योग्य कहता या प्रमाण देता, तो शंका का स्थान हो सकता था। आपसे बढ़कर हम और हमारे भाई इस प्रकार की कथाओं का खंडन कर रहे हैं और हिन्दु मुसलमानों को, मूर्ति पूजा क़बर पूजा, काग़ज़ पूजा, और पीर पूजा से हटा रहे हैं, जिसमें ईश्वर कृपा से नित्य प्रति सफलता होती जारही है। आपने अत्यन्त धोखा खाया,और व्यर्थ काग़ज़ काले किये। किसीने सत्य कहा है। "गोसालायमा पीरशुद्धो गाओ न शुद" (हमारी गो शाला तो बुढी होगई पर गाय न हुई) क्या आपको पहिले किसी ने सम्मति न दी कि ऐ माजे ! जिस उद्दिष्ट स्थान के मार्ग को नहींजानते,जिस यात्रा के लिये तुम्हारे पास मार्ग व्यय नहीं और जिस विद्या से तुम सर्वथा शून्य हो, उसके सम्बन्ध में गप्प मत हांको और न उसकी प्रतिज्ञा करो, अन्यथा प्रथम और द्वितीय में हैरानी व नादानी और तृतीय में पश्चाताप और सन्ताप होगा।

बुराहीन उल अहमदिया पृ० ४०६ हाशिया नं० ३

"कि इन्द्र कौशिका ऋषि के पुत्र जन्द था, और सुभ ऋषि को माल-दार करदे। तमाम पुरानों के शिजरे में लिखा है, कि कौशिका का बेटा विश्वा-मित्र था, और सायण वेद का भाष्यकार इसकी वजह बयान करने को कि इन्द्र कौशिका का क्यों कर पुत्र होगया, यह क़िस्सा बयान करता है, जो कि वेद के ततिम्मा अनुक्रमणिका में दर्ज है, कि कौशिका असुराथा के पुत्र ने यह दिल में ख़्वाहिश करके कि इन्द्र को तवज्जुह से मेरे बेटा हो, तप जप इख्तियार किया, जिस तप की इवज़ में खुद इन्द्र न हो उसके घर में जन्म लिया, और आप ही उसका बेटा बन गया।"

उत्तर—यहां से स्पष्ट प्रगट है. कि वादी या उसके गुरू ने वेद की शकल भी कभी नहीं देखी थी. यही कारण है कि उसको आलोचना कच्ची है। शोक ! यह विद्या, यह बुद्धि और इस पर दावा इलहाम का ?

कुजा [illegible] हा [illegible] नामे पजदे पाक। कुजा अफ़साना हाय इश्क़े बेबाक ॥
कुजा राजे हक़ीक़त मारिफ़त खेज़। कुजा शिर्कों जहालत ज़ुलमत अंगेज़ ॥
कुजा इल्मे इलाही रा खज़ीना। कुजा वहमो ख्याले रा दफ़ीना ॥
कुजा उम्मी कुजा आं नूरे इदराक़। चि निस्बत ख़ाक़ रा बा आलमे पाक ॥

कहां वेद और कहां पुराण, कहां एकेश्वरवाद और कहां वादाविवाद । मिरज़ा साहिब । वेद कहानियां नहीं हैं, न उनमें किसी राजा इन्द्र की कथायें भरी हैं और न कोई गल्पें उसमें हैं । वह सारे पुराणों का शजरा क्या है, किस वेद पाठी की रचना है और कहां है ? शोक ! कि अविद्या और पक्षपात ने लोगों की आंखें अंधी कर दी हैं, जिससे सत्य को देखना और मानना पाप समझा जाने लगा है । वेदों में ऐसे नाम किसी मनुष्यके नहीं हैं और न कोई बात वेद की किसी विशेष मनुष्य से सम्बन्ध रखती है । जिस प्रकार हमारे मिरज़ा ने वेदों का कोई मन्त्र प्रमाण के लिये उपस्थित नहीं किया, उसी प्रकार कोई पुराण का श्लोक भी प्रमाण सहित नहीं लिखा, अतः प्रतिज्ञा सर्वथा हेतु शून्य है । क्यों कि यह कथा या और कोई वेदों में नहीं है । अब उसका वास्तविक अनुवाद लिखता हूं ।

"हे सब विद्याओं के उपदेशक और उनके अर्थों के निरन्तर प्रकाश करने वाले आनन्दमय परमेश्वर ! सब स्तुति के योग्य आप ही हैं । कृपा करके हमारी स्तुति को ग्रहण कीजिये और हमें नव जीवन दीजिये, ताकि हम लोगों में अनेक विद्याओं के प्रगट करने वाले ऋषि उत्पन्न हों और जगत का उपकार करें ।"

ऋग्वेद मंडल १, अनुवाक ३ सूक्त १० मन्त्र ११ का यह अनुवाद है, जिस को बे समझी से इलहामी साहिब ने एक पौराणिक गाथा के रूप में करके लिखा है । ईश्वर उन्हें सन्मार्ग दिखाये, और मिथ्यावाद के अभ्यास से बचाये ।

इसी प्रकार सारे मन्त्रों के अनुवादों के विषय में विचार करें कि किस प्रकार स्वीकृति के योग्य नहीं हैं । वेद भाष्य में स्वामी जी ने उन अंगरेज़ों के अनुवादों का अत्यन्त बुद्धिमत्ता से खंडन किया है । जिस किसी को मिरज़ा साहिब के सारे सन्देह जनक लेखों का जो वेद मन्त्रों के सम्बन्ध में है असली अनुवाद देखना हो, वह वेद भाष्य देख कर शङ्का निवृत्ति करले ।

यतः मिरज़ा साहिब की अशुद्धियां अनगिनत हैं और उनका यदि इस प्रकार विस्तार से उत्तर लिखें, तो पुस्तक के बढ़ जाने का डर है और क्यों कि उनका उत्तर उचित रीति से वेद भाष्य में छप गया है, अतः दुहराने की कोई आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती । प्रत्येक सत्याभिलाषी वेद भाष्य मूल्य लेकर वा समाज से देख सकता है, और सत्यासत्य को जांच कर सकता है ।

बुराहीन उल अहमदिया आक्षेप, पृष्ठ ४०२ माजीन सं० १

लेकिन वेद की निस्बत क्या कहें, और क्या लिखें, और क्या तहरीर में लावें, जिस में बजाय हक़ायक़ व मुआरिफ़ के तरह २ के गुमराह करने वाले मज़मून मौजूद हैं । करोड़हा बन्दगाने खुदा को मखलूक़ परस्ती की तरफ़ किसने झुकाया ? वेद ने । आर्य्यों को सदहा देवतों का परस्तार किसने बनाया ? वेदने ।

उत्तरः– वेदोक्त एकेश्वरवाद की विस्तृत व्याख्या हम पहिले कर चुके हैं, अब कुरान की हानि कारक शिक्षा को प्रगट करते हैं ।

(ग़यासुललुगात से उद्धृत रदीफ़ हे पृष्ठ ४०५ व ४०६ हिन्दी अनुवाद)

विदित हो कि सब सम्प्रदाय ७३ हैं। एक सुन्नत व जमाऽत और ७२और वास्तव में ६ सम्प्रदाय हैं—राफ़ज़िया, ख़ारजिया, जबरिया, कदरिया, जहोमिया और मर्जूजिया। इनमें से प्रत्येक के १२ फ़िरके हैं।

राफ़ज़िया के फ़िरके और उनके मन्तव्य

(१) अल्विया, हज़रत अली को नबी कहते हैं। (२) अबदिया, अली को नबुव्वत में शरीक मानते हैं। (३) शेय्या, कहते हैं जो अली को सब सहाबा से अधिक प्यार नहीं करता, काफ़िर है। (४) इसहाकिया, नबुव्वत का अन्त नहीं हुआ। (५) जेदिया, नमाज़ की इमामत के अली की सन्तान के बिना कोई योग्य नहीं। (६) अबासिया, अबास इब्न अबदुल मतलब के बिना किसी का इमाम नहीं जानते। (७) इमामिया, पृथ्वी गुप्त इमामसे खाली नहीं जानते। और बनी हाशम के बिना किसी के पीछे नमाज़ नहीं पढ़ते। (८) नावसिया, जो अपने को दूसरे से विद्वान समझे काफ़िर है। (९) तनासख़िया, जब जीव शरीर से निकलता है तो जाइज़ है कि दूसरे शरीर में जावे (१०) लानिया—तलह,जबीर आयशा को लानत करते हैं। (११) राजिया, अली पुनः जगत में आयगा अब बादल में रहता है। (१२) मुरतज़िया, मुसलमान बादशाह से लड़ना जाइज़ है।

ख़ारजियफ़िर्के और उनका मन्तव्य

(१) अर्ज़किया, जो स्वप्न में भलाई नहीं देखता, निश्चय उससे वही का संबंध टूटा है (२) रियाज़िया-ईमान सत्य भाषण, सत्याचरण और सुन्नत की नियत का नाम है (३) सालबिया, हमारे काम परमेश्वर के स्वप्न में प्राप्त हैं उसकी शक्ति व इच्छा से नहीं (४) ख़ाज़मिया-कल्पित ईमान पहिचाना नहीं गया(५) खलफ़िया काफ़र संख्या में दुगने हों तो उनके मुकाबले से भागना कुफ़र है (६) कोज़िया, शरीर बहुत मालिश के बिना शुद्ध नहीं होता (७) कनोज़िया, ज़कात देना फ़र्ज़ नहीं (८) मोतज़िला, बुराई ईश्वरीय इच्छा से नहीं, दुराचारी इमाम के साथ नमाज़ जाइज़ नहीं, और ईमान मनुष्य की कमाई है। कुरान मनुष्यकृत है मृतकों को प्रार्थना या दानसे लाभ नहीं पहुंचता। मेराज बैतुलमुकद्दस के आगे नहीं, और किताब, हिसाब व तोल कुछ नहीं, फरिश्ते मोमनों से उत्तम हैं। ईश्वर का दर्शन कियामत को नहीं होगा। वलियों की करामात कुछ नहीं। बहिश्त वाले सोते और मरते हैं। बध किया जाना अकाल मृत्यु है। दज्जाल आदि वाली कियामत की निशानियां कुछ नहीं (९) मैमूनिया—मोक्ष का विश्वास मिथ्या है (१०) महकमिया—ईश्वर का सृष्टि पर हुक्म नहीं (११) मिज़ाज़िया—इतिहास परम प्रमाण नहीं उससे इनकार हो सकता है। (१२) अख़नसिया—कर्मफल मनुष्य को नहीं मिलता।

जबरिया फ़िर्के और उनके मन्तव्य

(१) मुज़तरिया—नेकी बदी ईश्वर से है दोनों में मनुष्य का दखल नहीं (२) अफ़आलिया, कर्म मनुष्य के लिये है पर सामर्थ्य व अधिकार के बिना (३) मइया—मनुष्य में ईश्वर से मिले बिना कर्म व शक्ति है (४) मार्किया—ईमान लाने के अतिरिक्त और कोई कर्तव्य नहीं (५) बहसिया—जो कुछ प्राप्त है अपनी प्रारब्ध से है अतः किसी को कुछ देना आवश्यक नहीं (६) मुत्मीन—भलाई वह है जिससे मन सन्तुष्ट हो (७) गस्तानिया—पुण्य व फल कर्म से बढ़ता नहीं (८) जयवा—सच्चा मित्र अपने मित्र को कष्ट नहीं देता (९) ख़ौफ़िया—मित्र मित्र को डराता नहीं (१०) फ़िकरिया—ईश्वरीय ज्ञान का चिन्तन करना ईश्वर भक्ति से उत्तम है (११) जिस्मिया—संसार में प्रारब्ध नहीं (१२) हुजतिया—जब सब काम ईश्वरेच्छा से हैं तो मनुष्य क्यों पकड़ा जावे।

कदरिया के फ़िर्के और उनके मन्तव्य

(१) अहदिया—फ़र्ज़ को मानते हैं सुन्नत को नहीं मानते (२) मस्नविया, नेकी यज़दान से और बदी अहर्मनसे है (३) कैसानिया, हमारे कर्म पैदा हुये हैं या नहीं (४) शैतानिया—शैतान है हो नहीं (५) शरीख—ईमान पैदा नहीं हुआ कभी होता है कभी नहीं होता (६) नबरिया—हमारे कर्मों का फल नहीं है। (७) रवीदया—जगत नित्य है (८) मार्कसिया—इमाम पर ख़रूज जाइज़ है (९) नर्वारिया…पापी की तोबा क़बूल नहीं होती (१०) कासिनया—विद्या मन बुद्धि और तप फ़र्ज़ है (११) नज़मिया—परमेश्वर को पदार्थ कहना उचित है (१२) मतोलिक़िया—हम नहीं जानते हैं कि पाप प्रारब्ध में है या नहीं।

जहमिया के फ़िर्के और उनके मन्तव्य

यह १२ फ़िर्के इस पर सहमत हैं कि ईमान दिल से होता है न कि ज़बान से। कबर, मुन्किर, नकीर के सवाल, हौज़ कौसर, मलकुल मौत, मूसा से ख़ुदा को कलाम होना को नहीं मानते। और परस्पर में मतभेद रखते हैं। (१) मुअत्तलिया—परमेश्वर के नाम और गुण अनित्य है (२) मुतरान्सिया-ज्ञानशक्ति और इच्छा अनित्य है और ख़लक़ नित्य (३) मुतरावमिया—परमेश्वर मकान में है (४) वारदिया—जो दोज़ख़ में जायगा फिर बाहर न आयगा और मोमन दोज़ख़ में जायगा (५) हरकिया—दोज़ख़ वाले ऐसे जलेंगे कि उनका कोई निशान दोज़ख़ में न रहेगा (६) मख़लूक़िया—क़ुरान, तौरेत, अञ्जील, ज़बूर, मनुष्यकृत हैं (७) अबरिया—मुहम्मद रसूलिल्ला बुद्धिमान और नीतिमान था न कि रसूल (८) फ़ानिया—बहिश्त दोज़ख़ दोनों नाश होजायगे (९) नार्वाकिया—मेराज रूह को है शरीर को नहीं और परमेश्वर जगत में प्रत्यक्ष है। जगत के अनादि होने को मानते और क़ियामत से इन्कार करते हैं। (१०) लफ़्ज़िया—क़ुरान हज़रत की वाणी है ईश्वरीय नहीं पर अर्थ ईश्वरोक्त हैं (११) कबरिया—क़बर के अज़ाब को नहीं मानते (१२) वाक़िफ़िया…क़ुरान को मनुष्यकृत मानने में हमें सङ्कोच है।

यह इस पर सहमत हैं कि पेग़म्बर जगत के प्रबन्ध के लिये भय दिलाते हैं अन्यथा परमेश्वर को मनुष्य को दुख देने की आवश्यकता नहीं। (१) तारकिया, ईमान के अतिरिक्त और कुछ फ़र्ज़ नहीं। (२) शाइया, जिस ने यह कहा कि 'ला इलाइल्लिल्ला' चाहे सोकरे उसे कोई अज़ाब नहीं (३) राजिया मनुष्य भक्ति से प्यारा और पाप से गुनाहगार नहीं होता (४) शकिया, ईमान में शङ्का रखते हैं, कहते हैं कि ईमान रुह है (५) नहोया, ईमान ज्ञान है, जो सब कर्तव्या-कर्तव्य को नहीं जानता वह काफ़िर है (६) अमलिया, ईमान नाम कर्म या सदा-चार का है (७) मन्कूसिया-ईमान कभी बढ़ जाता है कभी घट जाता है (८) मुस्तस्निया-हम ईश्वर के हुकम से मोमन हैं। (९) असरिया-अनुमान मिथ्या है। सच में युक्ति नहीं होती। (१०) बरइया—अमीर की आज्ञा पालो, चाहे पाप की कहे (११) मुशब्बिया—परमेश्वर ने आदम को अपनी सूरतपर पैदा किया है (१२) हश्विया—वाजब, सुन्नत और मुस्तहब सब फ़र्ज़ हैं। अबदुल कासम राज़ीने ७ फ़िर्के इनके और बताए हैं। करामिया, दैहरिया, हालिया, वातनिया, अवाजिया, ब्राह्मिया, अशअरिया, और इन में से कइयों के नाम सोफ़िस्ताइया, फ़िलास्फा, समनिया, मजूसिया भी हैं।

मरजिया फ़िर्के और उन के मन्तव्य

हुज्जत उल इस्लाम इमाम मुहम्मद ग़िज़ाली अपने पुस्तकों में लिखते हैं कि इन बहत्तर सम्प्रदायों की नींव ६ मत हैं।

तशबीह, तातील, जबर, क़द्र, रवाफ़ज़, नसब।

उमदतुल मुक़्तद्दमीन शहाब उलहक़ फ़ज़लुल्लाह बिन यूसुफ़ अलसोरी ने लिखा है, कि तशबीह (अलंकार) वाले ईश्वर में अगुण बतलाते हैं और गुण तथा द्रव्य से उपमा देते हैं। और तातीली ख़ुदा से इन्कार करने लगे, और उसके गुणों को निषिद्ध कर दिया, कि उसमें ख़ुदाई का कोई गुण नहीं है किन्तु असली बात यह है, कि इस संसारका कोई बनाने वाला नहीं है और यह सदासे ऐसा ही है जैसा कि अब है। और उनमेंसे कई वृद्ध पुरुष इस दार्शनिकमन्तव्यके मानने वाले हैं, कि ईश्वर सारे संसार की वस्तुओंका आदि कारण है और जगतका उपादान कारण सर्वदा उसके अधिकारमें है। जबरिया, सारे कामोंका जो मनुष्यों से होते हैं, कर्त्ता ईश्वर को बताते हैं, और स्वयं कर्त्ता होने से इन्कार करते हैं। क़दरिया, सारे कामों के कर्त्ता स्वयं कहलाते हैं। कर्त्ता ईश्वर को नहीं जानते और ईश्वर को कर्मों का बनाने वाला नहीं मानते। रवाफ़ज़ अली की श्रद्धा में अत्युक्ति करते हैं और उसमान, अबुबकर और उमर के विषय में बहुत बुरे शब्द प्रयोग करते हैं और कहते हैं, जो मुहम्मद के पश्चात् "अली" पर ईमान नहीं लाता, वह धर्मात्मा नहीं है। नसबिये लोग दूसरों को श्रद्धा में बढ़कर अली को बुरा कहते हैं और उसके अनुयाइयों को ईमान से ख़ारिज जानते हैं।

पूर्व के पर्वतों में एक प्रसिद्ध स्थान है, जिसको "शिकूना" कहते हैं। उस देश का शासक मुआविया बिन अबी सुफ़ियान का सन्तान से कहलाता है।

अमविया व यज़ीदिया फ़िर्क़ों का हाल

उस देश के लोग शूरवीर, योद्धा, और नमाज़ पढ़ने वाले हैं। मुहम्मद को नबी मानते हैं और मुआविया के ख़लीफ़ा और इमाम अली के सम्बन्ध में लानत करते हैं और कहते हैं, वह खुदाई का दावा करता था और यही अपने लोगों को मनवाता था। और ख़तबतुल बयान से साक्षी लाते हैं कि वह खुदाई का दावा करता था।

इनल्लाहा ...... फ़िल अरहाम।

(अरबी शब्दों का उर्दू अनुवाद) अली कहता है, मैं अल्ला हूं, मैं रहमान हूं, मैं रहीम हूं, मैं अली हूं, मैं ख़ालिक़ हूं, मैं रज़्ज़ाक़ हूं, मैं हन्नान हूं, मैं मन्नान हूं और मैं पेटों में नुत्फ़े को बनाने वाला हूं और ऐसे बहुत से वाक्य उसके हैं और ऐसी ही प्रतिज्ञायें फ़रऊन और नमरूद की थीं। इसी कारण वह घातक निर्दयी और रक्त पातक था। मुहम्मद साहिब से बहुधा अप्रतिष्ठा का व्यवहार किया करता था और यह आयत कुरान (सूरतबकर) की अलीके सम्बन्ध में है।

"वमिनन्नासे ......अलख़िसाम" "और, आदमियों से कोई है, जो आश्चर्य दिलाता है तुझे, कथन उसका सांसारिक जीवन के सम्बन्धमें और गवाही दिलाता है, खुदा को ऊपर जो उसके दिल में है हालांकि वो सख़्त लड़ने वालों से है, और कहते हैं कि हसन और हुसैन रसूल की सन्तान से नहीं हैं।" आयत (सूरत अहज़ाब) माकान...... नबीईन, के अनुसार 'मुहम्मद किसी मनुष्य का पिता नहीं पर रसूल है खुदा का, और मुहर है अगले पैग़म्बरों की।" और कहते हैं, कि अली का पुत्र हुसन इस देश को जीतने के लिये इराक में आया था, जिस कारण यज़ीद के हाथ से मारा गया और वह लोग, मुहर्रम को दसवीं को सवार होकर बड़े मैदान में निकलते हैं और हुसन की सूरतें बनाकर उन पर घोड़े दौड़ाते हैं और उस दिन को शुभ तथा विजय का दिन जानते हैं। ईदोंसे अधिक खुशी करते हैं, क्योंकि उसी दिन यज़ीद अलैहिस्सलाम ने विद्रोही पर विजय प्राप्त की थी। उनमें एक सम्प्रदाय के लोग तलवार खींच कर उस दिन दौड़ते हैं और अली तथा उसकी सन्तान को धिक्कार करते हैं। इसी प्रकार से कमाई एकत्रित करते हैं और उनको सियाह कहते हैं। उनको विश्वास है, कि हमारा पैग़म्बर मारने और पैदा करने की शक्ति रखता था, और जो कुछ चाहता था, करता था। परन्तु वह बात उसके अनुयाइयों के लिये उचित नहीं। यथा, मुहम्मद साहिब पशुओं को मारते थे, क्योंकि वह जिलाने की शक्ति रखते थे। हम को नहीं चाहिये कि किसी जीव को मारें, क्योंकि हम उसको जीवित नहीं कर सकते, और न हमारे लिये उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार पैग़म्बर साहिब जिसकी स्त्री चाहते थे, ले लेते थे, क्योंकि संसार उनके लिये है, परन्तु हमको अधिकार नहीं है कि किसी की स्त्री लेलें। इसीलिये शकुना में जीवधारी को नहीं, मारते हैं। वनस्पति के खाने पर

निर्वाह करते हैं। मधु तथा घृत और ऐसी ही पौष्टिक वस्तुयें खाकर आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, और मार काट नहीं करते।

शैय्या का मत—शैय्या मानते हैं कि सीधा मार्ग वह है, जो एकेश्वरवाद, न्याय, नबुव्वत, इमामत और मुआद पर विश्वास रखे और पांचों की तसदीक करे। मुहम्मदने अलीको चुन लिया और अपना उत्तराधिकारी तथा खलीफ़ा बनाया। मुहम्मद के पश्चात् अली सारे पैगम्बरों और वलियों से उत्तम हैं। और अबूबकर और उसमान आदि को निरपराध इमामों के अधिकार छीनने वाला जानते हैं और उनका धिक्कारते हैं। और बहुत से उनमें विश्वास रखते हैं और कहते हैं, कि उसमान ने कई सूरतें जिनमें अली और उसकी सन्तान की महिमा थी, कुरान से निकाल दीं और उन सूरतों में से, एक यह सूरत है, जो उसमान ने कुरान में नहीं लिखी।

"बिस्मिल्ला हिर्रहमानिर्रहीम या अयुहललज़ीना आमनु आमिनु...वल हम्दुलिल्लाहे रब्बिल आलमीन" इसी प्रकार और भी सैकड़ों बातों में इनका मतभेद है।

अली इलाहियान का वृत्तान्त—पूर्वीय पर्वतों में "खता" के निकट "अज़ियल"नामक देश है और उसे अरमान भी कहते हैं। इस देश के निवासियों का विश्वास है कि जब कोई ईश्वर की स्थिति को नहीं जानता, इसलिये ईश्वर को आवश्यक था कि शरीरधारी होकर लोगों से अपनी आज्ञापालन करावे और अपने पन्थ पर चलावे। यह बात किसी प्रकार असम्भव नहीं, इसलिये खुदा शरीर धारी हो सकता है, ताकि संसार का प्रबन्ध चलता रहे और पाप बढ़ न जावे। इसीलिये उस ज्ञानस्वरूप के ज्ञान के लिये आवश्यक हुआ कि अपने आपको मनुष्यों में प्रगट करे। अस्तु, वर्तमान काल में वह पूर्णता का शक्लधारी सूर्य्य अलीके अतिरिक्त और कहीं प्रगट नहीं हुआ, किंतु निश्चय हमारे उम्मी पैगम्बरने पवित्रअलीको अनेक बुद्धिमान नबियोंके बराबर गिना और सारे नबियों के गुण उसमें विद्यमान देखे। यही कारण है कि वृद्ध पुरुष इस अबुल बशर के चित्र को देखते हैं, उसी को नूह की नाव का बचाने वाला, उसी को इबराहीम के लिवास में अग्नि से खेलने वाला और उसी को मूसा के शरीर में ईश्वर से बात करने वाला जानते हैं और हदीस 'इन्नल्लाह खलक़—आदम—अला सूरतही, ('कि मैंने आदम को अपनी शक्ल व सूरत पर बनाया) भी इसी का अनुमोदन करती है। क्योंकि वलियों का आदम और सूफ़ियों का अबुल बशर अली मुरतज़ा के अतिरिक्त और कोई नहीं है। एक सौ एक नाम "अली मुरतज़ा"का प्रातःकाल जाप करते हैं और "रायत रबी फ़ी सूरत अम्र" की हदीस का संकेत भी अली मुरतज़ा की ओर जानते हैं और ऊंची स्वर से सुनाते हैं,

गरज़ ज़ि बुतशिकनी हा ज़ुज़ई नबूद नबीरा।
कि दोशे खुद बकफ़े पाये मुरतज़ा रसानद॥

(मूर्तियां तोड़ने से नबी का इसके बिना कोई उद्देश्य नहीं था कि अपना कन्धा मुरतज़ा के पाओं के तले तक पहुंचावें)

और काबा के घर को इसी कारण उपास्य समझते हैं और सजदे का अधिकारी मानते हैं। अल्लाह के नूर के तनासुख़ (दूसरे शरीर में प्रवेश) को भी आदमसे अली तक मानने वाले हैं और साधारणतया अली अल्लाहका जप करते हैं और मुहम्मद को पैग़म्बर तथा अली अल्लाह का भेजा हुआ मानते हैं। अर्थात् जब ईश्वर ने देखा कि मेरे पैग़म्बर से काम नहीं चलता, तो स्वयं पधारे और अली के शरीर में प्रगट हुए। और कहते हैं कि यह वर्तमान कुरान मानने योग्य नहीं क्योंकि यह वह कुरान नहीं जो अलीअल्लाहने मुहम्मदको दिया था, किंतु यह अबुबकर, उमर और उसमान की रचना है। कई इनमें से इस कुरान को अपूर्ण जान कर अली अल्लाह को गद्य पद्य को भी इसमें जोड़ कर पूर्ण करते हैं, किंतु इनको कुरान से बढ़ कर आदर देते हैं क्योंकि यह मुहम्मद के द्वारा आया और यह बिना किसी माध्यम के स्वयं अली अल्लाह से प्राप्त हुआ। उन में एक सम्प्रदाय अलविया है, जो अपने को अली की सन्तान से बतलाते हैं, और वर्तमान कुरान को उसमान का बना हुआ निश्चय करते हैं। जिस स्थान पर कुरान पाते हैं, क्रोधाग्नि से जलाते हैं, और विश्वास करते हैं कि अली अल्लाह का शरीर सूर्य्य से मिल गया। इस लिये अब सूर्य्य उस के स्थान पर हमारा सहायक है और वर्णन करते हैं, कि अली की आज्ञा से सूर्य्य छुप कर, फिर वापस चला आया था और उसको 'रैने शमस' कहते हैं, और सूर्य्य को भी अली अल्लाह जानते हैं। बड़े २ इलहाम, करामात और चमत्कारों को मानते हैं। मांस नहीं खाते, अली अल्लाह के इस कथनानुसार कि "मत बनाओ उदरों को पशुओं की क़बरें।" और जो कुरान में कुछ पशुओं का खाना लिखा है, वह मांस अबूबकर, उमर तथा उसमान और उनके अनुयाईयों का है। यह अवश्य खाना चाहिये, क्यों कि अली अल्लाह के विरोधी हैं और अली अल्लाह की मूर्ति को नमस्कार करना उचित है और आवागमन को मानते हैं, और "होचा देशों" के निवासी भी इसी मत के हैं और अली को अल्लाह जानते हैं।

सादक़िया फ़िर्के का वृत्तान्त—यह लोग मुहम्मद और मुसीलमा दोनों को नबी जानते हैं, और अपने को "रहमानिया" मानते हैं, क्योंकि रहमान मुसीलमा का नाम है और विस्मिल्लाहिर्रहमान इरहीम का यही तात्पर्य है, अर्थात् मुसीलमा का खुदा दयालु है। वह कहते हैं, कि प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है कि मुसीलमा को नबी जाने, वरना उसका इसलाम संदिग्ध है और बहुत सी फ़ुरक़ानी और फ़ारूकी आयतों को गवाह बतलाते हैं कि मुसीलमा अवश्य नबी है, और मुहम्मद का साझी। किन्तु इससे भी अधिक अकाट्य हेतुओंसे बतलाते हैं कि साक्षी दो चाहियें या अधिक, क्योंकि इलहाम व रसालत जैसा सूक्ष्म विषय जितनी साक्षियोंसे पुष्ट किया जावे उतना ही उत्तम है। उसके गुण व चमत्कार में भी मुहम्मदियों की न्याईं बहुत

अधिक कर्णन करते हैं, यही नहीं मुहम्मदी भी इसके चमत्कारों को मानते हैं। यतः रौज़तुल अहबाब का लेखक लिखता है, "आश्चर्य्य जनक सृष्टिनियम विरुद्ध घटनायें जो नबियों की चमत्कार के विपरीत थीं, परमेश्वर उसके द्वारा प्रगट करता था। उसको बड़ाई के लिये याजादू और धोखेके लिये।' चान्द कोभी उसने मुहम्मद की न्याई बुलाया और गोद में बिठाया और चमत्कारों का पूर्ण वृत्तान्त मदारज उलनबुव्वत रुक्या चार के पृष्ठ ३२०, ३२१ में लिखा है। हज़ारों लाखों सादिक़िया उस के साक्षी हैं। सम्भाषण तथा वक्तृता शक्ति इसकी इतनी थी, कि अरब के सब व्याख्याताओं को ज़बान उसके मुक़ाबले में बन्द थी। परमेश्वर ने उसपर पुस्तक भेजी, जिसका नाम फ़ारूक़ है, और वह भी "फ़ारूक़ की फ़साहत" (लालित्य) का दावा नबुव्वत के आरम्भिक कालसे (जिस को १३०० वर्ष का समय हुआ है) करते हैं और इस आयत को अत्यन्त उत्साह से पढ़ते हैं कि यदि सच्चे हो तो ऐसी सूरत बनाओ और मैदान में आओ, पर आजतक कोई भी न बना सका। सादक़िया कहते हैं, कि कुरान और फ़ारूक़को बिना मुहम्मद और मुसीलमा के कोई नहीं समझता, सैंकड़ों इसके हाफ़िज़ मौजूद हैं। मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् खुदाने मुसीलमा पर एक और पुस्तक अर्थात् 'द्वितीय फ़ारूक़' भेजी, और यही कारण है, कि कई बातें सादिक़िया और मुहम्मदिया के विरुद्ध हैं, क्योंकि कुछ बातें खुदाने मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् रद्द करदीं, जैसा कि मुहम्मद के समय में भी बहुत सी आयतें फ़ुरक़ान से रद्दहो गईं, और कहते हैं खुदा हाथ, मुंह आदि सब अङ्ग रखता है, पर प्राणियोंकी न्याई नहीं। खुदा के दर्शन प्रलय के दिन मानते हैं और मुहम्मदिया की भांति वह भी फ़ारूक़ को बहुतसी बातोंमें दख़ल देना कुफ़र जानते हैं। द्वितीय फ़ारूक़ में लिखा है, किक़िबले की ओर नमाज़ करने वाली आयत रद्द होगई, अब जिस ओर चाहो सिजदा (दंडवत) करो, जैसे कि मुहम्मद के जीवन काल में बेत—उल—मुक़द्दस वाली आयत मनसूख़ होगई थी। अतः द्वितीय फ़ारूक़ के उतरने पर क़िबलेकी ओर मुख करना कुफ़र है क्योंकि यह खुदा पर दोष है। इस लिये किसी घर को या मेहराब को क़िबला करना मूर्ति पूजा है तीनों नमाजें एक ही ओर मुख करके न पढ़े, किन्तु भिन्न २ दिशा को ओर मुख करके। क्योंकि एक ओर मुख करके नमाज़ पढ़ना मूर्तिपूजा है, अर्थात् किसी विशेष स्थानका निश्चय न करे, क्योंकि यह शिर्क है। "काबे" को अल्लाह का घर नहीं कहना चाहिये, क्योंकि खुदा का घर कोई नहीं, नमाज़ में पैगम्बरका नाम न लेना चाहिये, क्योंकि यह उद्दण्डता है। नमाज़ तीन काल पढ़नी चाहिये, क्योंकि दो काल को नमाज़ (अशा, बामदाद) खुदाने मुसीलमा को ख़ातिर क्षमा करदी। इबलीस को जो आदम को दंडवत करने को आज्ञा कुरान में है, यह कुफ़र है। फ़ारूक़ के अनुसार यह बात पाप ठहर कर रद्द हो गई, यह आज्ञा ईश्वर की ओर से न थी। निकाह में केवल परस्पर की स्वीकृति पर्याप्त है, और चाचा तथा मामूं आदिकी पुत्री जो मुहम्मद के समय में जायज़ थी, उसकी मृत्यु के पश्चात् खुदा ने आज्ञा भेजी कि यह बात हराम है। फ़ारूक़

मुसोलमा में आज्ञा है, कि पुत्रो उत्पन्न करो, जिससे पूर्व सम्बन्ध न हो, एक पत्नी से अधिक विवाह उचित नहीं है। हां मुतआ जायज़ है। घरेलू मुर्ग़ा खाना उचित नहीं, क्यों कि यह उड़ने वाला सूअर है। रमज़ान के रोज़े वर्जित होगये, कि 'रोजे' के स्थान पर 'शवा' रक्खो। सूर्य्यास्त से उदय तक कुछ न खाओ, न पियो, और न समागम करो। खतना करना यहूदी होजाना है, इस लिये रद्द है। सारे नशे यहां तक कि अफ़ीम और जूज़ भी हराम हैं। मुसोलमा को खुदा ने आज्ञा दी कि जब लड़का उत्पन्न होवे, उचित है कि पत्नि से समागम न करे और दोनों खुदा को याद में रहे, अथवा एक वार प्रतिदिन से अधिक समागम न करे। द्वितीय फ़ारुक़में व्यभिचार की आज्ञा है, क्योंकि और बाज़ारी सौदोंकी भांति यह भी व्यापार है। अबुबकर को बुरा कहते हैं कि उसने खिलाफ़त के लालच में मुसोलमा को मरवा दिया, जैसे यहूद। अस्करयूनी ने ईसा को मरवा दिया था। फ़ारुक़ मुसोलमा की कुछ आयतें इस प्रकार हैं।

उसके वास्ते (मुसोलिमा के वास्ते) फुरक़ान की सूरत उल ज़रियत के उत्तर में खुदा ने यह आयतें नाज़िल कीं,

(फुरक़ान मुहम्मद से) "वज़्ज़ारिआत .... मिन अफ़क, "यह कुरान की आयतें हैं।

(फ़ारुक़ मुसोलमा से) वज्ञाज़राते ..... येहलुलबदर (तथा) अलम तरा ......अन्ताजा (तथा) अलमतरा एला रब्बेका ...... ग़शी

*जब अबूबकर खलीफ़ा ने यह आयतें सुनीं, उसको लालित्य तथा मधुरता पर बहुत ही आश्चर्य किया, (कारण कि अरब में उसका लालित्य उच्चकोटि का प्रसिद्ध था) और कहा कि ऐसी उत्तम वाणी उसने तुम्हें सुना कर भटकाया। इसी प्रकार वहाबिया, नेचरिया, व शमशिया आदि और फ़क़ीरों और क़लन्दरों के सैकड़ों सम्प्रदाय विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई सम्प्रदाय हैं, जो मुसलमान होने पर भी एक दूसरे के लहू के प्यासे हैं, इत्यादि। कुरान के इसी विपरीत लेख तथा न्याय शून्य शिक्षा से मुहम्मदी मत में १३०० वर्ष से बहुत बड़ी गडबड पड़ गई। कोई किसी ज़ियारत का पुजारी, कोई किसी रोजे का मुजावर, कोई निगाहे वालेका दास, कोई मुहम्मद का भक्त, × कोई मदीने का दीनदार, कोई सरवर का सरवरिया, कोई शेख सदू का सदका खाने वाला और मतवाला बन गया, कोई करबला की मिट्टी पर कुरबान है, कोई नजफ़ की खोज में हैरान है, कोई खुदा को निरुत्तर कर रहा है, कोई अली को खुदा मान कर उसके नाम पर मर रहा है, कोई सूर्य्य को खुदा जानता है, और कोई

* देखो रौज़ातुल अहबाब मक़सद १ बाब २ और तारीख़ अबुलफ़िदा करबी।

+ देखो मुआरज उल नबुव्वत पृष्ठ ३४५ रुकन ४। उमर फ़ारुक़ मुहम्मद के देहान्त के पीछे यह खुतबा पढ़ता था। जो मुहम्मद को पूजते हैं, वा जानें कि मुहम्मद मर गया और जो ईश्वर को पूजते हैं वह जानें कि ईश्वर जीवित है।

बिजली को। अब प्रत्येक न्याय प्रिय सज्जन सारी बातों का विचार कर सत्या सत्य को जांच कर सका है कि यथार्थ क्या है और कितना अंधेर हो रहा है। क्या कहीं यथार्थ सचाइयों का चिन्ह भी विद्यमान है? एक ईश्वर की ओर ले जाने व अधर्म और मूर्त्ति पूजा का हटाने के विपरीत उसकी यथावत् एकता और विज्ञान सम्बन्धी सूक्ष्म बातों को बतलाने में कुरान अत्यन्त असमर्थ रहा। प्रेम और अद्वैत के स्थान में इसमें नाना प्रकार का द्वैत और रक्तपात तो मौजूद है। इन कोटिशः मुहम्मदियों को मकान पूजक किसने बनाया? कुरान ने। कभी बैतउल मुकद्दस और कभी काबा की ओर किसने भटकाया? कुरान ने। मुहम्मदियों के हाथों से लहू की नदियां किसने बहाई? कुरान ने। अली को खुदाई की गद्दी पर किसने बिठाया? कुरान ने। खुदा को मक्कार तथा मखौलिया व भटकाने वाला किसने बनाया? कुरान ने। आग के आगे मूसा को किसने झुकाया? कुरान ने। शैतान को मूर्त्ति पूजा न करने से लानती किसने बनाया? कुरान ने। सूर्य्य को खुदा या बड़ा या खुदा किसने खुआया? कुरान ने † औरत तुम्हारी खेतियां हैं जाओ, अपने खेत में जिस भाग से तुम्हारी इच्छा हो, यह किसने आज्ञा दी? कुरान ने। आत्मा का मान पशुओं से भी किसने घटाया? कुरान ने। खुदा को प्रमादी किसने बनाया? कुरान ने। पीर पूजा, फरिश्ते पूजा में फंसाकर करोड़ों को किसने द्वैतवादी बनाया? कुरान ने।

पुनर्जन्म का कुरान से प्रमाण।

(बुराहीन उल अहमदिया भाग ४ पृ० ३६२ हाशिया नं० ११)

वादी—जो आर्य्य हैं वह खुदा को खालिक नहीं समझते, और अपनी रुहों का रब उसको करार नहीं देते।

प्रतिवादी—झूठ बकते हो! सारे आर्य्य ईश्वर को सब संसार का सृष्टा जानते हैं और अपनी आत्माओं का स्वामी भी मानते हैं। यहां तक कि सारे संसार के जीवों का स्वामी वही है, उसके अतिरिक्त हमारा स्वामी तथा उपास्य और कोई नहीं है। ईश्वर से डरो और झूठ बकने से बचो।

वादी—और जो उन में बुत परस्त हैं वह सिफ़ते रबूबियत को रब्बिल आलमीन से खास नहीं समझते। और तेंतीस करोड़ देवता रबूबियत के कारोबार में खुदातआला का शरीक ठहराते हैं और उनसे मुरादें मांगते हैं।

---

† यह सूरा बकर में है। तफ़सीर हुसैनी वाला स्पष्ट व्याख्या करता है कि चाहे आगे से करो या पीछे से, स्त्री से समागम करो। सयूती और इमाम फखरुद्दीन स्पष्ट कहते हैं कि रजस्वला से भोग करना जायज़ है। किताब अन्साब में इमाम मालक के प्रमाण से यह कर्म जायज़ और दुर्रे मन्सूर से भी यही विदित होता है। एजाज़े मुहम्मदी का लेखक लिखता है कि स्त्रियां अहनाये अशरिया में पीछे से भोग करना स्वाब और अद्वितीय सिद्धान्त है।

प्रतिवादी—यदि तेतीस करोड़ देवताओं को ईश्वर समझते हैं, तब तो आप शंका कर सकते हैं अन्यथा किसी मूर्ति पूजक का पद जामो आदि मोमिनो से कम नहीं है। वह जबराईल व मेकाईल व इज्राईल आदि फ़रिश्तों को जगत रक्षा के कार्य में ईश्वर का सहयोगी ठेहराते हैं और उनका नाम रब्बुलनोअ× बतलाते हैं, अर्थात् एक २ प्रकार का रब। इसी प्रकार करोड़ों मुसलमान पीर पूजा, गौसुलआज़म, सखी सरवर, मदीना, नजफ़रज अली, सूर्य्य, कब्र, काबा, अर्थी * (ताबूत) पूजादिमें मग्नहैं और हूर गिलमानके मतवाले हो रहे हैं। या मुहम्मद! या अली! या गौसुलआज़म! या जबरईल! का जप करतेहैं। अतः इन से वह विचारे मूर्ति पूजक किसी प्रकार बुरे नहीं हैं।

वादी—और यह हर दो फ़रीक़ खुदातआला की रहमानियत से भी इन्कारी है। और अपने वेद को रू से यह ऐतक़ाद रखते हैं कि रहमानियत की सिफ़त हरगिज़ खुदातआला में नहीं पाई जाती।

प्रतिवादी—झूठ बकते हो। ईश्वर तुम्हें इन झूठे आक्रमणों का फलदे और इस बुरे मन्तव्य से बचाकर सत्य की ओर प्रेरित करे। (लानतुल्लाहेअलल काज़बीन) परमात्मा दयामय, दयालु, कृपा निधान है और अवश्य है, पर यदि दयालुता से अभिप्राय पक्षपात, अत्याचा[illegible] न्याय का विरोध करना है तो आपको अधिकार है। हमारा ही क्या [illegible] समस्त बुद्धिमानों का इससे इन्कार है।

वादी—जो कुछ दुनियां के लिये खुदा ने बनाया है, यह खुद दुनियां के नेक अमलों की वजह से खुदा को बनाना पड़ा। वरना परमेश्वर खुद अपने इरादे से किसी से नेकी नहीं कर सकता और न कभी की। इसी तरह खुदा तआला को कामिल रहीम नहीं समझते। क्योंकि इन लोगों का एतक़ाद है कि कोई गुनहगार चाहे कैसे ही सच्चे दिल से तौबह करे और चाहे वह सालहा साल तज़र्रो बा ज़ारी और आमाल सालह में मशगूल रहे, खुदा उसके गुनाहों को जो उससे सादिर हो चुके हैं, हरगिज़ नहीं बख़शेगा, जब तक वह कई लाख जन्मों को भुगत कर अपनी सज़ा न पावे।

+ रब्बुलनोअ फ़रिश्ता है, जो प्राणी, अप्राणि की नाना जातियों में से प्रत्येक जाति के पालन व संरक्षण के लिये परमेश्वर ने नियत किया है। (ग़यासु लुग़ात रदीफ़ 'र')

* सूरा बक़र में है, "यह कि आवे तुम्हारे पास ताबूत, बीच उसके तस्कीन परवर्दिगार तुम्हारे से, "तफ़सीर हुसैनी वाला लिखता है, "दानस्त के बियाद वशुमा ताबूते सकीना, व आँ सन्दूक बुवद सूरते। हमा अम्बिया दरआँ मनकूश बुवद।" अज़ निज़्दे परवर्दिगारे शुमा, यानि चीज़े कि तसकीने ख़ातिरे शुमा बदाँ बाशद। (यह कि तुम्हारे पास जो सन्दूक़ आयगा, तुम्हारे रब के पास से उसमें सारे नबियों का चित्र नक्श होगा। वह ऐसी चीज़ होगी, जिससे तुम्हारे मनों को सन्तोष होगा)

प्रतिवादी—शोक! हम मिरज़ा की अशुद्धियों को कहां तक लिखें, धोखा देना इसका आत्मिक उद्देश्य है, और सन्मार्ग से हटाना इसका महान कार्य। व्यभिचारी को नित्य मोक्ष देना अत्याचार का चिन्ह है और सदाचारी के लिये क्रूरता न कि ईश्वरीय न्याय। अतः पापी को दण्ड देना और सदाचारी को उत्तम फल देना, ठीक न्याय है। इससे विमुख होना ईश्वर पर दोष लगाना है। इसलिये जो जैसे कार्य करता है वैसे ही फल पाता है। स्वामी और शासक ईश्वर है कि फल देना जिसके अधिकार में है। प्रत्येक बुद्धिमान इसे मानता है कि जो अपराधी नहीं उसे अवश्य वह स्वतन्त्रता दे और यही ईश्वरीय न्याय है। अत्याचारी तथा व्यभिचारी को ईश्वरीय नियमानुसार नरक (दुःख) में जाना पड़ा और ज्ञानी को स्वर्ग (सुख) में आनन्द पाना। ईश्वर का विशेष इच्छा से किसी से भलाई करना निरर्थक बात है। यदि कोई कारण नहीं तो सर्वथा पक्षपात है और द्वेष, जो ईश्वर पर भारी दोष है।

किसी विशेष कारण से हमें भी इंकार नहीं, यदि न्यायालय पर दोष न आवे। हम दयालु तो मानते हैं, पर वह दया जो न्यायका विरोध तथा उसमें हस्ताक्षेप करे, हमें किसी प्रकार स्वीकार नहीं, और न कोई उसका युक्त प्रमाण मिलता है। अतः यह आद्योपान्त मूर्खता और निरर्थक विचार है, जिस का परिणाम लोकपरलोक में केवल पश्चाताप ही है। तौबा का स्वीकार होना सर्वथा निर्मूल और अनुचित कार्य है। एक मौलवी साहिब कहते हैं।

तौबा हासिले दारद ख़ाक बरसरे ताअ़त।
ईनमाज़ो ईरोज़ा रस्मे कतखुदाईहास्त॥

(तौबा का फल यह है कि भक्ति के सिर पर मिट्टी पड़े)

जितना इस तौबा के सिद्धान्त ने संसार में पाप फैलाया, शायद इतना किसी और सिद्धान्त से प्रगट नहीं हुआ। जिस प्रकार मिश्री २ कहने से मुख मीठा नहीं होता, और पानी पानी कहने से शरीर की शुद्धि नहीं होती, पर नहाने से! इसी प्रकार

तौबा २ अगर विगोई सदसाल। अज़ गुफ्तेन तौबा नशवो फ़ारिग़ुलबाल॥

(यदि तू सौवर्ष तक तौबा २ कहता रहे तो तौबा कहने से तेरा छुटकारा न होगा) वर्षों हो रोने और नेक कामों में लगा रहना अवश्य मुक्ति का कारण है, पर पापों के दूर हो जाने से। अन्यथा जब तक पापों का मेल साथ है, मुक्ति एक स्वप्न मात्र है।

हर आंकि तुख़मे बदी किश्तो चश्मे नेकी दाश्त।
दिमाग़ बेहूदा पुख़्तो ख़याले बातिल बस्त॥
अज़मुकाफ़ाते अमल ग़ाफ़िल मशौ।
गन्दुम अज़ गन्दुम बरोयद जौ ज़े जौ॥

(जिस ने पाप का बीज बोया और पुण्य को आशा रखो उसने निरर्थक मता मताया और झूठी आशा रखी। कर्म के फल को न भूल, गेहूं गेहूं से होता है और

ची ओ से) बाक़ी रहा, कई लाख जूनों का भुगतना, यह प्रत्येक के लिये आवश्यक नहीं, किन्तु प्रत्येक अपने पापों के अनुसार दंड पायेगा, और कर्मफल भुगतने के पश्चात् मनुष्य योनि में आयेगा, और धर्म्म कमायेगा। यही नियम यदि विचार करो, तो न्याय के अनुसार है और तनिक भी अत्याचार अथवा बुद्धि के विपरीत नहीं। हां यही दोष आपके कुरान पर लगता है और उसको पढ़कर सारे भाष्यकारों की जबान बन्द है। अर्थात् कुरान के अनुसार नरक में जाना सब भले बुरों के लिये आवश्यक है और इनके अन्ध विश्वास में ईश्वरीय आज्ञा।

सूरा मरियम में है, "और कोई आदमी नहीं जो नरक में न जावे हो चुका तेरे रब्ब पर अवश्य नियत" अतः आपका यह आक्षेप (कि एक बार भले बुरे सबको नरक में ले जावे) इस कुरानी आयत के विषय में ठीक है, जिसके अक्षर २ से न्याय और दया का नाश और तौबा इस्तग़फ़ार और शिफ़ायत की अस्वीकृति की गन्ध आती है, यही कारण है कि सारे मुहम्मदी विद्वान् और कुरान के भाष्यकार इसके उत्तर में सिर नीचे किये तथा शरमिन्दा हैं। यहां तक कि न जाने का मार्ग, 'न रहने की व्यवस्था' के अनुसार गोरखधन्धे में फंसे हुए हैं। हां योनियों का भोगना अवश्य सत्य है और प्रत्येक बुद्धिमान को इसका मानना अवश्य है। हम और अक्ली दलीलों को छोड़ कर कुरान से ही प्रमाण लाते हैं और इस सिद्धांत की सच्चाई दर्शाते हैं। देखोः—

(१) सूरत बकर 'निश्चय जानते हो तुम उन लोगों को जो हद से निकल गये तुममें से, बीच सबत के, अतः कहा हमने उनको हो जाओ बन्दर दुष्ट।" यह गाथा एक जाति के विषय में है, जो मुहम्मदियों के कथनानुसार दाऊद के समय में एलिया निवासी थे। उन्होंने शनिवार को ईश्वर आज्ञा के विरुद्ध मछली का शिकार किया। इस पाप के कारण खुदा ने उस जाति को बन्दरों की योनि में डाल दिया।

(२) सूरत इनाम "और नहीं कोई चलने वाला बीच ज़मीन के, और न कोई पक्षी कि उड़े साथ दो पक्षों अपने के, पर उम्मतें थी न्याई तुम्हारे, नहीं कम किया हमने बीच किताब के कुछ चीज़, फिर इकट्ठे किये जावेंगे और अपने पालक को।" कुरान का लेखक कहता है कि जितने प्राणधारी, पृथ्वी पर और पृथ्वी के बीच चलने वाले हैं (जैसे कीड़े, मकोड़े, मछली, सर्प आदि और मनुष्य, पशु हिंसक तथा पक्षी आदि) और जितने पक्षी वायु में पक्षों से उड़ने वाले हैं, सब मुसलमानों की भांति गत पैग़म्बरों आदि की उम्मतें थीं, जो पापों के कारण ईश्वरीय न्याय से आवागमन के चक्कर में भिन्न २ योनियों में आगई हैं। इसके पीछे कहता है कि यह सब फिर खुदा की ओर अर्थात् मनुष्य योनि में आकर भक्ति की ओर मिलाये जावेंगे। मैंने कोई बात कुरान में दर्ज करने से नहीं छोड़ी।

(३) सूरत इराफ़. "और जब लिया परवरदिगार तेरे ने, आदम के सन्तान से उनकी कुल से सन्तान उनकी को और साक्षी किया उनको ऊपर उनकी जानों के, क्या नहीं हूं मैं तुम्हारा रब्ब ? कहा उन्हों ने अलबता तू है,

साक्षी हुए हम, ऐसा नहीं कि कहो तुम दिन क़यामत के तहक़ीक थे हम उस से ग़ाफ़िल या कहो सिवाय इसके नहीं कि शिर्क किया था हमारे पूर्वजों ने पहिले इसके और थे हम औलाद पीछे उनके से, क्या पस हलाक़ करता है तू हम को साथ उस चीज़ के कि किया झूठों ने।" तफ़सीर हुसैनी वाला कहता है कि परमेश्वर ने आदम की सन्तान को, उसकी पीठ से पैदा किया, छोटी २ पीली चींटियों की तरह। कई कहते हैं सफेद या लाल और बहुत से यह मानते हैं कि दांई ओर से सफेद और बांई ओर से काली। कई कहते हैं कि आदम की पीठ से एक दम पैदा हुई सन्तान उत्पत्तिकी तरह प्रगट नहीं हुई और उनमें जीवन, बुद्धि तथा वाणी उत्पन्न की, अपना ईश्वरपन उन पर प्रगट किया और उन्होंने स्वीकार करके कहा, हम अपनी प्रतिज्ञाके साक्षी हैं। कहते हैं, जब आदमकी सन्तानने यह कहा, तो परमेश्वर ने फ़रिश्तों को कहा, गवाह रहो। फरिश्तों ने कहा, हम गवाह हैं और मुआरज उल नबुव्वत, फ़ोमदारज उल फ़तवत के पहिले रुकन के तीसरे बाब की दूसरी फ़सल में भी इसका पूरा २ बयान मौजूद है और अधिक यह है कि यह सब प्रतिज्ञायें और साक्षियां हजर उल अस्वद को बीच में रख कर ली गई हैं और वह क़यामत के दिन की गवाही देगा। इस समय उसकी ज़बान बन्द है। अतः पाठक गण! एक तो वो चींटियों के शरीर जो उनको पहिले मिले थे, दूसरे अब मनुष्यों के, तीसरे प्रलय के दिन मिलेंगे। व्याकरण के अनुसार दो से अधिक बहु बचन होता है इससे भी तीन योनियां सिद्ध हैं। एक बार जन्म लेना किसी प्रकार सिद्ध नहीं और इससे मुहम्मदियों का वह आक्षेप भी सर्वथा निर्मूल होगया, जो भ्रान्ति के कारण पेश किया करते हैं कि यदि आवागमन है तो स्मरण क्यों नहीं रहता। जब क़ुरान के अनुसार यह सारा बनी आदम का दंगल सिद्ध है और क़यामत के दिन उस पर पूछा भी जावेगा, पर वह चींटियों की योनियां किसी मुहम्मदि या किसी मनुष्य को याद नहीं हैं और उन के होने से इन्कार करने वाला क़ाफ़र होता है।

(४) सूरा मायदा, "कह क्या समाचार दूं मैं तुमको साथ बुराई के, इस से फल में निकट अल्लाह के, वह लोग कि लानत की खुदाने उन पर और ग़ज़ब किया ऊपर उनके और किये उनमें बन्दर और सूअर और जिन्होंने पूजा तावूत (बुत, दैत्य या शैतान को) यह लोग बहुत बुरे हैं जगह में और बहुत बहके हुए हैं राह सीधी से।

भाष्यकार लिखते हैं कि यह जाति यहूदी थी जिनको पाप के कारण ईश्वर ने बन्दर * और सूअर की योनि में डाल दिया था। क्योंकि क़ुरान का लेखक इस आयत के पहिले लिखता है कि "तुम बहुत दुराचारी हो, अतः दुराचार

---

* मौ० अब्दुलक़ादिर देहली कृत क़ुरान अनुवाद देखो, पृष्ठ १७० सन् १२०५ हिजरी मौर्जन पर लिखा है, मुहम्मद साहिब ने हदीस में फरमाया है कि इस मेरी उम्मत में भी कई बन्दर और सूअर होजायंगे।

का यह दण्ड है कि बन्दरों और सूअरोंकी योनि में जाओगे। दुराचारसे बचो।" तथाच अन्त में यह भी बता दिया कि जो लोग मूर्तिपूजा, जिन भूत पूजा अथवा मन और शैतान की पूजा आदि में लगे हैं, वह उनसे बुरी योनियों में स्थान पावेंगे। क्योंकि वह बहुत ही सन्मार्ग से भटके हुए हैं।

(५) सूरत बक़ा में है, "और हम इस बात से असमर्थ नहीं कि बदल दें तुमको तुम्हारे न्याईं, और पैदा करें तुमको दोबारा, उस स्वरूप और आकृति में, जिसको इस समय तुम नहीं जानते हो और निश्चय जान लिया तुमने पहिला जन्म, तब क्यों शिक्षा ग्रहण नहीं करते।" कुरान का लेखक लिखता है, अर्थात् मुहम्मदियों का खुदा कि मैं इस बात से असमर्थ नहीं हूं अर्थात् मुझमें शक्ति है कि तुम्हें दूसरी योनि में डालूं और ऐसे स्थान, ऐसे रूप तथा ऐसे शरीर में जन्म दूं जिसको तुम नहीं जानते, और जिससे सर्वथा अज्ञानी हो। क्या तुमने ऐ मनुष्यो! पहिला जन्म जान लिया है कि पहिले इससे तुम किस योनि में थे? यदि जान लिया है और बुद्धि रखते हो, तो क्यों शिक्षा ग्रहण नहीं करते हो तुम?

(६) सूरत नसा में है, "जिन्होंने कुफ़र किया हमारी आयतों से, उनको हम आग में डालेंगे, जिस समय जल जावेंगे शरीर उनके, हम उनके बदले में दूसरे शरीर उनको देवेंगे।" कुरान का निर्माता लोगोंको डराता है कि जिन्होंने हमारी आयतें नहीं मानी, वह पापी दुःख में डाले जायेंगे और जलाने वाले कष्टों में पड़ेंगे। वहां पर दुःख भोग २ कर एक शरीर को छोड़ने के पीछे दूसरे शरीर पाते रहेंगे और पुनः २ नाना योनियों में दंड पायेंगे, ताकि चखते रहें दंड।

(७) तौरेत पैदायश, बाब १९, आयत २८, "मगर उसकी जोरू ने पीछे फिर के देखा और वह नमक का खम्भा बन गई।" यह लूत पैग़म्बर की स्त्री के विषय में है, जो पाप के कारण पत्थर की योनि में डाली गई थी। अतः और योनियों के अतिरिक्त पत्थर आदि तक का एक प्रकार की योनि होना सत्य और प्रत्येक मुसलमान से स्वीकार किया जाने के योग्य है और ईश्वरीय वाणी से इन्कार करना किसी प्रकार उचित नहीं।

(८) तफ़सीर अज़ीज़ी में है कि जहादी लोगों के आत्मा बहिश्ती पक्षियों की योनि में होंगे। जैसा कि मुहम्मदसाहिब ने उनको मेराज की अवस्था में जन्नतुलमावा के मर्ग़ज़ार में देखा।

(९) हदीस मशारकुल अन्वार में लिखा है कि हज़रत इब्राहीम का पिता आज़र और तारा कयामत के दिन एक बुरे जानवर के शरीर में डाले जायेंगे।

(१०) हदीस में (देखो हदीस रौज़तुल अहबाब मक्सद १) मुहम्मद साहब फ़रमाते हैं कि मैं पवित्र पुरुषों की पीढ़ियों से पवित्र स्त्रियों की कोख में पड़ता आया हूं। और क़ससल अंबिया व मुआरज़ुल नबुव्वत में है कि हज़रत

मुहम्मद साहब का दिग्विजयी आत्मा मोर के रूप में हज़ार वर्ष तक करुणा के सागर में डूबा रहा। विचार कीजिये।

(११) और तुहफ़ा असनाय अशरिया में मौलवी अब्दुल अज़ीज़ साहब कहते हैं किः—

कई शैय्या फ़िर्के (उमिया, कालिया, मन्सूरिया, हमीरिया, बातनिया आदि) कहते हैं कि शरीर को परलोक में जाना नहीं और न आत्मा के लिये इस जगत के अतिरिक्त ठेहरने को जगह है। किंतु इसी जगत में पुनर्जन्म में आता और एक से दूसरे शरीर में जाता है।

इन कुरानी आयतों, मुहम्मदी हदीसों तथा तफ़सीरों आदि के प्रमाणों से ज्ञात हो सकता है कि कुरान के अनुसार आवागमन अवश्य मानने योग्य है और मुहम्मदियों का उसे मानना उनके रब की शिक्षा और दीन की निशानी है और न मानना मानो कुफ़र और हज़ार फटकार पानी है।

वादी—जब भी किसी ने एक गुनाह किया फिर वहां न तोबा काम आती है और न बन्दगी, न ख़ौफ़े इलाही, न इश्के इलाही। और न कोई अमले सालिहा, गोया वह जीते जी ही मर गया और खुदातआला की रहमत से बकुल्ली ना उम्मीद होगया।

प्रतिवादीः—झूठ बकते हो, ईश्वरीय कोप रूप अग्नि में जलोगे। हां और बातों के अतिरिक्त आपकी तोबा धोखे की टट्टी है। जिस की आड़ में लोगों को सन्मार्ग से हटा रहे हो, और पाप करने से नहीं डरते। ईश्वरीय करुणा से कोई निराश नहीं, पर यह करुणा छल और झूठी स्तुति नहीं और न आपत्ति है। भक्ति, तथा ईश्वर प्रेम और शुभ कर्म का फल मोक्ष है, पर पाप का फल दुख। अतः दुख के भुगतने के पीछे सुख की अवस्था है और यही ईश्वरीय न्याय की व्यवस्था है। मिरज़ा साहिब! रिशवत, सिफ़ारिश व शफ़ाअत की वहां आवश्यकता नहीं और न तोबा व चापलूसी की शिक्षा, छोड़ो इन व्यर्थ की क्षमा प्रार्थनाओं को।

वादी—इसी प्रकार यह लोग न्याय के दिन पर विश्वास नहीं रखते जिसके अनुसार परमेश्वर मालिके यौमिद्दीन कहलाता है और जिन उपरोक्त साधनों से मनुष्य अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है अथवा तीव्र गति को प्राप्त होता है, उस आदर्श फल अथवा दण्ड से इन्कार करते हैं और अन्तिम नजात को केवल कल्पना व भ्रान्ति मात्र समझ रहे हैं।

प्रतिवादी—क़यामत या न्याय का दिन सर्वथा कपोल कल्पित है। ईश्वर हर समय न्यायकारी तथा दयालु है और सदा स्वामी, पालक तथा दाता है। हम आपकी न्याईं वर्तमान में उसे प्रमादी, अत्याचारी, आलसी तथा अज्ञानी नहीं मानते हैं और न इस समय किसी और को न्यायी दयावान व दाता जानते हैं। आप इस मिथ्या विश्वास से बाज़ आइये, और ईश्वर के नित्य पूर्ण गुणों

से युक्त होने पर ईमान लाइये। हूर व ग़िल्मान की कामोत्तेजक आशासे बच कर सत्य और धर्म के ज्ञान पर मन लगाइये, जिससे मोक्षकी प्राप्ति हो। अन्यथा हूरों की आशा पर वस्मा लगाना काम वासना का बढ़ाना है जो सर्वथा कपोल कल्पित भ्रान्ति तथा बन्धन मात्र है। स्वर्ग निवासी मौलाना रूम कहते हैं।

खूब मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के बेहिलाने को ग़ालिब यह ख़याल अच्छा है॥

वादी— प्रत्युत वह नित्य मुक्ति को मानते हो नहीं और उनका कथन है कि मनुष्य को सदा के लिये न यहां आराम है न वहां। साथ ही वह अपने कल्पित विचार में यह लोक भी क़यामत की तरह पूरी दारुलजज़ा (न्यायालय) है। जिसको जगत में बहुत सा धन दिया गया वह उसको किसी पूर्व जन्म के कर्मों के कारण मिला है और उसे अधिकार है कि इसी जगत् में अपने विषयासक्त मन की इच्छाओं को पूरा करने में उस धन को व्यय करे। पर यह स्पष्ट है कि इस लोक में ईश्वर का किसी को इस उद्देश्य से धन देना कि वह उसे अपने ही कर्मों का फल समझ कर खाने पीने तथा सर्व प्रकार के विषय भोग का साधन बनावे। यह ऐसा अनुचित व्यवहार है कि ईश्वर के सम्बन्ध में यह अत्यन्त अपमान सूचक है, मानो हिन्दुओं का परमेश्वर आप ही अपने मनुष्यों को दुष्कर्म तथा अपवित्रता में डालना चाहता है और उनके मन की शुद्धि के स्थान में विषय वासना के द्वार उन पर खोलता है और पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का फल उनको यह देता है कि इस जन्म में सर्व प्रकार के भोग पाकर और विषयासक्त मन के पूरे आधीन बन कर पुनः नीच गति को प्राप्त हो।

प्रति वादी—मिरज़ा साहिब! आप धोखे में फंस कर औरों को मार्गच्युत न कीजिये, कोई आर्य आपके पाखंडजाल में न फंसेगा। परिमित कर्मों और थोड़ी भलाइयों के बदले अपरिमित मोक्ष, अनगिनत सुखों को अनन्त काल तक भोगना असम्भव है। जैसे अल्पाहारसे अल्पकाल तक तृप्ति रहती है, अनन्तकाल तक नहीं। सान्त कर्मों का अनन्त फल कोई विचारशील स्वीकार नहीं करेगा जैसे परिमित वस्तुका प्रभाव परिमित है वैसे ही अल्प जीवके कर्म भी सीमित हैं और सीमित कर्मों का फल असीम नहीं होसकता। अतः अनन्त मुक्ति जीव पा नहीं सकता है। कर्मानुसार ईश्वरीय न्याय से सुख दुख रूप फल पाता रहता है और भले-बुरे कर्म करने में स्वतन्त्र है। कुरान भी इसी वैदिक सिद्धान्त का पोषक है पर मेश्वर जाने सत्य कहने से क्यों डरता है।

सूरत हाद:—"और जो मनुष्य भाग्यवान किये गये हैं बीच स्वर्ग के हैं सदा रहने वाले बीच उसके जब तक कि रहें आसमान और ज़मीन पर जो चाहे पालक तेरा, दान अनन्त करने वाला है।"

और इसी सूरत में है। 'अतः जो मनुष्य भाग्यहीन हुये, बीच आग के हैं। वास्ते उनके बीच उसके चिल्लाना है, आवाज़ धीमी और ज़ोर की से, सदा रहने

वाले बीच उसके जब तक कि रहें आस्मान और ज़मीनपर जो चाहे पालक तेरा, निश्चय पालक तेरा करता है जो चाहता है।

इन आयतों से यदि कोई तनिक भी विचार करे तो स्पष्ट विदित होता है कि लोग उतना समय बहिश्त और दोज़ख़ में रहेंगे कि जब तक, आस्मान और ज़मीन कायम हैं और इस से कोई मुसलमान इन्कारी नहीं कि आस्मान और ज़मीन हमेशा नहीं रहेंगे। अतः अवश्य ही बहिश्त और दोज़ख़,हूर और गिलमान अनित्य हैं, इन अनित्य स्थानों में नित्य मुक्ति किसी प्रकार रह नहीं सकते, अतः अवश्य लोटना होगा। हां हम आस्मान और ज़मीनकी अवधिसे कई सहस्र गुणा समय मोक्ष के लिये मानते हैं,जिस को महाकल्प कहते है। आपने सर्वथा असत्य बोला और अपने कर्म पत्र को व्यर्थ में काला किया हम ऐसा कदापि नहीं मानते न लोक को पूर्ण फल भूमी जानते हैं। हां मुक्ति के अतिरिक्त सब दंड और फल के लिये न्याय भूमी मानते हैं, जो बुद्धिमानों को पूर्णतया स्वीकारहैं और आक्षेप आदि से पार। अधिकारी को उसका भाग देना किसी प्रकार अनुचित और अयुक्त नहीं। हां ईश्वर किसी से बुरे काम नहीं कराता और न शैतान को किसी के भटकाने के लिये नियुक्त करता है. जैसा कुरान में लिखा है:—

सूरा पराफ़ः—"जिसे मार्ग दिखावे अल्लाह, वह मार्ग पाने वाला है और जिसे मार्गच्युत करे वह टोटा पाने वाले हैं।"

सूरा मरियम, "क्या नहीं देखा तू ने कि भेजा हमने शैतान को ऊपर काफ़रों के बहकाते हैं उनको बहकाने पर।"

जो वस्तु जिस की है वह उसे व्यय करने में स्वतन्त्र है, पराधीन व परतन्त्र नहीं। हां प्रत्येक मनुष्यको आवश्यक है कि कुकर्मोंको त्यागदे और धर्ममार्ग में दृढ़ रहे। मनुष्य इसी कर्मकी स्वतन्त्रता से ही तो दंड वा फल पाने का अधिकारी हैं और उसके भोगने में उसे पराधीनता व लाचारी है। अन्यथा यदि आप के कथनानुसार 'माल मुफ्त दिल बेरहम' की लोकोक्ति पर आचरण हो तो प्राप्त धन आदि को बरबाद करे और व्यर्थ खोवे और भविष्यसे हाथ धोवे। हिन्दुओं का परमेश्वर न्यायकारी तथा पात्रको अधिकार दिलाने वाला है। आपके बढ़िया छलिया खुदा की न्याई अत्याचारी अन्यायी, प्रमादी तथा स्वार्थी नहीं, जो अकारण ही लोगों को कुकर्म तथा अपवित्रता का मार्ग दिखाता और दुराचार तथा पापकर्मों का निर्माता है और यह बातें प्रत्येक ईश्वर भक्त की ओर से ईश्वर विषय में सर्वथा अयोग्य और अयुक्त हैं, किसी प्रकार उचित नहीं।

वादी—और प्रगट है कि जिस पुरुष के मन में यह भरा हुआ है कि मेरे हाथ में जो धनधान्य, प्रताप तथा अधिकार है यह मेरे पूर्व कर्मों का फल है, वह क्या कुछ मन के आधीन होकर न करेगा, पर यदि वह यह समझे कि जगत फल भूमी नहीं है किन्तु कार्य क्षेत्र है और जो कुछ मुझ को दिया गया है वह एक प्रकारका इम्तिहान और परीक्षा के तौर पर दिया गयाहै कि मैं उसका प्रयोग कैसे करता हूं, कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो मेरी सम्पत्ति अथवा मेरा अधिकार हो तो

ऐसा समझने से वह अपनी मुक्ति इस में देखता है कि अपनी सारी सम्पत्ति भले अर्थ लगादे। साथ ही वह बहुत धन्यबाद भी देता है कारण कि वही मनुष्य सच्चे हृदय तथा प्रेम से कृतज्ञ होता है, जो समझता है मैंने मुफ्त पाया और बिना किसी अधिकार के पाया है। अधिक क्या आर्य्यों के निकट परमेश्वर न लोकों का स्वामी है, न दयालु, न कृपालु और न अनन्त नित्य वा पूर्ण जज़ा देने की सामर्थ्य है। (पृष्ठ ३१६ तक मा० सं० ११)

प्रतिवादी—किसी मनुष्य का मनजुल होना स्वयं उसको दोषी बनाना है नकि किसी और का। भलाई का फल सुख अवश्य होता है, पर जो बुराई की जावे उसका फल अवश्य दुःख है। परीक्षा अज्ञानी तथा अंजान करते हैं न कि अन्तर्यामी परमेश्वर। जगतका केवल कार्यक्षेत्र होना कोई मूर्खसे मूर्खभी न मानेगा, अन्यथा पाप का फल दुख और पुण्य का फल सुख यहां नहीं होना चाहिये, जो अवश्य होता है। जिस मनुष्य का यह विचार हो कि जो कुछ मुझ को दिया गया है वह न तो मेरा हक़ है और न उसके मिलने का कोई कारण, किन्तु अकारण ही भूल से मुझे दिया है, चाहे मैं हज़ार उत्तम कर्म करूं, चाहे हज़ार पाप करूं, जो कुछ होना है वही होगा मैं असमर्थ हूं।

रोज़ बा जाम् (प्याला) गुज़रती हैं। रात दिलाराम (प्यारी) से गुज़रती है।
आक़िबत (परलोक) को खुदा जाने। अब तो आराम से गुज़रती हैं।

ईश्वर जिसे चाहता है मार्गच्युत करता है, जिसे चाहता है उसे राह दिखाता है, अतः शुभ कर्म व्यर्थ हैं। सादी कहता है 'मैंने सुना कि आशा व भय के दिन बुरों को वह कृपालु, भलों के साथ बख़्श देगा।'

'बाबर मौज उड़ाले कि पुनः जगत् में नहीं आना॥'

ऐसा मनुष्य अवश्य भलाई से दूर भागेगा और अधर्म व अविद्या की गहरी खोह में गिर कर प्राण त्यागेगा। पर इसके विपरीत जो यह जानेगा कि जो कुछ मिला है मेरे ही कर्मों का फल ईश्वर ने अपने न्याय से दिया है, यदि अधिक नेकी करूंगा तो अधिक फल पाऊंगा और यदि कुमार्ग और दुराचार में पग धरूंगा तो इसके बदले में दुख भरूंगा। ऐसा पुरुष अवश्य नेकी करेगा और बुराइयों से परे हटेगा। यही कारण है कि हिन्दु या आर्य्य पुरुष भलाई, दया, प्रेम में अपनी उपमा नहीं रखते और धर्म पथ से पग बाहर नहीं धरते। इसके विपरीत आपके मुसलमान भाई मुफ्त राचि गुफ्त(मुफ्तका क्या कहना) मान कर जो चाहते हैं, करते हैं और ईश्वर का भय मन में नहीं धरते। अफ़गानिस्तान के मुसलमान जो नमाज़, रोज़ा, कुरानाध्ययन तथा मुसलमानी शिक्षा का हिंदुस्तानी मुसलमानों से बहुत अधिक ध्यान रखते हैं उनका कथन है और पक्का वचन कि 'नमाज़ करो और रास्ता मारो तोबा का घर बड़ा है।' इसके अतिरिक्त आपके मुफ़्ती दीन सय्यदुल मुरसलीन, मुहय्युद्दीन औरंगज़ेब

आलमगीर बादशाह गा ी को उसके पूज्य पिता ने जब कि वह इसलाम के प्रेमी पुत्र के हाथों से बन्दी पद में कैद था यह शेअर लिखे थे।

आफ़रीं बाद हिन्दुआं हरबाब। मुरदा रा . दिहन्द दायम आब।
ऐपिसर तो अजब मुसलमानी। ज़िन्दा जानम व आब तरसानी।

(हिन्दुओं को हर तरह शाबाश है जो मृतकों को पानी देते हैं। पुत्र! तू विचित्र मुसलमान है जो मुझ जीते जी को पानी से तरसाता है)

अतः सिद्ध हुआ कि यह लोग परमात्मा को पूर्ण गुणवान् तथा सर्वश्रेष्ट गुणों व भलाइयों का भण्डार मानते हैं, पर मुसलमानों विशेष कर मिरज़ा साहिब के निकट, न ईश्वर जगत का पालक है, न न्यायप्रिय शासक, न वह अनादि है, न अनन्त, न सब पर उसकी दयालुता है, न कृपालुता, न वह सबका अन्न दाता है, न स्वामी है, किंतु (हरे हरे) वह मार्गच्युत करने वाला, बहकाने वाला, शतान भेजने वाला, अत्याचार करने वाला, खियानत पसन्द करने वाला, पापवर्धक, चोरों का प्रेमी, बदमाशों का सहायक है। और सामर्थ्ययुक्त होने के स्थान में, असमर्थ, अन्तर्यामी व ज्ञान स्वरूप होने के स्थान में अज्ञानी और जांच करने वाला है, जब कि जांच अज्ञात विषय को जानना है जो अल्प मनुष्य का काम है न कि सर्वज्ञ ईश्वर का। आप लोगों के मन्तव्य से स्पष्ट प्रगट होता है कि ईश्वर ने धनवानों और ऐश्वर्य वालों को धन व सुख आदि कर्मफल के बिना मुफ्त दिये हैं, अतः प्रत्येक साधारण बुद्धि वाले के निकट भी निम्न लिखित बड़े २ आक्षेप इस पर लागू होते हैं।

(१) प्रथम जब परमेश्वर ने अपने दान का प्रवाह जारी किया तो मनुष्यों के बड़े भाग को क्यों इससे प्यासा अर्थात् वञ्चित रक्खा। जिससे उसकी करुणा सार्वजनिक न रही और न्याय की सामर्थ्य भी निकम्मी होगई। (२)थोड़े मनुष्यों को देना और बहुतों को न देना पक्षपात तथा अन्याय के अतिरिक्त पाप करने का साहस बढ़ाता है और अवश्य ही महापाप करने पर बाधित करता है, जैसा कि सादी कहता है

ख़ुदावन्दे रोज़ी बहक मुश्तग़िल। पराग़िन्दा रोज़ी पराग़िन्दा दिल॥

(रोज़गार वाला भले कामों में लगा रहता है, जिसका रोज़गार डोल रहा हो उसका मन भी डांवाडोल रहता है)

बा गुरसनगी कुव्वते परहेज़ नमानद।
इफ़लास इना अज़ कफ़े तक़वा बिसतानद॥

(भूख से पथ की शक्ति नहीं रहती, दरिद्रता सन्तोष के हाथ से बागडोर लेलेती है) और मुहम्मद साहब ने इसकी पुष्टि की है कि दरिद्रता का दोनों लोकों में मुंह काला है और इसका प्रमाण आजकल भी प्रत्यक्ष है कि लन्डन के बेकारों और निर्धनों ने धनवानों पर लूट मचाई और मक्का के बद्दू सदा हाजियों को लूटते रहते हैं। बुद्धिमान इस पर सहमत हैं कि खाली हाथ से उदारता क्या? निराहार उदर से शक्ति कैसी? बंधे हुये पैर से चलना क्यों कर और भूखे के हाथ से

दान क्यों हो ? अतः इस तर्क विरुद्ध मन्तव्य से इन सब पापों का कारण ईश्वर ठहरता है । नऊज़ । बिल्ला मिनुलश अक़वालहुम व अन्फ़ासहुम, व औहामहुम अर्थात् हे परमेश्वर ऐसे बुरे बचनों, कथनों तथा दुविधाओं से हम को बचा ।

संस्कृत का महत्व

बुराहीनउल अहमदिया पृष्ट ३७१-३८१, भाग ४

वादी:—कई मूर्ख आर्य लोग एक संस्कृत को परमेश्वर की वाणी ठहरा कर अन्य सब भाषाओं को जो सैंकड़ों प्रकार के अद्भुत तथा विचित्र ईश्वरीय चमत्कारों से भरी हुई हैं, मनुष्य कृत बताते हैं ।

प्रतिवादी:—प्रथम यह सिद्ध करता हूं कि मनुष्य की उत्पत्ति आर्यावर्त्त में हुई और यहीं से मानव जाति सारे भूगोल पर फैली है । तफ़सीर हुसैनी (जो कुरान के हाशिये पर देहली में जो अकद मास १२१४ हि० में छपी है) के पृ० १८८ पर सूरा एराफ़ के मीसाक़ के दिन वाली प्रतिज्ञा के विषय में लिखा है ।

'लबाब में वर्णन है कि मीसाक़ दीनापुर में हिंद के देश में आदम के बाहिस्त से निकाले जाने के पश्चात हुआ ।'

और तफ़सीर क़ादरी में ३४६ पृष्ठ में यही लिखा है ।

मुआरजुल नबुव्वत (मदारजुल फ़त्वत, रुक्न १ पृष्ठ २४४ बाब २ में वर्णन है कि आदम हिंद में सरां द्वीप पर्वत में उतरा और वह एक पर्वत है जिसकी चोटी आस्मान पर सब पर्वतों से निकट है । 'अलहदीस फिलअराइस अन हदीक़तु लयमानी' हज़रत मुहम्मद के सम्बन्ध में कहता है, कि 'फ़रमाया जब आदम पृथिवी पर उतरा, उस पर जन्नत के पत्र थे, जिससे लो का नंगेज ढांपता था और जो दुनियां की हवा बदलने से सूख कर ज़मीन के चहुं ओर में बिखर गये । वृक्षों की सुगन्धियां और जन्नत के फलों के सत उस द्वीप में फैल गये और उसका असर क़यामत तक रहेगा । ऊद, संदल, मुश्क, अंबर की सुगंध उन जन्नत के पत्तों की सुगन्धियों से है । आदम और हव्वा की जुदाई के कष्ट के पश्चात् उस महा प्रतापी प्रभु की कृपा से निश्चिन्त रूप से उस भूमि में सुख प्राप्ति हुई । शेष आयु उन्होंने सुख और आनन्द पूर्वक व्यतीत की और ईश्वरीय आज्ञाओं के पाने तथा उस भक्ति व स्तुति के योग्य सच्चे राजा की आज्ञाओं के पालने में ही पूरी सामर्थ्य से यत्न करते थे । उसके बिना सारे भूगोल में कोई और देश न था ।

ऐसा ही रौज़तुल अहबाब आदि में लिखा है कि आदम हिंदुस्तान में रहता था ।

पैदाइश तौरेत, बाब ११ आयत १, २ "और तमाम ज़मीन पर एक ही ज़बान और एक ही बोली थी और जब वे पूर्व से रवाना हुये, तो ऐसा हुआ कि उन्होंने सनआर के देश में एक मैदान पाया और वहाँ रहने लगे। कोई मनुष्य किसी भी मत का अनुयायी क्यों न हो इतने प्रमाण पाकर इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि आदि सृष्टि आर्यावर्त में हुई, और जिस को वह आदम मानते हैं वह भी यहीं हो हुआ। दूर क्यों जायं आदम के नाम निर्धारण पर ही निश्चय हो सकता है।

ग़यासुल्लग़ात रदीफ़ 'बे' में यह शब्द हैं। 'आदम'-यह नाम 'अदीमुल अर्ज़' से बना है अर्थात् पृथ्वी की मिट्टी से पैदा हुआ था। कई यह कहते हैं कि 'उसका वर्ण गेहूँ सा था और इस अवस्था में 'उदमत' से बना है जिसका अर्थ गेहूं है। (वजह १ तफ़सीर जलालीन) और कई अन्वेशकों ने लिखा है कि आदम शब्द को जो मनुष्य का नाम है, अदीम या उदमत से बना हुआ कहना ठीक न होगा। क्योंकि 'आदम' शब्द अजमी भाषा का है और अदीम तथा उदमत अरबी के। अतः अजमी शब्द का अरबी से बनना माना नहीं जा सकता। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध बातें लिख कर अपने कथन का आप ही खंडन किया है। अतः यह व्युत्पत्ति, अर्थ और यह नाम निर्धारण यथार्थ नहीं है। अब हमें खोज करना चाहिये कि आदम के अर्थ क्या हैं। उपरोक्त साक्षियों से तफ़सीर, हदीस और इतिहास का प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि आदम आर्यावर्त्त में हुआ। अतः आर्यावर्त्त की शुद्ध और पवित्र भाषा में, जिसे संस्कृत कहते हैं, इस शब्द के अर्थ हुये, 'आदिमः' अर्थात् जो आदि में उत्पन्न हो उसे आदिम कहते हैं। और आरम्भ को कहते हैं, जिसे यहाँ का बच्चा २ जानता और यह अत्यन्त संगत भी प्रतीत होता है और सर्व प्रकार से सत्य तथा विश्वास के योग्य है। आदम नाम भी संस्कृत का है और संस्कृत सब भाषाओं से प्राचीन और सब की जन्म दात्री है। अतः यही एक शुद्ध और पूर्ण भाषा वेद के इलहाम के द्वारा प्रकाश की गई। अब यदि मूर्ख कहते हो, तो तौरेत वाले को कहो, जो कहता है कि उस समय सारे भूगोल पर एक ही भाषा और एक ही बोली थी या हदीस वाले को कहो। इससे सिद्ध हुआ कि ईसाई और मुहम्मादियों के कथनानुसार भी आदि में एक ही बोली का मिलना पाया जाता है। आदम से लेकर नूह की सन्तान और बाबल का बुर्ज बनने तक जिस समय कि आदम और नूह मर भी चुके थे अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति से मसीह के पूर्व २२४७ वर्ष तक आदम और उस की सन्तान तथा नूह आदि सब संस्कृत बोलते थे, और दूसरी कोई भाषा नाम को भी न थी। तब प्रिय पाठको! इससे विमुख होना परमेश्वर की सत्ता तथा परमेश्वर से बेईमानी है, जो बड़ी मूर्खता तथा अन्तरांध की निशानी है। प्रत्येक बुद्धिमान् का विश्वास है कि परमेश्वर मनुष्यों से सब गुणों में सर्वोपरि है, अतः जिस भाषा में उसका ज्ञान हो वह भी पूर्ण ललित, अलंकृत, निर्भ्रांत और विद्वत्तापूर्ण परिभाषाओं तथा उच्चारण में अत्यन्त शुद्ध हो और

ऐसी सार्थक हो कि कोई वाक्य उसका निरर्थक या रूढ़ी न हो। 'आबे हयात' का लेखक कहता है (आर्य्यों ने इस कारण से कि पूर्वजों की भाषा में प्रक्षेप न हो सके) इसलिये कहा कि हमारी भाषा ईश्वरीय है और अनादि कालसे इसी प्रकार चली आती है, अतः उन्होंने इसका व्याकरण बनाया और नियम बांधे तथा ऐसे जांच कर बांधे कि उनमें रत्तीक मात्र भी अन्तर नहीं आ सकता। उसकी शुद्धता ने किसी दूसरी भाषाके शब्दको अपने पवित्र वस्त्र पर अपवित्र दाग समझा, इस कड़ी नियम बद्धता ने बड़ा लाभ दिया अर्थात् यह कि भाषा सदा अपनी वास्तविक स्थिति और पूर्वजों के स्मारक का निर्मल आदर्श दर्शाती रहेगी।"

जब यवन हिंद पर आक्रमण करने लगे और भाषाओं में परस्पर मिलावट होने लगी, उस समय के सम्बन्ध में आबेहयात में लिखा है। 'इधर संस्कृत तो देववाणी थी, इसमें म्लेच्छों का दख़ल कहां, हां बृज भाषा ने इस बिन बुलाये अतिथि को स्थान दे दिया।'

अस्तु। यह निर्विवाद रुप से सिद्ध हुआ कि आदि में केवल संस्कृत थी और वही तौरेत के कथनानुसार सारे भूगोल की भाषा थी। यहाँ तक कि आदम का नाम भी संस्कृत का है किसी और का नहीं। अतः परमेश्वर से यही एक बोली आदि में मनुष्यों को मिली और वह सब भाषाओं की माता संस्कृत है।

वादी—मानो मनुष्य के अधिकार में भी एक प्रकार का प्रभुत्व है, कि परमेश्वर ने तो केवल एक भाषा का प्रकाश किया पर मनुष्यों ने वह सामर्थ्य दिखलाई कि बीसियों बोलियां उससे बढ़िया आविष्कार कीं।

प्रतिवादी—कुफ़र के शब्द क्या प्रयुक्त करते हो और ईश्वर से क्यों नहीं डरते हो? ईश्वर ने मनुष्य को परतन्त्र और पराधीन पैदा नहीं किया, किंतु स्वतन्त्र और दुनियां में सोचने समझने के लिये। उन्नति करने और लाभ देने व प्राप्त करने के लिये अपने अनादि न्याय के अनुसार पैदा किया और साथ ही उन्नति करने का साधन अर्थात वेद भी दे दिया, जो अत्यावश्यक था, कारण कि उन आदि पुरुषों के लिये (जिनके लिये, कोई पाठशाला वा गुरु न था।) कोई प्रेमी मित्र व सहायक न था, जो उनको बोलना सिखाता और मूकावस्थासे निकाल कर सभ्यता, शिक्षा तथा विद्वत्ता के ऊंचे शिखर पर पहुंचाता। अतः केवल परमात्मा पारब्रह्मपरमेश्वरही था, जिसने अनादि ज्ञान तथा शुद्ध विज्ञानसे सर्वप्रकार की मानवीय कामनाओं तथा शारीरिक और आत्मिक आवश्यकताओं के पूरा करने के लिये ईश्वरीय शब्दों में पूर्ण अपरिवर्तित नित्य ज्ञान प्रदान किया। तत्पश्चात् ज्यों २ मनुष्य बढ़ते गये, पठन पाठन की विधि प्रचलित और उन्नत होती गई। सारे कथन का सार यह है कि अल्प बुद्धि मनुष्य भी जान सकता है कि आदि काल में परमेश्वर की ओर से सत्य ज्ञान का उपदेश होना परमावश्यक एवम् उचित था। इसके पश्चात् मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को उसी इलहाम के द्वारा पूरा कर सकता है और उसी में न्यूनाधिक परिवर्तन आदि करता हुआ

आविष्कारें करके उन्नतियां करता जाता है, पर उस पूर्ण ज्ञान से विमुख होकर कुछ नहीं कर सकता। जो विद्वान् निष्पक्ष भाव से विचारते हैं अथवा जिन्होंने भाषाओं की स्थिति पर विचार किया है, वह प्रायः यही सम्मति देते हैं कि सब भाषायें एक ही भाषा से निकली हैं और उन सबका आदि स्रोत संस्कृत है, जिस से अब तक भी कई भाषायें संस्कृत से निकली प्रतीत होती हैं। कोई भाषा संस्कृत के समान उत्कृष्ट नहीं उससे बढ़िया होने का तो कहना ही क्या है। हां इसके विपरीत सब भाषायें लालित्य, उत्कृष्टता तथा विशालता की दृष्टि से उससे घटिया हैं, पर आप जैसे निपट अनाड़ी संस्कृत के महत्व से सर्वथा अनभिज्ञ हैं और सत्य भी है।

क़द्रे ज़र ज़रगर बिदानद क़द्रे जौहर जौहरी।
शीशागर नादां चि दानद मे फ़रोशद संगहा॥

सोने की परख सुनार को और हीरे की परख जौहरी को, शीशागर मूर्ख तो इसे पत्थर बेचना समझता है।

वादी—भला हम आर्य लोगों से पूछते हैं कि यदि यह सत्य है कि संस्कृत ही परमेश्वर के मुख से निकली है और अन्य भाषायें मनुष्यकृत हैं और परमेश्वर के मुख से दूरस्थ हैं, तो तनिक बतलाओ तो सही कि वह कौन से विशेष महत्व हैं, जो संस्कृत में पाये जाते हैं और अन्य भाषाओं में नहीं, क्योंकि ईश्वरीय भाषा में मनुष्यकृत की अपेक्षा विशेष महत्व होना चाहिये, कारण कि वह परमेश्वर कहलाता ही इसलिये है कि वह अपने गुण कर्म स्वभाव में सर्वोपरि अद्वितीय और अनुपम है।

प्रतिवादी—आप अनुचित वाक्य चातुर्य को उत्तम बताते और निश्चित सिद्धान्तों पर आक्षेप करते समय मुंह बनाते हैं, पर यह बुद्धिमानी को शोभा नहीं देता। परमात्मा असार कामनाओं और मुख, नासिका, जिह्वा, आदि शारीरिक अंगों की अपेक्षा नहीं करता। हां, संस्कृत को उसने अपनी सर्वज्ञता से वेद ज्ञान द्वारा प्रकाशित किया है। संस्कृत को अन्य सब भाषाओं से वही महत्व प्राप्त है, जो माता पिता को सन्तान पर, अध्यापक को शिष्यों पर, गुरुओं को चेलों पर, उपदेशकों को अनुयाइयों पर। हां संस्कृत में अनेक ऐसे विलक्षण गुण हैं जिन से अन्य भाषायें सर्वथा वंचित हैं। हम उन गुणों को भी समालोचकों की साक्षियों से दर्शाते और आप के आक्षेपों की असत्यता बताते हैं।

(१) संस्कृत भाषा को इन लोगों (आर्यों) ने ऐसा शोधा है कि भूगोल की कोई और भाषा इसकी बराबरी नहीं कर सकती। युरोप के बड़े २ विद्वान जिन्होंने उसके अध्ययन में बड़े २ परिश्रम किये हैं उसको सब भाषाओं से विशाल, ललित तथा उत्कृष्ट बताते हैं। (कससुल हिन्द भाग १ सं० १८, पृष्ठ ८)

(२) मख़ज़नुल अलूम, मुद्रित बरेली, भाग ७, सं० ११ में मौ० अलताफ़ हुसैन साहिब हाली मैम्बर देहली सुसाइटी ने संस्कृत के विषय में कहा है।

संस्कृत के विषय में एक बड़े समालोचक का कथन है कि यह भाषा यूनानी भाषा से अधिक उत्कृष्ट, रूमी की अपेक्षा विशाल और दोनों से अधिक ललित तथा विद्वत्ता पूर्ण है। इससे ज्ञात होता है कि हिन्दुओं के पूर्वजों ने इस भाषा को पूर्ण तथा संशोधित करने में जैसा चाहियें, ध्यान दिया है। लिखा है कि इसका व्याकरण ऐसा पूर्ण है कि सारे जगत में मानवीय वाणी के नियम इससे बढ़िया कायम नहीं हो सकते।

यदि कोई और प्रमाण चाहे तो युरोप के समालोचकों की सम्मतियां देखें।

वादी—यदि हम यह कल्पना करलें कि संस्कृत परमेश्वर की वाणी है, जो हिन्दुओं के पूर्वजों पर प्रकाशित हुई और दूसरी भाषायें अन्य मनुष्यों के बापदादों ने आप बनालीं, क्यों कि वह हिन्दुओं के बाप दादा से अधिक समझदार और बुद्धिमान थे, पर क्या हम यह भी मान सकते हैं कि वह हिन्दुओं के परमेश्वर से भी कुछ बढ़ कर थे जिनकी पूर्ण सामर्थ्य ने सैंकड़ों उत्तम २ भाषायें बना कर दिखादीं और परमेश्वर केवल एक ही बोली बना कर रह गया।

प्रतिवादी—आपको आन्तरिक द्वेष के कारण फ़र्ज़ करने की मर्ज़ है, पर सत्य और धर्म से किसी प्रकार की गर्ज़ नहीं। जैसा कि हम पूर्व व्याख्या कर आये हैं कि सब मनुष्यों के आदि पुरुष आर्य्य ही थे और चिरकाल तक सब की भाषा एक ही थी अर्थात् वह अमैथुनी सृष्टि के बालक जो आदिकाल से ईश्वरीय सामर्थ्य रूपी धाई की गोद में पले वह आर्य्य थे और वह देववाणी जो सर्वशक्तिमान ने ईश्वरीय सृष्टि के संचालन के लिये कार्यकर्त्ताओं को बताई वह संस्कृत थी। वह कानून जिस पर आचरण करने व जिसके अनुसार कर्म करने की आज्ञा दी, वेद हैं। उनकी बुद्धिमत्ता तथा विचारशीलता अद्भुत और जगत विख्यात है। उनका एकेश्वरवाद, उनका धर्मभाव, उनकी वीरता तथा धीरता जगत में अनुपम है। जिनको आप उत्तम बता रहे हैं वह भाषायें लज्जा के कारण सिर नहीं निकाल सकती हैं और अपनी कठिनता तथा अपूर्णता को स्वीकार करती हुई उस दयालु माता के चरण चूम रही हैं। अरबी भाषा के कठिन और असंगत होने के विषय में क़ुरान की साक्षी पर्याप्त है (सुरतुल मुज़म्मिल) में है कि ऐ मुहम्मद! हम शीघ्र ही तेरे पास कठिन वाणी नाज़िल करेंगे। प्रमाण के लिये ऐन ग़ैन के उच्चारण के समय ज़बान निकालना, 'ह' (हाय हुत्ती) के समय मुंह फाड़ना और 'क़' (क़ाफ़) के उच्चारण के समय कराहियत जतलाना और मुंह बनाना। स्वय अरबों की ही साक्षी से सिद्ध होता है कि वह कठिन तथा कर्ण कटु भाषा है और ऊंटों के कोलाहल सी ही स्वर है। साक्षी कहता है।

उश्तर वशिअ्रे अरब दर हालतस्तो तरब।

(अरब की कविता में ऊंट ही बड़ा रागी है)

मिरज़ा साहब! पक्षपात के रोग की औषधि सत्य ज्ञान की प्राप्ति है। उसी परमात्मा के पूर्ण ज्ञान वेद भगवान से जगत में ज्ञान का प्रकाश हुआ उसी सच्ची पुस्तक से सब मकतब (पाठशाला) जारी हुये। उसी विज्ञानके दीपकसे अंध-

कार मय स्थान प्रकाशित हुये। उसी पूर्ण सच्चे गुरुके उपकारसे सबने सत्यपथ पाया। उसी एक पूर्ण भाषा से सबको भाषण की सामर्थ्य मिली। उसी के अर्थ विचार ने जगत को भाषा विज्ञान सिखाया। यदि, आप संस्कृत विद्या का तनिक भी ज्ञान रखते, तो ऐसे शब्द तथा कुवचन कदापि मुख से न निकालते।

वादी—जिन लोगों के रोम २ में द्वैतवाद घुसा हुआ है, उन्होंने अपने परमेश्वर को बहुत सी बातों में अपने समान स्थिति वाला पुरुष समझ रक्खा है। क्यों न हो अनादि जो हुए? परमेश्वर के साझी जो ठहरे!

प्रतिवादी—यह भ्रान्ति जो आप का आन्तरिक कुफ़र है मृत्यु पर्य्यन्त आपके अन्दर से न जायगी।

ख़ोय बद दरतबी अते कि निशस्त।
न रवद जुज़ बवक़्ते मर्ग अज़ दस्त॥

(जो बुरी आदत स्वभाव में घर कर जाती है, मृत्यु काल के बिना छूटती नहीं) कोई आर्य्य किसी बात में बराबरी का दावा (हरे हरे) नहीं करता, प्रत्युत दास, उपासक तथा भक्त होने की प्रतिज्ञा हम अवश्य करते हैं। यह प्रतिज्ञा अथवा प्रार्थना हमारी अनादि काल से है। शिर्क तो आप करते हैं, जो उसे मनुष्यों की न्याईं मुख, हस्त, नासिका, श्रोत्र वाला, सिंहासन पर बैठा हुआ, दीपक की न्याईं प्रकाशमान, रूपहरी पिंडली वाला, मकानों में रहने वाला, मित्र व शत्रु वाला, वकालत व सिफ़ारिश वाला, मनुष्य की आकृति वाला, बाला खाने पर बैठने वाला, जुम्मा के दिन मस्जिदों में आने वाला, एक तरफ़ वाला, छल करने वाला और शैतानसे डरने वाला मानते हैं। क्यों न हो अनित्य जो हुये, पाप कर्मों पर बाधित जो हुये, ईश्वर के साझु-कार जो ठेहरे!

वादी—यदि किसी के मन में यह संशय पैदा हो कि परमेश्वर ने एक बोली को क्यों पर्याप्त न समझा, तो यह संशय भी अल्प विचार से दूर हो सकता है। यदि कोई बुद्धिमान भिन्न २ देशों को भिन्न २ आकृति तथा स्वभाव पर दृष्टि डाले तो उस पूर्ण विश्वस्थ रूप से निश्चय होगा कि एकही बोली उन सबकी अवस्था के अनुकूल न थी। फिर मिरजा साहिब ने कुछ पंक्तियों के पश्चात लिखा है कि क्या उचित था कि वह भिन्न २ प्रकृति के मनुष्यों को एकही बोली के तेज पिंजरे में कैद कर देता।

प्रतिवादी—इसको मनघड़न्त तथा निर्मूल बड़बड़ाहट काहम तौरेतसे मुका-बला करते हैं और इस भाषा विभिन्नता के प्रश्न को पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। तौरेत पैदाइश बाब ११ आयत ३से ९ तक "और आपस में कहा आओ हम ईंट बनावें और आग में पकावें। सा उनको पत्थर को जगह ईंट और गच की जगह गारा था। और उन्होंने कहा कि आओ हम अपने वास्ते एक नगर

बनावें और एक बुर्ज जिसकी चोटी आस्मान तक पहुंचे और यहां अपना नाम करें, ऐसा न हो कि तमाम पृथ्वी पर हम बिखर जावें और प्रभु उस नगर और बुर्ज को जिसे बनी इस्राईल बनाते थे देखने उतरा और परमेश्वर ने कहा, देखो मनुष्य एक है और इनकी एक ही बोली है, अब वे यह करने लगे, सो वे जिसका इरादा रखेंगे, उससे न रुकसकेंगे। आओ हम उतरें और उनकी बोली में विरोध डालें, जिस से वे एक दूसरे की बात न समझें, तब परमेश्वर ने उन को वहां से सारे भूगोल पर तित्तर बित्तर कर दिया, सो वे इस नगर के बनाने से रुक गये, इसलिये उसका नाम बाबल हुआ। कारण कि परमेश्वर ने वहां सारे भूगोल की भाषाओं में भेद डाला और वहां से इनको सारी पृथ्वी पर तित्तर बित्तर कर दिया।" इसके विरुद्ध अब कुरान में देखिये। वहां लिखा है।

(सूरतुल रूम) और निशानियों उसकी से हैं पैदा करना आस्मानों का और ज़मीन का और अन्तर बोलियां तुम्हारी का और रङ्गों तुम्हारे का। निश्चय बीच उसके निशानियां हैं वास्ते लोगों के।

मुहम्मदी लोग तौरेत और कुरान दोनों को ईश्वरीय वाणी मानते हैं, पर शोक! कि उन दोनों में इतना विरोध है। तौरेत से ज्ञात होता है कि उस समय लोगों में बड़ा मेल था और अनमेल से बड़ी घृणा थी तथा अत्यन्त प्रेम से परस्पर में निर्वाह करते थे। ईश्वर को उनकी अवस्था पर ईर्षा उत्पन्न हुई और उनका प्रेम आस्मानी पिता को न भाया। द्वेष का झंडा गाड़ा और क्रोध के मारे बुर्ज को गिराया कि ऐक्य न कर सकें। परस्पर के मेल मिलाप से रुक जायं। विपरीत इसके कुरान वर्णन करता है कि आस्मानों और पृथ्वी का पैदा करना, जैसा निशान है वैसा ही बोलियां और रङ्गों की विभिन्नता भी एक निशान है। प्रत्येक बुद्धिमान तथा विद्वान् जानता है कि आस्मान केवल भ्रान्त ज्ञान है और दृष्टि की सीमा का निशान, न कि कोई छत वाला मकान। उनका सात पर विभक्त होना प्रत्येक विचारवान को अस्वीकार है और अविद्याकाल का प्रचार। जिस प्रकार आस्मान कोई वस्तु नहीं, उसी प्रकार उसको निशान समझना भी एक प्रत्यक्ष मिथ्यावाद है। निस्सन्देह पृथ्वी का उत्पन्न करना परमेश्वर का निशान है और उससे कोई सत्यवादी इन्कार नहीं करता। बोलियों का ईश्वर से मानना उसको निश्चय द्वेष प्रिय जानना है तथा मनुष्य को सर्वथा असमर्थ तथा परतन्त्र जानना और यह मन्तव्य उन लोगों का है जो कहते हैं:—

ख़ुद पियम्बर ख़ुदो पियामावर्द।
गुश्त ख़ुद काफ़िरो नमूद इन्कार॥

(आप ही दूत (पैग़म्बर, बना और सदेश लाया। आप ही काफ़िर हुआ और इन्कार किया) यह मन्तव्य अद्वैतवादियों का है, जो हमाओस्त (सब्रह्म) को मानते हैं, हमारा यह मन्तव्य नहीं और हम उनका अधोलिखित युक्तियों से खंडन करते हैं:—

(१) यदि सब बोलियों का आविष्कारक परमेश्वर है, तो सांसियों को बोली, जिससे वो मनुष्यों को कूटते और बध करते हैं, दलालों को बोली जिस से वो ग्राहकों के गले पर छुरी फेरते हैं, सुवर्णकारों को बोली, जिससे वो लोगों का सोना चुराते हैं, वेश्याओं और कंजरों की बोली, जिस से वो पाप कर्मों के लिये दांव पेच करते हैं, परमेश्वर की ओर से माननी पड़ेगी, जिस से परमेश्वर चोरों, लुटेरों, वैश्याओं और कंजरों का पथ प्रदर्शक तथा शिक्षक भी मानना पड़ेगा, जो सर्वथा अयुक्त है।

(२) प्रत्येक बुद्धिमान् विचारशील पर प्रगट है कि परमेश्वर अपने गुण कर्म स्वभाव में अद्वितीय है। अतः जिस को विद्या और शक्ति में सर्वोपरि अनुपम मानते हैं, उसको शक्तियों के प्रकाश को बिना मीन मेख के जानना आवश्यक है। विचारने का स्थान है कि ज्ञान का मान, ज्ञानी की योग्यता तथा महानता का प्रमाण है। अज्ञान तथा अज्ञानी बालक का ज्ञान, उस ज्ञान मय परमेश्वर से कभी तुलना नहीं खा सकता, जो सत्य का आदि स्रोत और विद्या का आदि मूल है अर्थात् जो ज्ञान और विद्या में पूर्ण तथा विवेक सम्बन्धि शक्तियों में महान है, उसके उपकार और ज्ञान की प्रवीणता और युक्ति युक्तता तथा उत्कृष्टता भी सब से अधिक होनी चाहिये। जब यह अत्युत्तम रीति से सिद्ध किया गया है कि आरम्भ में सर्व शक्तिमान को ओर से ज्ञान का प्रकाश वेद द्वारा हुआ और जो भाषा दीगई वो संस्कृत थी। अतः मनुष्य को शक्तियां ईश्वर की ज्ञान शक्तियांसे कदापि बराबरी नहीं करसकती हैं और जो विद्या में उत्तम और निकृष्ट, विद्वान् और मूर्ख, बलवान् और निर्बल, सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का अन्तर होता है, वही अन्तर संस्कृत तथा अन्य भाषाओं तथा वेद और अन्य पुस्तकों में प्रकट है। इस लिये यह दूसरी भाषायें और दूसरी पुस्तकें, उस पूर्ण ज्ञानमय और विद्यामय से नहीं हैं, किन्तु उसी के महान् उपकार से उन्हें भी कुछ भाषा विज्ञान और विद्या प्राप्ति हुई है और उनके आविष्कारक आवश्यकतानुसार मनुष्य हैं न कि वो सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् परमात्मा। अब रहा रंगों का भेद। यह जल, वायु, शीत, उष्ण, देश तथा काल से सम्बन्ध रखता है। हां, इनका आधार सृष्टि नियम पर है। भिन्न २ देशों के आकृति और मनुष्यों के भांति २ के स्वभाव में भिन्न २ देशों के जल, वायु से बहुत से परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं पर आदि काल में ऐसे न थे और न उन दिनों शिक्षा थी। दैव से उन्नति तथा आवश्यकताओं को पूर्ण करने के साधन दिये गए, जिस पर मनुष्यों ने समय २ पर प्रयत्न किया। एक ही भाषा आदि काल में सब की अवस्था के अनुकूल थी और यदि रहती, तो कुछ हर्ज भी नहीं था, पर जाने दो, हम किसी बोली को बुरा भी नहीं कहते। हां, उस पवित्र, उत्कृष्ट तथा शुद्ध भाषा के समक्ष में मान के योग्य नहीं जानते और इस पर प्रत्येक निष्पक्ष विद्वान् सहमत हो सकता है।

मिरज़ा साहिब! संस्कृत भाषा एक तंग पिंजरा नहीं है, किन्तु एक विस्तृत द्वीप और विशाल, महान तथा गम्भीर सागर है, जिस में रहने, सहने और तैरने

की किसी प्रकार रोक टोक नहीं। तंग पिंजरा तो अरबी भाषा है, जिस में अत्याचार रूपी तलवार की चोट से निर्बल मुर्गियों को बध करने के भयसे बन्द किया गया है। अब उनकी सन्तानें 'अल आदत तबियत सानि' (अभ्यास स्वभाव हो जाता है) के बन्धन में आकर, उसको (मिरज़ा साहिब की न्याई) अपनी भाषा या अपना प्यारा वतन या इलामी जान रही हैं। प्रायः विश्वास है कि जिस दिन सत्यासत्य का निर्णय होगा, पक्षपात को तुच्छ जान कर, सत्य विद्या का ग्रहण करेंगे और मनोवाञ्छित फलपायेंगे। परमेश्वर करेकि वो दिन शीघ्र आवे।

क़ुरान की शिक्षा का फ़ोटोग्राफ़

हमारे मिरज़ा साहिब बहुधा गर्व से कहा करते हैं कि कुरान में यथार्थ और तत्व विज्ञान बहुत है और किसी बात से वो शून्य नहीं और कोई शिक्षा उस में अधूरी नहीं, पर जब कभी बतलाने का अवसर हुआ, तब अपशब्दों और भला बुरा कहने के अतिरिक्त कोई उत्तर न देसके। हम दुर्वचनों को बुरा नहीं मानते। कारण कि यही इसलामी पक्षपात और सचाई है और बुद्धि मानो ने कहा भीहै कि बरतन से वही टपकता है, जो उस में होता है। पर हम इस पुस्तक में आवश्यक मानते हैं कि कुरान को वास्तविक स्थिति का पूरा २ वर्णन करें। अतः हम सब से पहिले सारे कुरान को तैय्यार करते हैं और उसको सत्यासत्य की परीक्षा तथा प्रकाशण के लिये पाठकों के सम्मुख धरते हैं—

संख्या	सूरत	लेख का सार और प्रसिद्ध गाथा अथवा कोई विशेष स्मृति।
१	फ़ाताः	आरम्भ में प्रार्थना है कि हे परमेश्वर! मुझे कुमार्ग से बचा और गत भ्रष्ट पुरुषों के पथ पर चला।
२	बकर	आदम व हव्वा व शैतान व खुदा व फ़रिश्तों का वादा-विवाद और झगड़ा। सामरी की गोसाला प्रस्ती और मूसा का हाल। प्रथम बेतुल मुकद्दस की ओर सिज़दा करने की आज्ञा, फिर मक्के की ओर।
३	आल उमरान	ईसा और आल उमरान और इबराहीम के सारे किस्से तथा हराम व हलाल का बयान और ईसा का हराम वस्तुओं को हलाल कराना।
४	नसा	मुसलमानों के वास्ते चार स्त्रियों से निकाह करने की आज्ञा और लौंडियों केसाथ भी इनके अतिरिक्त और एक विवाहिता स्त्री को बदलना चाहे तो बदला सकता है।
५	मायदा	प्राणियों के हराम व हलाल की व्याख्या और मूसा का बयान और बनी इसराईल के बचनां और प्रतिज्ञाओं की पुनरुक्ति,

		तौरेत व इंजील की तसदीक और ईसा का हाल।
६	इनआम	इस में भी हराम व हलाल और इबराहीम का नक्षत्र, चान्द तथा सूर्य्य को ईश्वर मानने का किस्सा। तौरेत के विपरीत कुरान का मक्का निवासियों को डराने के लिये उतरना।
७	इऽराफ़	इस में पुनः शैतान, आदम और खुदा का वादाविवाद है और काफ़रों के लिये आसमानों के द्वारों का न खोलना और खुदा का आसमान व ज़मीन बना कर अर्श पर बैठ रहना।
८	अनफ़ाल*	लूट के माल को बांटने के नियम कि इतना भाग खुदा को दो और इतना रसूल को, लूट मार को शिक्षा, खुदा का मकर करना खुदा का मुसलमानों को काफ़रों के मुकाबले पर जाने के लिये घटाना कि अब पूर्व को न्याई दसगुणा अधिक काफ़रों से युद्ध न करो किन्तु अब १०० मुसलमान दोसौ से लड़ो। शोक!
९	तोबा*	काफ़रों के डराने और धमकाने का बयान, मुसलमानों को युद्ध से न भागने का साहस, तोबा का बयान, मार्शलला की आज्ञा, हराम, हलाल और काफ़रों से बुरा व्यवहार करने का बयान।
१०	यूनस	कुछ शिक्षा, यूनस पैग़म्बर का मछली के पेटमें जाने का किस्सा, खुदाका ज़मीन व आसमान बना कर, अर्श पर जाकर तदबीर करना, खुदा का मकर करना और मूसा तथा फिरऔन और हारू का किस्सा।
११	हूद	ईश्वर की आत्मा का पानी पर तैरना, नूह की कहानी, नाव का बनाना, तनूर से तूफ़ान का पानी उबलना, समूद व सालह की कथायें और शईब तथा लूत का किस्सा।
१२	यूसुफ़	संक्षिप्त रूप से यूसुफ़, जुलेख़ां और मिश्र के अज़ीज़ की कहानी और उनके मोह तथा प्रेम का वर्णन, व्यभिचार की इच्छा और कैद होने का वर्णन। इसी में यह भी वर्णित है कि अपने छोटे भाई पर चोरी का दोष लगाया, झूठ बोलने का बयान।
१३	राद	मुहम्मदियों का खुदा इस सूरत में राद (कड़क) को एक फ़रिश्ता बयान करता है कि खुदा की तसबीह पढ़ता है।
१४	इबराहीम	इसमें इबराहीम पैग़म्बर का तथा अन्य पैग़म्बरों का भी संक्षिप्त वृत्तान्त है और नमरूद का बुद्धि के विरुद्ध किस्सा और आसमान पर जाना।
१५	हजर	एक जाति की कथा है, जिस पर मुहम्मदियों के खुदा ने पत्थरों की वर्षा की थी और टूटने वाले सितारों के गोले मारना,

* हजारों योग्य मौलवी इन दोनों सूरतों को एक ही जानते हैं और हजारों इस के विरुद्ध कहते हैं और मुहम्मद के साथियों का भी इस में मत भेद था।

	"	फ़रिश्तों व शैतानों पर जो खुदा की बातें सुनने ऊपर जाते हैं कि ऊपर न आवें।
१६	नहल	कुछ शिक्षा और कुछ हराम व हलाल का ब्यौरा, पृथिवी के हिलने का बयान, खुदा का पहाड़ों को मेखों की तरह ठोकना कि कहीं हिल न जावे और पृथिवी का निश्चल होना।
१७	बनी इसराईल	'बनी इसराईल सम्बन्धि घटनाओं का बयान, दाऊद बादशाह का बयान, मुहम्मद साहिब को मक्का से बैतुल मुकद्दस तक एक रात में खुदा का लेजाना। भाष्यकारों का परस्पर में बड़ा मत-भेद और एक दूसरे पर कुफ़र के फ़तवे देना।
१८	कहफ़	असहाब कहफ़ का ज़िक्र, कुत्ते का बयान जो कई हज़ार वर्ष वरन् क़यामत तक सो रहे हैं और नहीं जागते, सूर्य्य भी वहां से चाल बदल जाता है, सिकन्दर का किस्सा, लोहे और रूई की दीवार बनाना, याजूज माजूजकी तर्क विरुद्ध कहानी और सिकन्दर का सारे जगत को पराजित करना।
१९	मरियम	ईसा और मरियम का वर्णन, फ़रिश्ते का उतरना और उसके गर्भवती होने का वर्णन।
२०	तवा	तवा नाम एक मैदान का है, मूसा की कहानी, तवा के जंगल का बयान, अग्नि देवता की पूजा, खुदा का अग्नि में प्रविष्ट होना और आग्नेय ईश्वर की पूजा।
२१	अम्बिया	दाऊद, सुलेमान, ज़करिया, येहया, याकूब, मूसा, इबराहीम, हारूं, लूत और इसहाक़ के संक्षिप्त वृत्तान्त और खुदा का आसमानों से उतर कर ज़मीन पर आना।
२२	हज	नूह, आद, समूद आदि जातियों का वर्णन जिनको खुदा ने ग़रक किया और हज की विधि अर्थात् तीर्थ यात्रा की व्याख्या और बहिश्त के वस्त्रों तथा जेवरों का वर्णन।
२३	मोमिनून	नूह की बाढ़ का वर्णन, मुसलमानों को ज़कात आदि के विषय में शिक्षा और खुदा का अपनी पुस्तक में मनुष्यों का हिसाब रखना।
२४	नूर	व्यभिचार की बाबत दंड आदि, बीबी आयशा की तोहमत (व्यभिचार) का किस्सा, इलहाम का उतरना, चार साक्षियों का मांगना, खुदा का नूर ऐसा है कि जैसे ताक में दीपक हो, कैसी युक्त उपमा है।
२५	फ़ुरक़ान	हज़रत मूसा और हज़रत नूह नबियों के किस्से, कुछ कुरान की प्रशंसा और काफ़रों का प्रश्न कि क्यों कुरान इकट्ठा न उतारा और खुदा का केवल यही अयुक्त उत्तर कि हम तेरे दिल को साबित करें थम २ कर। यह विचारने की बात है, कोई भाष्यकार इसका युक्त उत्तर नहीं देता है।

२६	शुअरा	हज़रत मूसा और फ़िरऔन का वर्णन और कुछ कवियों के विषय में बात चीत तथा परमेश्वर का एक पहाड़ को उठा कर मनुष्यों के लिये सायबान बनाना।
२७	नमल	हज़रत मूसा, सुलेमान और दाऊद के किस्से और हज़रत सुलेमान और सबाऽ की स्त्री मलका बलक़ीस के इश्क की कहानी तथा सुलेमान का पत्र सबा की स्त्री के नाम और चींटियों की घटनायें।
२८	क़सस	मूसा और फ़िरऔन के किस्सों का सार व संग्रह है।
२९	अनकबूत	मकड़ी का किस्सा, कुछ शिक्षा, करामात से इन्कार और बहिश्त का वर्णन।
३०	रोम	रोम जाति के पराजित होने का किस्सा, खुदा का मनुष्यों के मनों पर सच की ओर से फिरने के वास्ते मोहर लगाना और इबराहीम के अनुकरण करने की आज्ञा।
३१	लुक़मान	हकीम लुक़मान का किस्सा, आसमानों को परमेश्वर का बिना खम्भों के खड़ा करना और लुक़मान का अपने पुत्र को उपदेश।
३२	सिजदा	कुछ सिजदे का वर्णन और शेष अज़ाब व स्वाब और बहिश्त व दोज़ख के हाल, खुदा आसमान से उतर कर ज़मीन पर काम करता है और फिर चढ़ जाता है और भूल जाना खुदा का।
३३	अख़राब	उन औरतों का वर्णन जो अपना सतीत्व पैग़म्बर के अर्पण करदें, उसकी व्याख्या और काफ़रों की संधि का वर्णन और नूह, इबराहीम आदि के किस्से।
३४	सबा	ईश्वर का अपनी पाकेट बुक में मनुष्यों का हिसाब लिखना और पहाड़ों का दाऊद के साथ बातें करना और गीत गाना।
३५	फ़ातिर	कुछ उपदेश, फ़रिश्तों के दो २, तीन २, चार २ परों का वर्णन और सूर्य्य तथा चांद का दिन रात में चलने का हिसाब।
३६	यासीन	इसराफ़ील फ़रिश्ते का वर्णन, क़यामत के दिन उसका नरसिंहा फूकने का हाल, खुदा का क़ुरान की क़सम खाना और बहिश्त, दोज़ख का बयान।
३७	सफ़ाऽत	खुदा का फ़रिश्तों की कसम खाना, लोगों का क़ुरान को ईश्वरीय वाणी न मानना, अलियास पैग़म्बर का किस्सा, शैतान का लोहेमाफ़ूज़ की बातों के देखने के लिये जाना और खुदा का टूटे हुए सितारे मारना।
३८	स्वाद	खुदा का क़ुरान की कसम खाना, दाऊद और सुलेमान का वर्णन, आदम और शैतान की कथा और खुदा का दोनों हाथों से आदम का बनाना।
३९	ज़ुमर	जो क़ुरान को न माने और दलील मांगे उसके वास्ते दंड का वर्णन अर्थात्—गाली गलौच और खुदा का जिसको चाहना

	"	गुमराह करना और जिसको चाहना राह दिखलाना और बहिश्त की भूमि का वर्णन।
४०	मोमन	मुसलमानों की बाबत दोज़ख़ से भय, ख़ुदा के सिंहासन को फ़रिश्तों का उठाना और ख़ुदा का शीघ्र हिसाब करना।
४१	हमूल सिजदा	ख़ुदा का क़ुरान अरबी में भेजना वास्ते उनके जो अरबी जानते हैं, समूद जाति का वर्णन, मूसा और मुहम्मद के उपदेश, ख़ुदा के पास कान, हाथ और आंखों का गवाही देना।
४२	शोरा	आसमानों के पलटने का काल समीप है, क़ुरान अरबी का आना, इसलिये है कि तू ऐ मुहम्मद! मक्का वालों को डरावे, और मक्का के निकटवर्त्तियों को क़यामत के भय से ख़ुदा का पर्दे के पीछे बातें करना, मुहम्मद साहिब का ४० वर्ष तक ईमान का न जानना कि क्या है।
४३	ज़ख़रफ़	क़ुरान अरबी में इस वास्ते है कि जिनकी बोली है वे समझें और मूसा और ईसा के क़िस्सों का सार और ख़ुदा का लोगों के साथ एक एक शैतान चमेटना कि भटक जावें।
४४	दुख़ान	क़यामत के दिन आसमान धूआं बन जायगा, और बनीइसराईल और फ़िरऔन का ज़िक्र।
४५	जाशिया	क़यामत के दिन की कार्य्यवाही का वर्णन, कर्मपत्रों का निरीक्षण दोनों पक्षों का पेश होना, बनीइसराईल का किस्सा संकेत मात्र और दोज़ख़ का भय।
४६	अहक़ाफ़	आद जाति, कुछ माता पिता सम्बन्धि शिक्षा, अरब के डाकुओं, अत्याचारियों के लिये अरबी क़ुरान का उतरना।
४७	मुहम्मद	बहिश्त का चित्र और हुलिया, मुहम्मद साहिब का हाल, उन की बाबत (मुहम्मदियों के कथनानुसार) परमेश्वर का साक्षी देना।
४८	फ़तह	मुहम्मद साहिब को गुनहगारी का वर्णन, युद्ध की विजय, लूट के माल की बांट, अन्य जातियों के साथ क्रूरता, स्वप्न का जो ख़ुदा ने मुहम्मद को बताया था, झूंठा होना और आयत उतरना।
४९	हिजरात	मुहम्मद साहिब की इज़्ज़त करना और इसी प्रकार प्रतिष्ठित पुरुषों का वर्णन, जहाद करने वालों की प्रशंसा और बधाई।
५०	क़ाफ़	ख़ुदा क़ुरान की कसम खाता है, मुहम्मद की पैग़म्बरी की कसम खाता है कि मैंने जगत् को ६ दिन में उत्पन्न किया है और ख़ुदा ने स्मृति के लिये क़िताब रखी हुई है कि भूल न जावे।

५१	ज़ारियात	ख़ुदा हवाओं की कसम खाता है और रास्ते वाले आसमान की सौगन्द खाता है, इबराहीम के मिहमानों का विवर्ण और मूसा की कथा।
५२	तूर	ख़ुदा तूर पर्वत, कुरान, मक्का और दरिया की सौगन्द खाता है और बहिश्त का वर्णन।
५३	नजम	मुहम्मद साहिब का बुराक़ पर चढ़ कर आसमानों पर जाना, ख़ुदा का उस पर गवाही देना कि किसी प्रकार लोग उस पर विश्वास करें, मूसा समूद और आद के किस्से।
५४	क़मर	चांद के दो टुकड़े होने का धोखा, हज़रत लूत अलैहिस्सलाम की स्त्री की कथा।
५५	रहमान	जिन्नों का वर्णन, बहिश्त के दो बागों का वर्णन, याकूत और मिरजान की हूरों की मनोरञ्जक और मन मोहिनी घटना।
५६	वाक़आ	बहिश्त की नहरों, हूरों और मकानों का वर्णन असली कुरान का किसी और पुस्तक में छिपा होना, ज़मीन और पहाड़ों को हिलाया और उडाया जाना।
५७	हदीद	नूह और इबराहीम के किस्से, बहिश्त और दोज़ख़ में काफ़रों और मुहम्मदियों के पद विभाग।
५८	मुजादिला	हज़रत मुहम्मद साहिब और एक स्त्री की परस्पर की शिकायतें।
५९	हशर	क़यामत के भय से डराना और मुसलमानों को युद्ध के वास्ते साहस देना।
६०	मुम्तहिना	कुछ मुसलमान दीन इसलाम से फिर कर काफ़रों (अपने असली मत) की ओर चले गये थे, उनको डराना और बाकियों को आज़माना।
६१	सफ़	ईसा और मूसा की घटनाओं को उदाहरणार्थ वर्णन कर एक पंक्ति में मेल करना कि फूट न होजाय।
६२	जुमा	यहूदियों से मौत मांगने का किस्सा, उम्मियों के पास उम्मी पैग़म्बर का आना और जुमे की बढ़ाई।
६३	मुनाफ़कून	विपक्षी लोगों के विषय में शिक्षा और प्रलोभन।
६४	तग़ाबुन	क़यामत के दिन का बयान, बहिश्त का प्रलोभन, कुछ उपदेश, ख़ुदा का मनुष्यों से मुहम्मद के द्वारा ऋण मांगना और दोगुणा देने का वचन।
६५	तलाक़	स्त्रियों के विषय में तलाक़ देने का बयान, सात ज़मीनों, सात आसमानों का पैदा करना और बहिश्त का वर्णन।
६६	तहरीम	ख़ास मुहम्मद साहिब को, स्त्रियों के सम्बन्ध में आज्ञायें और प्रबन्ध, हज़रत ने मधु अपने पर हराम कर रक्खी थी (जब न रह सके) यह आयत पढ़ी 'कि क्यों हराम करता है जो अल्लाह ने हलाल किया'।

६७	मुल्क़	सात आसमान, जहन्नुम और चरागों का बयान, कुछ शिक्षा, खुदा का आसमानों में होना और शैतानों को टूटे हुए सितारे मारना।
६८	क़लम	खुदा क़लम को सौगन्द खाता है, एक बाग वाले का किस्सा, खुदा का क़यामत के दिन अपनी पिंडली दिखलाना और छल करना।
६९	हाक़ा	खुदा का सिंहासन फ़रिश्तों ने उठाया है, उस पर खुदा विराजमान है, क़यामत का बयान और दोज़ख का भय।
७०	मुआरिज	क़यामत का बयान, उसकी अवधि कि पचास सहस्र वर्ष रहेगी, खुदा का ज़ीना लगाना और फ़रिश्तों का ऊपर से नीचे उतरना।
७१	नूह	नूह का क़िस्सा।
७२	जिन	मुहम्मद साहिब का कुरान पढ़ना, जिन्नों,भूतों का मोहित होना और मुसलमान हो जाना, खुदा का कुरान की आयतों को वही के साथ चौकीदारों के पहरे में भेजना।
७३	मुज़म्मिल	कुरान के पढ़ने के उपदेश, दोज़ख और क़यामत का बयान फिरऔन के वर्णन के साथ।
७४	मुदस्सर	उन्नीस फ़रिश्तों का वर्णन जो दोज़ख के मुअक्किल हैं।
७५	क़यामत	खुदा क़यामत की कसम खाता है।
७६	दहर	काल और एक मनुष्य की अवस्था का वर्णन। कुरानाध्ययन बहिश्त का बयान।
७७	मुर्सलात	खुदा उन हवाओं की सौगन्द खाता है जो भेजी गई हैं।
७८	अम्बिया	इसमें भी ज़मीन और आस्मान का वर्णन करके, भूगर्भ विद्या से वर्णन किया जाता है कि पृथ्वी बिछौना है और पहाड़ मेखें हैं और सात आसमान और उनके द्वारों का वर्णन है।
७९	तनज़ुअ़त	फ़रिश्तों के परस्पर के झगड़े और कलह का वर्णन, मूसा और जंगल तावा का बयान।
८०	अबस	एक अन्धा जो मुहम्मद साहिब के पास आया और उन्होंने उसे घृणित समझा, उसका किस्सा।
८१	तकवीर	यहां पर खुदा कसमों का तूफ़ान उठाता है।
८२	इनफ़तार	आसमान का फटना, क़यामत का प्रगट होना, करामया, कातेबीन दो फ़रिश्तों का नियत होना; मनुष्यों के कर्म लिखने के लिये।
८३	ततफ़ीफ़	कम तोल के कर्मों वाले मनुष्योंका वर्णन, बहिश्त में शराब पीने का सुसमाचार और बाग़ का बयान।
८४	अशक़ाफ़	इसमें भी आसमान के फटने और कसमों का ज़ोर शोर से बयान है।

८५	बुरूज	खुदा आसमान के बुर्जों की कसम खाता है।
८६	तारक़	जमीन की कसम, मनुष्य की उत्पत्ति पिता की पीठ से वर्णन की है और खुदा का मकर करना।
८७	आला	पुराने पुस्तकों का प्रमाण देकर खुदा की महिमा बयान की है।
८८	ग़ायशा	क़यामत का बयान और बहिश्त का प्रलोभन।
८९	फ़जर	खुदा फजर के समय की सौगन्द खाता है और युग्म निग्म की भी। खुदा का आना फरिश्तों की पंक्ति बांध कर, फिरऔन और समूद का क़िस्सा।
९०	बलद	खुदा मक्के की क़सम खाता है।
९१	शमस	खुदा सूर्य, चांद और दिन की कसम खाता है।
९२	लैल	खुदा रात की कसम खाता है।
९३	ज़ुहा	खुदा रोटी के समय की क़सम खाता है।
९४	नशराह	खुदा मुहम्मद साहिब को धैर्य देता है कि घबरावे नहीं।
९५	वत्तीन	खुदा अंजीर और ज़ेतून के वृक्ष और तूर व सेना पर्वतों की क़समें खाता है।
९६	अलक़	खुदा कहता है मनुष्य की उत्पत्ति रुधिर से है और बहुधा मुसलमानों का विश्वास है कि यह सूरत सबसे पूर्व खुदा ने आसमान से उतारी है।
९७	क़द्र	क़द्र की रात का बयान है कि इस रात को फ़रिश्ते और रूह उतरते हैं।
९८	वैय्यना	क़ुरान, नमाज़, ज़कात का बयान।
९९	ज़ुलज़ाल	भूकम्प का बयान और पृथ्वी का बातें करना।
१००	अदियात	खुदा घोड़ों की कसम खाता है।
१०१	क़ारा	क़यामत का बयान।
१०२	तकासर	लोभ के विषय में उपदेश है।
१०३	असर	खुदा काल की कसम उठाता है।
१०४	हुम्ज़ा	दोषारोपण की मनाही ताकि कोई आक्षेप न करे।
१०५	फ़ील	हाथियों और अबाबीलों का क़िस्सा।
१०६	क़ुरैश	ख़ास कुरैश जाति का बयान जिस में से मुहम्मद साहिब पैदा हुए थे।
१०७	माऊन	बरतने की वस्तुओं के प्रयोग का बयान।
१०८	कौसर	हौज़ कौसर की बाबत है। (यह हौज़ कहते हैं कि आसमानों के ऊपर जन्नत में हैं, इस हौज़ पर बैठ कर मुहम्मद साहिब शहीदों को पानी पिलाते हैं।

१०७ काफ़रून काफ़रों से प्रश्नोत्तर जो उनकी पैग़म्बरी पर ईमान न लाये ।
११० नुसर मुसलमानों को (दिल बढ़ाने के वास्ते) विजय का बयान।
१११ लहब अबिलहब नामक मनुष्य (जो मुहम्मद साहिब का कट्टर विरोधी था) की बाबत खुदा और मुहम्मद साहिब का शाप और गालियाँ देना।
११२ इख़लास परमेश्वर की स्तुति है ।
११३ फ़लक़ प्रार्थना है, शरारत से पनाह मांगी गई है।
११४ अलनास अन्तिम प्रार्थना और शैतान से बचने के वास्ते खुदा से पनाह मांगी गई है।

कुरान की शिक्षा का सार

नं०	सूरतों की संख्या	विषयों व कहानियों का प्रकार	आयतों की संख्या
१	४०	भूत पैग़म्बरों और बादशाहों की कहानियां।	१०.०
२	१६	लूट खसोट, डाका मारना, लड़ाई व जहाद व पशु हत्या आदि।	११५०
३	२०	शापों, दोज़ख़, क़यामत और काबा पूजा का वर्णन।	२०६६
४	१५	कस्मों और सौगन्दों का वर्णन जो मुसलमानों का खुदा बार २ खाता है।	२००
५	१४	स्त्रियों और हज़रत मुहम्मद साहिब की घरेलू बातों का वर्णन।	५००
६	५	बहिश्त, हूरों, गिलमानों, नहरों और मकानों की प्रतिज्ञायें जो लड़ाकों और जहादी मोमिनों से की गई हैं।	१६५०
७	४*	दुआ (प्रार्थना) और ईश्वर भक्ति के विषय में।	१००
		योग	६६६६

*(ग्याबुल लुगात रदीफ़ 'काफ') कुरान मुहम्मदियों के मन्तव्य में ईश्वरीय वाणी है, उसके ११४ सूरत ६६६६ आयतें और ५४० रकू और इन आयतों में जार उल्ला ज़म ख़मरी साहिब कशाफ़ के कथनानुसार १०००आयतों में किस्से हैं, १००० में वायदे का दौर, १००० में वईद का दौर, १००० में मन्तव्य, १००० में अकर्तव्य, ५०० में हराम हलाल, १०० में प्रार्थना और ६६ में नासिख मनसूख़। कुरान शब्द धातु है जिसके अर्थ अध्ययन करना है और यह प्रयुक्त हुआ है ।

इस फोटोग्राफ को जो न्याय की दृष्टि से अध्ययन करेंगे, निस्सन्देह वही इस की वास्तविकता को समझेंगे अब थोड़ा सा उसकी कसमों की बौछाड़ का भी प्रकाश करता हूं कि उन से किस क़दर सभ्यता प्रगट हो रही है। देखो निम्न लिखित

क़ुरानी आयतों का अनुवाद शाहवली उल्लाह कृत

सूरत उल फ़जर—सौगन्द है मुझ को प्रातः काल और दस प्रकार की रातों की और सौगन्द है मुझ को युग्म और निग्मकी और सौगन्द है मुझ को रात को जब चले, आया इस मुकद्दमे में साक्षी प्रामाणिक है बुद्धिमान को।

सूरत उल बल्द—मैं सौगन्द खाता हूं शहर मक्का की और तू हलाल हो जावेगा इस शहर में और क़सम खाता हूं मैं जनने वाली की और जो जना है उस की। निश्चय मैंने ही मनुष्य को उत्पन्न किया है कष्ट में।

सूरत उल शमस—सौगन्द है सूर्य की और उसके प्रकाश की। सौगन्द है उस चन्द्रमा की जो सूर्य के पश्चात उदय होता है। सौगन्द है उस दिन की जो सूर्य को प्रगट करता है। सौगन्द है रात की जो सूर्य को छुपाती है। सौगन्द है आसमान और उसके बनाने वाले की। सौगन्द है पृथ्वी की और खुदा की उस की दुरुस्ती करने की। सौगन्द मनुष्य के मन की और खुदा के सुधारने की और सौगन्द उसके मन मे सन्तोष और पाप डालने की।

सूरत उल्लैल—सौगन्द है रात की जो छुपाती है और सौगन्द दिन की जो प्रगट करता है और खुदा की जिसने नर मादा पैदा किया, इस कारणसे कि तुम्हारे कर्म्म में भेद है।

सूरत उलज़ुहा—सौगन्द रोटी के खाने के समय की और सौगन्द है रात की जो छुपाती है। तुझ को न छोड़ा तेरे पालन हार ने और तेरा परलोक निश्चय लोक से बेहतर होगा और अवश्य धन देवेगा। तुझ को अनाथ देखा जगह दी और भटका देखा मार्ग दिखलाया। निर्धन देखा धनवान बनाया। अतः जो अनाथ हो उस पर मत क्रोध कर और जो मांगने वाला हो उसे मत डांट।

सूरत उल वत्तीन—सौगन्द है अजीर के वृक्ष की और जैतून के वृक्ष की और सौगन्द है सेना पर्वत की और सौगन्द है इस शहर (मक्का) अमन वाले की, निश्चय मैंने मनुष्य को पैदा किया अच्छी सूरत में।

सूरत उलतूर—सौगन्द है तूर पर्वत की और सौगन्द है किताब लिखी हुई की खुले कागज़ में और सौगन्द हैं बने हुए घर की और सौगन्द हैं ऊंचे छत की और सौगन्द है भरी हुई नदी की, निश्चय तेरे पालन हार का कोप होने वाला है।

सूरत उल आदियत—सौगंद है मुझ को घोड़ों की जो शीघ्र दौड़ते हैं इस कारण से कि उन का दम भर जाता है, पस सौगंद है उन घोड़ों की जो अग्नि निकालते हैं अपने पैरों से जब कि पत्थर पर लगाते हैं। पस सौगंद है घोड़ों नाश करने वालों की जब कि प्रातः काल आते हैं और उस समय धूली

उड़ाते हैं। पस उस समय शत्रुओं के समुदाय में आते हैं, निश्चय मनुष्य धन को मित्र रखने में अत्युक्ति करने वाला है क्या नहीं जानता कि जब दुःखी होगा जो कबरों में है और प्रगट होगा जो सीनों में हैं। निश्चय ही ईश्वर उनके उस दिन को जानता हैं।

सूरत उल कुरैश—वास्ते शुक्र उल्फ़त देने कुरैश के, (जो मुहम्मद साहिब की जाति थी) वास्ते उल्फ़त उनके सर्दियों के सफ़र में और गरमियों में चाहिये कि भक्ति करे मक्के के घरकी खुदा को, जिस ने इन भूखों को भोजन दिया और डरने वालों को शांति दी।

सूरत उल कौसर—हमने तुझ को ऐ मुहम्मद ! कौसर का चश्मा बख्श दिया। पस इस उपकार को याद कर ऊंट को बलि कर, निश्चय ही तेरा शत्रु वही पूंछ कटा है।

सूरत उल काफ़रून—कहो काफ़िरो ! मैं नहीं पूजता हूं जिस को तुम पूजते हो और तुम नहीं पूजते हो जिस को मैं पूजता हूं। न मैं तुम्हारी वस्तु को पूजूंगा और न तुम मेरी वस्तु को पूजोगे। वास्ते तुम्हारे, तुम्हारा दीन और वास्ते मेरे, मेरा दीन।

सूरत उल लहब— नाश होवे दोनों हाथ अबी लहब के और नाश होवे अबी लहब, कुछ दूर नहीं किया उसके सिर से माल उसके ने और जो कुछ पैदा किया हुआ था आवेगा ज्वाला प्रचण्ड में और स्त्री उसकी भी आवेगी आशा रखता हूं मैं, उठावेंगे लकड़ी को उसकी गर्दनमें ऐसे ही खजूरों के तने से। सूरत उल मुरसलात—सौगंद हवाओं की जो नरमी से भेजी गई हैं, पस सौगंद हवाओं की जो शीघ्र चलने वाली हैं और सौगंद हवाओं की जो बादलों को उठाती हैं, फिरजुदा करने वालों को, फिर उन फरिश्तों के समुदाय की सौगंद, निश्चय जो प्रतिज्ञा करूंगा होने वाली है।

परिणाम—

यद्यपि इसी प्रकार से और बहुत सी आयतें विद्यमान हैं, किंतु उन का लेख विस्तार के भय से छोड़ दिया है। यह साधारण व विशेष नियम है कि सौगन्द ३ प्रकार कीउठाई जातीहै। (१)अपनेसे बड़े की(२) अपने बराबर वाले की (३) अपनेसे छोटे की वा प्यारे की, किंतु यहां इन तीनों मेंसे किसी प्रकार का भी विचार नहीं किया गया और न भेद बतलाया गया है कि क्यों इतनी सौगन्दों की बौछाड़ हो रही है ? किस ने मुहम्मदी खुदा को इतनी कसमें उठाने और सौगन्दें खाने पर बाधित किया था और इतनी कसमोंकी आवश्यकता क्या थी ? एक विद्वान् फ़िलासफ़र का कथन है कि, "जो जितनी अधिक सौगन्दें खाता है, वह उतना ही अधिक झूठा कहलाता है और उसका विश्वास जाता रहता है।" सार इन तमाम कसमों का इस प्रकार है कि खुदा कहता है कि मुझे प्रातः की सौगन्द, युग्म और निग्म की सौगन्द और रात्रि की सौगन्द है कि तेरे इस मुक़द्दमे में गवाही विश्वस्त है। सम्भवतः झूठा बोलता होगा, नहीं तो युग्म और निग्म की सौगंद के और क्या अर्थ हैं।

मक्का नगर को सौगंद, गर्भवती ओं को सौगंद और उसके जनने की सौगंद है कि मैं ने ही मनुष्य को उत्पन्न किया है। हायरी मूर्खता। व्यर्थ ही सौगन्दों की भरमार होकर न्याय व विचार का रक्तपात हो रहा है और अकारण ही अपना ओछापन जतलाया जा रहा है, जो उसके प्रताप, और महानता के विरुद्ध है।

सूर्य देवता और उसके प्रकाश की सौगंद, चन्द्रमा देवता और उसकी सुन्दरता की सौगंद, दिन और रात की सौगंद, आसमान देवता की सौगन्द, पृथ्वी की सौगंद मनुष्य के मन की सौगंद कि मैं सच कहता हूं। नहीं, नहीं ऐ कलिया जी महाराज! वल्लाह! आप झूठ कहते हैं। आप की सचाई का प्रमाण क्या है? युक्ति शून्य प्रतिज्ञा मानने के योग्य नहीं।

सौगन्द रात और सौगन्द दिन की और खुदा की सौगन्द जिसने नर व मादा को पैदा किया कि तुम्हारे कर्म भिन्न २ हैं। ऐ मुहम्मदियों के खुदा! वह खुदा कौन है जिसकी आप कसम खाते हैं (मुहम्मदियो ध्यान से सोचो) यह कौन सी कठिन बात है कि हमारे कर्म भिन्न २ हैं। यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता है। वाह२! आपकी परोक्ष विद्या और दूरदर्शिता! यदि सचमुच सौगन्द खानी ही थी तो कोई अच्छी बात फ़रमाते न कि खोदा पहाड़ और निकला चूहा, वह भी दुम कटा।

रोटी खाने के समय की सौगन्द, रात के छुपाने की सौगन्द है कि तुझ भटके हुए को मार्ग दिखाया, तेरा परलोक सुधरेगा। प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि "अच्छा वर्ष वसन्त से ही पहचाना जाता है"। यदि खुदाअताला उसको राह न दिखलाता तो संसार में खून की नदियां कहां से बहतीं। लाखों स्त्री पुरुष क्यों आवारा होते, स्त्रियों को पशुओं की भांति गल्ला भरने को क्यों जायज़ रखता। यह सब मक्का के रब्ब का उपदेश है, जिससे प्रजा के लिये आपत्ति तथा, क़यामत आई है।

'शामते आमाले मा सूरते नादिर गिरफ्त।' (हमारे पापों के दंड ने नादिर का रूप धारण किया)

कसम है अंजीर के वृक्ष की और कूप की लकड़ी की कसम, कसम सेना पर्वत की, कसम मक्का नगर के रहने वालों की कि मैं ने मनुष्य को उत्पन्न किया है। सेना पर्वत अंजीर और जेतून की सौगन्दें खाना कोई प्रमाण नहीं है कि तुमने मनुष्य को उत्पन्न किया है। वाह सर्वज्ञ जी! छोटे की सौगन्द और बड़े की सचाई का प्रमाण। क्या ही अच्छा दार्शनिक सिद्धांत है?

चि नामी कि मौलाये नामे तो अम।
ब हैरतज़ कसमो कलामे तो अम॥

(तेरा क्या नाम है कि मैं तेरे नाम का दास हूं। तेरी सौगन्द और तेरी वाणी से आश्चर्य में हूं)

सौगन्द तेज़ घोड़ों को और सौगन्द उनके दौड़ने को, सौगन्द उनके हाँपने को, सौगन्द उनको नाल बन्दी को, लूट पर जाने वाले घोड़ों को सौगन्द मनुष्य कृतघ्न है ।

वाह रे रिसालदार मेजर ! आपने तमाम जंगी कवाइद को सौगन्दों में हद करदी । हमने माना कि आप योद्धा भी हैं और क्रूर भी हैं ।

सौगन्द तूर पर्वत को, सौगन्द पुस्तक की, सौगन्द घर की, सौगन्द छत को, सौगन्द पवन देवता को, सौगन्द उसके शीघ्र चलने को, सौगन्द उसके बदली लाने को और सौगन्द तमाम देवताओं को, निश्चय जो मैं प्रतिज्ञा करूंगा वह होने वाली है । जनाब ! हम को तो आप पर विश्वास नहीं ! आपने जो मूसा से वचन किया था, उसे पूरा न किया आपने जो काईन से वचन किया था, उसे भी भुला दिया और न आपने नूह के तूफ़ान के पश्चात वचन पाला । आपके वचन व कर्म्म पर हमें विश्वास नहीं । आपने ईसा के फांसी पाने पर सहायता न की और न ज़करिया के सिर पर आरा चलाने के समय सहायता की । निर्दोष हज़रत अयूब का घर शैतान के बहकाने से खराब किया, फिर बिना किसी पाप के शरीर, जान व माल को दुख दिया । शैतान को जगत के बहकाने के लिये नियत किया । मैं आप पर किस प्रकार विश्वास करू ? आज़मूदा रा आज़मूदन खतास्त'(परीक्षितको परीक्षा करना भूल है) तिरमज़ी में इस प्रकार लिखा है ।"इब्न उम्र से रिवायत है कि मैंने रसूल से सुना जिसने कि खुदा के बग़ैर किसी और की कसम खाई उसने शिर्क किया ।"

कुरान के इस प्रमाण के अनुसार खुदा चांद, सूर्य्य आदि की सौगन्दें खाता है और आपका पैग़म्बर ऐसे कसम खाने वाले को मुशरिक ठहराता है । अब हम क्या कहैं कि दोनों में से कौन सच्चा है । पाठक स्वयं ही न्याय करें ।

हराम व हलाल का बयान (कुरान के अनुसार)

अब हम कुरान की कमज़ोरी का बयान करते और हराम, हलाल विषय का दिग्दर्शन कराते और दिखाते हैं कि कुरान का लेखक कितना असमर्थ, अल्प ज्ञानी तथा अनजान है ।

१—(सूरत उलनहल) में है, "सिवाय इसके नहीं कि हराम किया ऊपर तुम्हारे, मुरदार, लहू और गोश्त सूअर का और वो चीज़ कि आवाज़ बुलन्द किया जावे वास्ते ग़ैर खुदा के साथ उसके । पस जो कोई बेबस हो, न हद से निकल जाने वाला और न और से छीन लेने वाला । बस तहकीक अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान ।"

२—(सूरत उलनहल)में है "और मत कहो वास्ते इस चीज़ के, कि बयान करते हैं, बातें तुम्हारी झूठ यह हलाल है और यह हराम है । तू कहो, बांध लो ऊपर अल्लाह के झूठ, तहकीक जो लोग कि बांध लेते हैं ऊपर अल्लाह के झूठ नहीं फ़लाह पायेंगे ।"

३—(सूरत बक़र) में है, "सिवाय इसके नहीं कि हराम किया ऊपर तुम्हारे, मुरदार और लहू और गोश्त सूअर का और जो कुछ पुकारा जावे ऊपर उसके, ग़ैर अल्लाह के। पस जो कोई बेबस होन हद से निकल जाने वाला और न छुटने वाला। पस नहीं गुनाह ऊपर उसके तहक़ीक अल्लाह बख़शने वाला मेहरबान है।"

४—(सूरत उलमायदा) में है, "हराम किया गया ऊपर तुम्हारे मुरदार और लहू और गोश्त सूअर का और जो कुछ पुकारा जावे सिवाय अल्लाह के साथ उसके और गला घूंटे और लाठी मारे और ऊपर से गिर पड़े और सींग मारे और जो कहा गया दरिन्दा मगर जो ज़िबह करो तुम और जो ज़िबह करो ऊपर थानों के और यह कि किस्मत मालूम करो साथ तीरों के, यह फ़िस्क़ है आज के दिन नाउमेद हुए वो लोग कि काफ़िर हुए दीन तुम्हारे से। पस मत डरो उनसे और डरो मुझ से। आज के दिन पूरा किया मैंने वास्ते तुम्हारे, दीन तुम्हारा और पूरी की ऊपर तुम्हारे नेअमत अपनी और पसन्द किया वास्ते तुम्हारे इसलाम दीन। पस जो कोई बेबस हुवे बीच भूख के, न झुकने वाला तरफ़ गुनाह के, बस तहक़ीक़ अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान"

५—(सूरत इनाआम) में है. 'तहक़ीक़ मुफ़स्सिल बयान कर दिया वास्ते तुम्हारे और जो कुछ हराम किया गया है ऊपर तुम्हारे।" कुरान के निर्माता ने सूअर, मुर्दार, तथा ज़िबह किये गये पशु के बिना सब पशु पक्षी, व पानी के प्राणियों और कीड़े मकोड़ों को हलाल कर दिया, कारण कि संख्या १—२ व ३ की आयतों में केवल सूअर और मुर्दार और ज़िबह किये गये के इतर सब को हलाल कर दिया और छुरी चला दी और ४ व ५ संख्या में स्पष्ट रूप से कह दिया कि जो कुछ हराम है, वह विस्तार से कह दिया, पर इसलामी विद्वानों ने जब अन्य जातियों का आचार विचार देखा, तो कुरान की इस शिक्षा पर कायम न रहे। कारण कि इससे कुत्ता, बिल्ला तथा मनुष्य का मांस तथा हाथी ऊंट आदि पशुओं के खाने की आज्ञा होकर वो हलाल व भक्ष्य ठेहर गए थे। इसलामी विद्वानों ने अधिक विचार करके कुरान की इस शिक्षा के विरुद्ध तीन दरजे मुहम्मद साहिब के मरने के कई सौ वर्ष पीछे नियत किये। (१) हलाल (भक्ष्य), (२) मकरूह (घृणित) (३) हराम (अभक्ष्य), पर इस पर भी इसलामी विद्वान सहमत न हो सके और बड़ा भारी मत भेद हो गया, जिस का नमूना निम्न प्रकार है। देखो पृष्ठ १८४



नाम प्राणी	इमाम मालिक	इमाम हनफ़ी	इमाम हम्बल	इ० शाफ़ई	इ० शीइया	खतत्रिया
कुत्ता	मकरूह	हराम	,,	,,	,,	,,
जंगली बिल्ला व बिल्ली	हलाल दोनों प्रकार	हराम	,,	जंगली हलाल	हराम	,,
चूहा	मकरूह	हराम	,,	,,	,,	,,
बन्दर	हलाल	हराम	,,	,,	,,	,,
नेवला	हलाल	हराम	,,	हलाल	हराम	,,
हाथी	हलाल	हराम	,,	,,	,,	,,
गधा	मकरूह	हराम	,,	,,	मकरूह	लापता
घोड़ा	न खाना ही अच्छा	हलाल	,,	,,	मकरूह	हलाल
लोमड़ी	पता नहीं मिला	हराम	हलाल	,,	हराम	लापता
सर्प	मकरूह	हराम	पता नहीं मिला	हराम	,	लापता
ऊंट	हलाल	,,	,,	,,	,,	हराम
गीदड़	हलाल	,,	,,	,,	हराम	हलाल
पटड़ा मीढ़	हलाल	हराम	हलाल	,,	हराम	हलाल
निहंग	हलाल	,,	पता नहीं	हराम	,,	लापता
उल्लू	हलाल	,,	हराम	पता नहीं मिला	हराम	हलाल
करगस	मकरूह	हराम	,,	,,	,,	,,
बोतीमार	हलाल	,,	,,	,,	पता नहीं	हलाल
गोरख़र	हलाल	,,	,	,,	,,	,,
जंगली गधा						
कर्गदन	लिखा नहीं	,,	,,	,,	,,	,,
गैंडा						
शेर	मकरूह	हराम	,,	,,	,,	,,

ऊंट की हड्डी सब में हलाल है पर शाफ़ई इसे अपवित्र कहता है ।

पाठक ! विचार करें जब हराम की व्याख्या विस्तार से कुरान में आचुकी और सर्वथा मनाही होगई कि अब और बातें न घड़ो कि यह हलाल है और यह हराम, तो उलमा ने क्यों कुरान को पर्याप्त न समझा और वो चीजें जो कुरान ने हलाल करदी थीं, उनमें से कईयों को अपनी २ बुद्धि के अनुसार हराम और कईयों के मकरूह होने की व्यवस्था क्यों दी ? फिर भी आज तक इस व्यवस्था पर सहमत न होसके और मन घड़न्त व्याख्यायें करने लगे। जब कुरान के रचयिता ने चार व पांच संख्या में निश्चित रूपेण कह दिया कि मैंने हराम और हलाल का पूरा २ बयान कर दिया है तो फिर उस में संशोधन की आवश्यकता क्यों हुई ? क्या वो अपने ईश्वर से अधिक बुद्धिमान् पैदा होगए ? क्या ईश्वर की बुद्धि उनसे कम थी ? सत्य तो यह है, कि कुरान की इस शिक्षा से मुहम्मदी लोग अन्य जातियों में लज्जित होते होंगे और यह कुत्ता, बिल्ला, गधा, बन्दर और छिपकली आदि के खाने से अन्य जातियां उनसे घृणा करती होंगी। अतः इसलामी विद्वान ने दूरदर्शिता से अपनी बुद्धि के अनुसार कुरान की इस शिक्षा का संशोधन किया। प्रायः आरम्भ में यही कारण उस अत्यन्त घृणा का होगा, जो उनसे आज तक चली आती है। सच मुच, यदि इनसान पक्षपात न करे तो इस विषय में कुरान की शिक्षा अत्यन्त घृणित है और जंगली मनुष्यों के आचार के अनुकूल। जिस से मनुष्य भक्षण तक हलाल भक्ष्य, पवित्र और ईश्वर आज्ञा निश्चित होगया। भला कोई सभ्य जाति ऐसी शिक्षा को खुदा से मान सकती है ? कदापि नहीं। इसी पर विचार कर लो कि आर्य्यावर्त्त में रहने वाले मुसलमान अब तक भी बहुत से ऐसे मकरूह जानवरों के खाने से घृणा करते हैं, पर यह नहीं सोचते कि कुरानी उलमा और आसमानी खुदा को इनके बतलाने से क्यों घृणा न हुई ? ऐसी ही अनेक बातें, जो तर्क, नीति और सभ्यता के विरुद्ध थीं असत्य जान कर लोग स्वयं छोड़ते जाते हैं। देखो ! ख़तना अर्थात् सुन्नत का नियम इबराहीम ने निर्माण किया। ईसाई जो इबराहीम को नबी स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि ख़तने की आज्ञा इबराहीम को खुदा से मिली थी और ईश्वरीय आज्ञाओं को अखण्डित कहते हैं, तो भी उन्हों ने मानवीय लज्जा की दृष्टि से इसको छोड़ दिया।

(देखो रुमियों का पत्र बाब २ आयत २६से २६ और बाब ३ आयत १ पर। अरब के जंगली मनुष्यों में अबतक कायम हैं, यहां तक कि स्त्रियों का भी ख़तना कराते और उस,.को सारा (सरहा की) की सुन्नत बतलाते हैं। मुआरजुल नबुव्वत (मदारजुल फ़तवत मुद्रित नवल किशोर प्रेस १८७५) पृष्ठ ३३१ पंक्ति ७ से १० रुकन १ बाब ७ फसल ११ में इस प्रकार वर्णित है। (सारा ने) अत्यन्त दुःख और खेद से सौगन्द याद की, कि हाजरा का एक अंग काट कर उसकी आकृती बदले दे। हाजरा इस आशय को जान कर सारा से भाग गई। इबराहीम ने सारा से शिफ़ारिश करके निवेदन किया कि अपने मन से क्रोध दूर कर दे और सौगन्द के पूरा करने के लिये हाजरा के कानों की त्वचा में छेद करे और उसके गुप्त अंग में से कुछ काटे और सारा ने इबराहीम के कथना-

नुसार किया और यह सुन्नत स्त्रियों में बाकी छोड़ी । लुग़ात में लिखा है 'ख़तान' योनि का सिरा ख़तना करने के समय काटना, (कश्फ़ रदीफ़ ख़े पृष्ठ ३७०) 'ख़ताना' योनि का सिरा काटना कि सुन्नत होवे । कश्फ़ रदीफ़ ख़े पृ० ३७५)

पाठक वृन्द ! देखना चाहिये यह कितनी लज्जा की बात है और इस में कितना गन्द भरा है। हिंदुस्तान के मुसलमानों ने यद्यपि अत्याचार और अन्याय से विवश होकर पुरुषों का ख़तना मान लिया है, पर स्त्रियोंके खतने को लज्जा के मारे अभी तक नहीं माना और मानते किस तरह ? एक अरबी की कहावत है कि 'अलहया मिनुल ईमान' (लज्जाके चले जाने से ईमान भी चला जाता है) हमारे एक विद्वान् भाई ने हमें सूचना दी कि मुलतान और बहावलपुर की ओर स्त्रियों का ख़तना अब जारी है और प्रायः 'ज़फ़ाफ़' की रात इस सुन्नत की बारी है अर्थात् मोमिना स्त्रियां ख़तना पाती हैं और मख़तून (ख़तने वाला पुरुष के मुकाबले में ख़ातून (ख़तने वाली स्त्री) बनाई जाती हैं।

मिरज़ा को सम्बोधन

मिरज़ा क्यों मुबतिला है कुरआंका, तुझको सौदा हुआ है कुरआं का।
तू इसी पर घमंड करता था, देख फ़ोटो खिंचा है कुरआं का ॥
मकर करता है और फ़रेबो दग़ा, खूब ज़ालो खुदा है कुरआं का।
ख़ादाओ माकरो मुज़िल हाज़िल, वाह! क्या किबरियाहै कुरआं का ॥
आसमां, सक्फ़ो कोह, मेख़े ज़मीं, फ़लसफ़ा खुल गया है कुरआंका।
फ़ानि अशिया की खाई हैं कसमें, एतबार उठ गया है कुरआं का ॥
आदमी काबा, सिजदा गाह किये, शिर्क यह बरमला है कुरआं का।
बोमे जां तमह माले ग़ारत की, यही दामे बला है कुरआं का ॥
फंस गये इसमें वैहशियाने अरब, सहन जौरोजफ़ा है कुरआं का।
छिन गई क़त्लेआम की तलवार, ज़ोर मारा गया है कुरआं का ॥
अब तो है अदूलो अम्ने कैसरे हिंद, नक्श करना रवा है कुरआं का ॥
दीने गवरो यहूद से इबलीस, ख़ालक़े शर बना है कुरआं का।
ख़ौफ़ शरसे उसीके ख़ालिक़े ख़ैर, अर्श पर जा बसा है कुरआं का ॥
उसके हमलों पे रोज़ तीरे शहाब, वह खुदा मारता है कुरआं का।
देखो ख़न्नास * की शरारत पर, खातमा कर दिया है कुरआं का ॥
वेहम से निकल ऐ ग़ुलाम अहमद! क्यों भरोसा रखा है कुरआं का।
अब कुरां कोई दम का मिहमां है, खातमा हो चला है कुरआं का ॥

स्वामी जी के विषय में मिरज़ा साहिब के आक्षेपों का उत्तर

(पृष्ठ ५३१-५५७) वादी—मुझे भय है कि आप लोगों का ऐसा अन्त न हो जैसा आर्य्यों के नेता दयानन्द का हुआ, क्योंकि इस सेवक ने उनको उन की मृत्यु से बहुत काल पूर्व उन्हें सच्चे मार्ग की ओर बुलाया और उनका परलोक बिगड़ने का ध्यान दिलाया और उनके मत या मन्तव्य का सर्वथा असत्य

* शैतान

होना अकाट्य हेतुओं से उन पर प्रगट किया और बड़ी अच्छी और दृढ़ युक्तियों से उनका पूरा सत्कार करते हुये उन पर सिद्ध किया कि नास्तिकों से उतर कर आर्य्यों का मज़हब ही सब से बुरा है।

प्रतिवादी—जैसा स्वामी जी का अन्त हुआ वह जगत को विदित ही है। हजारों लाखों को मुसलमान,ईसाई होने से बचाया है, वेदों का भाष्य करके जगत को सच्चा मार्ग दिखाया, मूर्ति पूजा, मनुष्य पूजा, पीर पूजा, काबा पूजा के असाध्य रोगों से उपदेश व ज्ञान रूप औषधि से आर्य्यावर्त्त के रोगियों को निरोग किया। विधवाओं के दुःख को वेद की धैर्य बंधाने वाली शिक्षा से दूर करके सत्य धर्म का प्रकाश किया। फूट वाले हिन्दुस्तान को मेल से आर्य्यावर्त्त बनाया कि कुरानी किरानी मतों के सिफ़ारशी ढकोसलों से आर्य्यावर्त्त के आत्माओं को बचाया, "गुलश्त स्वामीआ दरचश्म दुश्मनां खारअस्त" (स्वामी पुष्प है पर शत्रुओं की आंख में कांटा) मिरज़ा साहब! जब आप स्वयं ही राह भूले हैं तो और लोगों, विशेष कर स्वामी जी को (जो ईश्वरीय दयारूपी मेघ और विद्या तथा ज्ञान के सागर थे) क्या उपदेश कर सकते थे? "यह आपकी गप्प वैसी है जैसे दुष्ट उल्लू की सूर्य्य से तुलना करनी।" परलोक वाले वाक्य का उत्तर मेरे पास और कुछ नहीं, पर केवल यह कि मिथ्याभाषण के कारण तुम स्वयं बदनाम होगे। उनके मुक़ाबले से तुम दबाते रहे, सामने आने से बुरक़ा में मुंह छिपाते रहे और अब बातें बनाते हो। खुदा से शरमाओ और डूब जाने से बाज़ आओ। आप नास्तिक हैं जो सूरा असर में काल के बलिहारी जाते और उसकी क़समें खाते हो। हदीस मिश्क़ात और बुख़ारी में मुहम्मद साहब के शब्द लिखे हैं, "और न करो निराशा काल को, इस लिये निश्चय अल्लाह ही है काल।" हदीस नबवी और क़ुरान दोनों से सब प्रकार से स्पष्ट है कि दहरियों और मुहम्मदियों में केवल मात्र भी अन्तर नहीं, किन्तु आत्मिक मित्रता। कारण कि काल ही उनका किबरिया खुदा है और काल ही उनका किबरिया। अतः नास्तिकता और इसलाम परस्पर में जोड़ा है, जिसमें किसी को सन्देह नहीं। आर्य्यों से बढ़कर आपका शुभचिन्तक कोई है नहीं, पर ईश्वर जाने आपके द्वेष पूर्ण हृदय में शोक और दुःख का क्या निवास है? हज़रत निन्दकारी यर्णके प्रश्न को छोड़ कर हम आपके द्वेषी नहीं, प्रत्युत आपकी भलाई के अभिलाषी हैं, ताकि आप सीधे मार्ग पर आवें और अविद्या से छूट जावें। नास्तिक तो प्रमाणाभाव के कारण विवश हैं, पर आप मान कर भी अज्ञान में हैं। खुदा को अर्श पर परिमित मानते हो, सर्वव्यापक नहीं जानते। वध तथा रक्तपात को ईमान की शोभा मानते हो और सिफ़ारिश व शिफ़ायत को इसके दरबार में उचित जानते हो। जगत को मार्गच्युत करने वाला उसे ठहराया है और अविद्या का प्रवर्त्तक उसे बनाया है। अतः नास्तिकों से तुम्हें कोई उत्तमता नहीं, किन्तु सर्व प्रकार से निकृष्टता है। उनको न समझने के कारण इन्कार है और आप पर समझने पर भी अविद्या सवार है। [देख लो! कितना अन्तर है]

वादी—कारण कि यह लोग परमेश्वर का अत्यन्त अपमान करते हैं कि उसको स्रष्टा व जगत स्वामी नहीं समझते। सारे जगत को, यहां तक कि प्रमाणु प्रमाणु को उनका साथी ठहराते हैं और नित्यता तथा वास्तविक सत्ता में उसके बराबर समझते हैं।

प्रतिवादी—परमेश्वर का अपमान तो कुरान करता है जो कहता है (आल उमरान) छल किया उन्होंने और छल किया अल्लाह ने और अल्लाह बड़ा छलिया है।(अनफ़ाल) छल करते थे वो और छल करता था अल्लाह और अल्लाह बड़ा छल करने वाला है। (बकर) अल्लाह हंसी करता है उनसे और बढ़ाता है उनको स्वेच्छाचारिता में। (दहर, डरते हैं हम पालक अपने से उस दिन कि जिस दिन मुंह बनाने वाला होगा। (इऽराफ़) बस निर्भय होगये ईश्वर के मकर से। (इबराहीम) वास्ते अल्लाह के है मकर सारा। (इऽराफ़) अवसर दूंगा उनको, निःसन्देह मेरा मकर दृढ़ है। (यूनस) अल्लाह अति शीघ्र छल करने वाला है। (बकर) धोखा देते हैं अल्लाह को और लोगों को जो ईमान लाये हैं। (यूसुफ़) इसी प्रकार हमने छल किया यूसुफ़ के लिये।

मिरज़ा साहिब! हम तो उसको सब ईश्वरीय गुणों से युक्त और नित्य मानते हैं, सारे जगत् का रचयिता तथा स्वामी जानते हैं, पर कुरान की न्याई अनेक उत्पादक नहीं मानते, न ईश्वर को उत्पादकों में से अच्छा जानते है। हम अणु २ को उसकी आज्ञा के आधीन समझते हैं और किसी वस्तु को उसकी आज्ञा से बाहिर (जैसा कि कुरान शैतान को जानता है) या विमुख वा उसके अधिकार से पृथक् नहीं ठहराते और अनादिकाल से सब पदार्थों को नित्य—सामर्थ्य के अन्तर्गत बतलाते हैं और अकाट्य युक्तियों से प्रमाण लाते हैं।

वादी—यदि उनको कहो, क्या तुम्हारा परमेश्वर कोई जीव पैदा कर सकता है वा कोई शरीर का प्रमाणु उत्पन्न कर सकता है वा ऐसा ही कोई और ज़मीन व आसमान बना सकता है अथवा किसी सच्चे प्रेमी को अनन्त मुक्ति दे सकता है और बारम्बार कुत्ता, बिल्ला बनने से बचा सकता है या किसी अपने सच्चे प्रेमी की तोबा स्वीकार कर सकता है? तो इन सब का यही उत्तर है कि कदापि नहीं।

प्रतिवादी—जीव और प्रमाणु की उत्पत्ति के विषय में हम आरम्भ में उत्तर दे चुके हैं, परन्तु केवल एक शब्द यहां कहते हैं कि नया पैदा करना एक तो ईश्वर के घर में कमी का दोष है, दूसरे वो दरिद्र सिद्ध होता है, जिस प्रकार वह मूर्ख नहीं हो सकता, दास नहीं बन सकता, भूलता नहीं इत्यादि। इसी प्रकार उसके घर में अभाव व निर्धनता नहीं है और न जीवों तथा प्रमाणुओं की कमी है। अनः भाव में उत्पन्न करना व उत्पन्न करने की इच्छा करना, निष्प्रयोजन क्रिया के इतर नहीं है। हां, पैदा करने के अर्थ प्रगट करना हो, तो निस-

स्नेह जीवों और परमाणुओं को, जो उसके पास मौजूद हैं अनादि काल से भिन्न भिन्न योनियों में प्रगट करता है और कर सकता है। आसमान व ज़मीन का पैदा करना, जो कहा—उसमें से आसमान शब्द तो निरर्थक है, पर ज़मीन का पैदा करना, यदि आवश्यकता हो तो कर सकता है, परन्तु उसे आवश्यकता कहां। हां, अनादि काल से जीवों को आवश्यकतानुसार सर्वशक्तिमानता से उत्पन्न करता है। ईश्वर कोई परदे में बैठी हुई प्रेम प्यारी (माशूका) नहीं, जिसके लोग आशक हों और सीढ़ी लगा कर आसमानों पर मिलने जावें। हां, वो सब का स्वामी है, उसकी भक्ति आवश्यक है। उसके भक्त उससे अनुचित प्रार्थना नहीं करते और न अयुक्त उज़र धरते हैं। भक्तों, सन्तों, ऋषियों को परमात्मा की शरणागत होने से बुरी योनियों में नहीं जाना पड़ता, परन्तु व्यभिचारी, पापी, मांस भक्षी, मद्यपी, बदमाश आदि पापियों को बुरी योनि में जाना पड़ता है न कि महात्माओं को। तौबा केवल धोखा देना है, अतः आपका सारा आक्षेप तथा दोषारोपण केवल भ्रान्तिमात्र है।

वादी—परन्तु शोक! कि पंडित साहिब ने इस दूषित मन्तव्य को तिलाञ्जली न दी और अपने सारे पूर्वजों, अवतारों आदि के अपमान और मानहानि को स्वीकार किया, पर इस अपवित्र मन्तव्य को न छोड़ा और अन्तिम श्वास तक उनकी यही मति रही कि चाहे कैसा ही अवतार हो—रामचन्द्र व कृष्ण व स्वयं ही क्यों न हों, जिस पर वेद उतरा हो, परमेश्वर को कदापि स्वीकार ही नहीं कि उस पर अनन्त दया करे, प्रत्युत वो अवतार बना कर फिर भी उन्हीं को कीड़े मकोड़े बनाता ही रहेगा।

प्रतिवादी—मैं आपके अति दूषित मन्तव्य, मानहानि, अपमान तथा अशुद्ध नींव का कुछ उत्तर नहीं देता। पाठक स्वयं ही आपकी वास्तविकता को जान लेंगे। परमात्मा सर्वज्ञ है, उसका कोई काम ज्ञान व पूर्णता से शून्य नहीं, उसका कोई गुण दूसरे गुण के विरुद्ध नहीं और सब गुणों का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। न्याय व सत्य के दरबार में सिफ़ारिश व स्वार्थ आना सर्वथा कठिन है और कोई न्यायशील स्वीकार नहीं कर सकता, हां रिश्वती कर सकता है। अतः अयुक्त दया, निष्प्रयोजन करुणा, अनुचित न्याय व इसी प्रकार निर्दयता, क्रूरता और अत्याचार अर्थात् यह सब कार्य किसी बे समझ तथा उन्मत्त के बिना किसी सचेत बुद्धि से प्रगट नहीं हो सकते। कृष्ण जी महाराज का वचन है:—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तवचार्जुन।
ताण्यहं वेद सर्वाणि त्वं न वेत्थ परंतप॥ गीता अ० ४ श्लोक ५॥

हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं, पर उन सब जन्मों के वृत्तान्त की मुझ को (योगी होने के कारण) स्मृति है, पर तुझ को नहीं। इस प्रकार स्वयं रामचन्द्र जी महाराज वाल्मीकी रामायण में जन्मों का पाना स्वीकार करते हैं। अतः वो महात्मा थे और सदा ऐसे महात्मा जगतोपकार के निमित्त जन्म लेते हैं, बुरी योनियों में नहीं जाते। यह आपका विश्वास

शैतानी, सर्वथा आपकी मूर्खता की निशानी है। हां, यही दोष इसलामी पूर्वजों पर घटता है। शेख़सादी कहता है:—

पिसरे नूह बा बदां बिनिशस्त, ख़ानदाने नबुव्वतश गुम शुद।
सगे असहाबे कहफ़ रोजे. चन्द, पये नेकां गिरफ़्तो मर्दुम शुद॥

(नूह का पुत्र बुरों की संगत में बैठा, उसके कुल की नबुव्वत जाती रही असहाब कहफ़ का कुत्ता कुछ दिनों भलों के पीछे चला और आदमी बनगया) इसका विस्तृत वृत्तान्त कुरान और तौरेत में विद्यमान है और प्रत्येक निष्पक्ष के लिये शिक्षादायक। आप झूठ बोलने से बचें, किसी आर्य का आपके अनुसार मन्तव्य नहीं है। हां, वेद भगवान् की आज्ञानुसार।

वादी—वो कुछ ऐसा कठोर हृदय है कि प्रेम (इश्क़) और स्नेह का उसको तनिक भी ख़्याल नहीं और ऐसा निर्बल है कि उसमें तनिक भी सामर्थ्य नहीं। यह पंडित जी का मनोप्रिय मन्तव्य था।

प्रतिवादी—मिरज़ा साहिब! आपका खुदा निसन्देह ऐसाही (क़हहार] है और इसी प्रकार का अत्याचारी (जब्बार) वो ऐसा ही कठोर हृदय और मनुष्यों का घातक। देखो कुरान की सारी सूरत लहब और सूरत तौबा की यह आयत कि "मुसलमानो लड़ो, बध करो उन लोगों को जो पास तुम्हारे हैं काफ़रों में से और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे सख़ती," और सूरत इन्फाल की यह आयत, "हे नबी! रुचि दिला मुसलमानों को बध करने की" और सूरत तौबा की यह आयतें,

" और खुदा नहीं हिदायत देता काफ़रों की जाति को"
और अल्लाह नहीं हिदायत देता फ़ासिकों की जाति को।"

निसन्देह मुसलमानों के खुदा को प्रेम और स्नेह का तनिक पास नहीं। अयूब का घर नाश किया, शैतान के बहकाने से। ज़कारिया के सिर पर आरा चलाया, इबलीस के फरमाने से। मुहम्मद साहिब के दो दांत शहीद कराये और मिट्टी में दबाये, ख़्वाजा हारिस के वरगलाने से। सार यह कि प्रेम और स्नेह का उसे तनिक भी ख़्याल नहीं। प्रमाण के लिये देखो अयूब की पुस्तक बाब २ से ४२ तक और कुरान तथा मुआरज उल नबुव्वत फ़ी मदारज उल फ़तवत बाब ६ रुकन ४ पृष्ठ १०७, अहद की लड़ाई।

अपने आप बनाना एक संदिग्ध बात है। हां, सारे जगत को किसी मनुष्य, पशु व फ़रिश्ते आदि की सहायता के बिना बना सकता है और बनाता है। हां, मुहम्मदियों के कथनानुसार अपना जिगर काट कर नहीं बनाता और न अपने अंग भंग करने की शक्ति रखता है। यही पंडित साहिबका मनप्रिय मन्तव्य था और यही वैदिक धर्म्म में सुखदायी है, पर न जाने आप को किस आन्तरिक अविद्या के कारण, आप के लिये दुःखदायी है। ईश्वर आपको विद्या देवे।

वादी—जिसको प्रबल युक्तियों से खंडन करके पंडित साहिब पर यह सिद्ध किया गया था कि परमेश्वर अधूरा वा अपूर्ण नहीं, किन्तु आदि मूल है सर्वोपकारों का, भंडार है सब भलाइयों का, केन्द्र है सब उत्कृष्ट गुणों का और अद्वितीय है अपने स्वभाव में, गुण तथा उपास्य होने में।

प्रतिवादी—मिरज़ा साहिब! कटु वचन न बोलो, पण्डित साहिब के मुक़ाबले से सदा इस प्रकार मुंह छिपाते रहे जैसे सूर्य से चिमगादड़ और यही दशा आज तक है, मुक़ाबले में नहीं आये कुरान में तो उनका खण्डन नहीं है, पर तनिक उन मुसलमानों के मन्तव्य का तो पहिले खण्डन करो जो इसलाम की असत्यता से घृणा करके आर्य धर्म पर आगये हैं. उसके पीछे कोई बात किसी आर्य पर सिद्ध करो। निस्सन्देह इन गुणों को आर्य लोग मानते हैं और यही वेद भगवान् का आदेश है या कुरान उनसे विमुख है कुरान खुदा को छली और मार्गच्युत करने वाला बतलाता है, उससे इतर अनेक सृष्टा और पालक बुलवाता है। काबे को आर उकाता है और बतुल हराम को सिजदा करवाता है, संगेअसवद से पाप क्षमा करवाता और उसे पापियों की सिफ़ारिश करने वाला ठहराता है, यदि कोई समझदार हो तो इतना ही पर्याप्त है।

वादी—और इसके पश्चात् पुनः दो वार रजिस्टरी पत्र के द्वारा दोनें इस्लाम की वास्तविक स्थिति से स्पष्ट युक्तियां देकर उनको सचेत किया गया और दूसरे पत्र में यह भी लिखा गया कि इसलाम वह मत है, जिसके पास अपनी यथार्थता के लिये दोहरा प्रमाण हर समय विद्यमान रहता है। पक्की बुद्धि पूर्वक युक्तियां, जिनसे इसलाम के सत्य सिद्धान्त को तलवार फ़ौलाद को भांति सचाई और दृढ़ सिद्ध होती है, दूसरे आसमानी निशान और ईश्वरीय प्रमाण, मोक्ष के ज्ञान और उस दयालु के इलहाम तथा प्रत्यक्ष भाषण और अन्य सृष्टि नियम विरुद्ध करामातों का प्रकाशन जो इसलाम के कट्टर विश्वासियों से प्रगट होते हैं, जिनसे यथार्थ मुक्ति इसी लोक में सच्चे ईमान वाले को मिलती है। यह दोनों प्रकार के प्रमाण इसलाम के बिना किसी मत में नहीं पाये जाते और न उनको सामर्थ्य है कि उसके मुक़ाबले पर कुछ साहस कर सकें।

प्रतिवादी—आप शेख़ी मारने को तो शेख़चिल्ली से भी बढ़ कर हैं और है भी सत्य, यदि आप इस प्रकार शेख़ी न बघारें तो गुज़ारा कहां से चले। आपने जर्मनी के महामन्त्री प्रिंस विस्मार्क को रजिस्टरी भेजी, आप ने मिस्टर ग्लेड स्टोन को निमन्त्रण दिया, आप ने न्यूनार्क में लार्ड साहिब को पत्र लिखा इत्यादि बहुत से महानुभावों के पास आपकी रजिस्टरी पहुंची, जिसमें आपने लिखा था कि १ वर्ष तक मेरे पास आकर ठहरो, या तो अस्वाभाविक कार्य या आसमानी निशानियां बतलाऊंगा या २००) रु० मासिक के हिसाब से हरजाना वा जुरमाना के रूप में दूंगा। आप ईश्वर कृपा से तीस मारखां एवं पचास

मारखा है। वह दीन इसलाम की सत्यता वाले पत्र क्यों प्रकाशित न कराये, कहां छिपा रखे। मैं ने आपको इतने पत्र लिखे और प्रकाशित भी कराये आप होला हवाला ही करते रहे। उस समय इसलाम की सत्यता का दोहरा प्रमाण कहां तावूतके तख्ते की भांति पड़ा था। जब मैं दो मास कादियां में आपके पास रहा, आपके बालाखाना [बैतुल मुक़द्दस] में भी शास्त्रार्थ के नियमों के लिये उपस्थित हुआ। वह दोहरा प्रमाण कहां लाहूत [तल्लीनता] में गया था और क्यों न प्रगट किया करामात के विषय में जितने शब्द आपने एकत्रित करके काफ़िया बांधा है, उन सब का उत्तर मोजज़ा खण्डन विषय में आचुका है। निरर्थक बातों के अतिरिक्त इसमें और कुछ नहीं है, यहां सूक्ष्म वेत्ताओं के लिये एक गाथा लिखता हूं।

गाथा—जमशेद के समय में जब अगूंठी आविष्कृत हुई। बादशाह ने उस को वाम (चप) हस्त में पहिना। विद्वानों ने आक्षेप किया कि दायें (रास्त) में चाहिये थी। बादशाह ने उत्तर दिया कि "रास्त (दायां) के लिये रास्ती (सचाई) ही पर्य्याप्त है।" आर्य धर्म को करामातों और धोखों की आवश्यकता नहीं, पर अन्य मतों को है। आर्य्य धर्म को आर्य्यत्व ही पर्याप्त है।

नहीं मौताज ज़ेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी।
फ़लक पर खुशनुमा लगता है देखो चांद बे गहने॥

जिस प्रकार सूरा कहफ़ वाले ज़ुलकर नैनकी फ़ौलादी दीवार जगत में नहीं है, इसी प्रकार इसलाम के सत्य सिद्धान्तों को दृढ़ दीवार को जानिये। दोनों का मूल क़ुरान है, यदि एक सत्य नहीं है, तो दूसरे की सत्यता का क्या प्रमाण है, किन्तु स्पष्टतया अप्रमाण है। ज़रदश्त वाली करामातें जगत में विख्यात हैं। मुसेलमां की करामातों पर मुसलमानों को भी विश्वास है। मुहम्मद साहिब से बढ़ कर सब के करामात हैं और तमतराक़ इतना कि मानों आंखों के सामने साक्षात है। जितने शब्द आपने प्रयुक्त फ़रमाये हैं, उससे सैकड़ों दरजे बढ़ कर, उनके अनुयायी अपने नबियों के वास्ते लाये हैं। आपका क़ुरान मुहम्मद साहिब की करामातों से इन्कारी है, परन्तु हदीसों में मोजिज़ों की तार जारी हैं। संस्कृत का एक वचन है "मूले नाशे कुतो शाखा" अर्थात् जिसका मूल नहीं उसकी शाखा कहां से आगई। रेखा गणित का नौवां स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है कि सम्पूर्ण बड़ा होता है अपने भाग से। मुहम्मद साहिब सारे दीन इसलाम के मानो सम्पूर्ण हैं, यदि उनके पास करामात सर्वथा नहीं जैसा कि हम क़ुरानी युक्तियों से सिद्ध कर चुके हैं कि वो मोजिज़ों से शून्य थे, तब गुलाम अहमद में या इसलाम के किसी और कट्टर अनुयायी में भी नौवें सिद्धान्तानुसार मोजिज़ा का आना असम्भव है और न उनको सामर्थ्य है कि इस प्रकार की बातों में दम मार सके।

वादी—परन्तु इसलाम में स्थिति इसकी निश्चिन्त है, सो यदि इन दोनों प्रकार के प्रमाणों में से किसी की सिद्धि में सन्देह हो तो इसी जगह कादियां

में आकर,अपनी सन्तुष्टि कर लेनी चाहिये और यहभी पंडित साहिब को लिखा गया कि आपके आने जाने का साधारण व्यय तथा भोजन का उचित व्यय हमारे जिम्मे रहेगा और वो पत्र उनके कई आर्य्यों को भी बतलाया गया। दोनों रजिस्ट्रियों की उनके हस्ताक्षर युक्त रसीद भी आगई।

प्रतिवादी—हमें सन्देह था और अब भी सन्देह एवं असत्य जानते हैं कि यह आपको सर्वथा षड्यन्त्र है। हम कादियां में भी गये, परन्तु आपने किसी प्रकार की तसल्ली नहीं की और ना ही कोई मोजिज़ा बतलाया। जब उनके एक शिष्य से भी पूरे न उतर सके तो उनको निमंत्रित करना केवल एक झूठों की सी शरारत थी।

"आप मियां मांगते और बाहिर खड़े दरवेश" यह एक पंजाबो लोकोक्ति है और पूर्णतया आप पर घटती है। आप कर्जदार और गुजारे से लाचार, पर इतने इश्तिहारी रुपयों के दावेदार हैं। सार यह कि आप कागज़ पर सब अंकों की रक़में लिख सकते हैं, परन्तु नक़दी नदारद है।

कर्ज़ ने मिरज़ा निकम्मा कर दिया।
वरना तुम भी आदमी थे काम के॥

रहस्य—जब मिरज़ा साहिब की शादी (जिसको खुदा की ओर से मुनादी आई थी) देहली में हुई, तो प्रसिद्ध किया कि नवाब नासर के घर में मेरी बरात जावेगी। कादियां के कुछ हिन्दू बरात में गये, पर मुसलमान नहीं थे। यह वहां जाकर हैरान हुए, न रियास्त, न देश, न सेना, न ऐश्वर्य, कोरे नवाब नासर हैं। बहुत से उनके मूर्ख चेले इसको करामात जानते थे और जब अन्त में नवाब नासर केवल मियां नासर निकले, तो सब कलई खुल गई। क्योंकि आपने कई आर्य्यों का नाम (जिन को पत्र बतलाया गया था) नहीं लिखा, अतः आपका पक्ष संदिग्ध है, विश्वास योग्य नहीं।

वादी—पर उन्हों ने जब लोक और लोक लज्जा के कारण से इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया,यहां तक कि जिस दुनियां से उन्हों ने प्यार किया एवं सम्बन्ध बढ़ाया, अन्त को बड़े शोक से उसको त्याग कर और सब रुपये पैसे से विवश होकर इस असार संसार से कूच कर गये और बहुत से पाप, अधर्म और कुफ़र के पहाड़ अपने सिर पर लेगये।

प्रतिवादी—वो तो संन्यासी थे। उन पर इन में से कोई भी बात नहीं घट सकती और न घटती है। न संसार से उनका प्रेम था और नाही रुपये पैसे से। वो तो मनुष्यों को पाप, अज्ञान और कुफ़र से निकाल कर, सत्य, तत्व, एकत्व तथा मुक्त की ओर प्रेरित कर गये। सैंकड़ों मुहम्मदियों को द्वेष, रक्तपात, द्वैतवाद और अविद्या से बचा गये। रहीं आप की गालियां, सो इनका जवाब मेरे पास नहीं है।

वादी—और उनके परलोक यात्रा की सूचना भी जो ३० अक्टूबर सन् १८८३ को हुई, अनुमान ३ मास पूर्व दयालु भगवान् ने इस दास को दे दी थी।

मारता है। वह दीन इसलाम की सत्यता वाले पत्र क्यों प्रकाशित न कराये, कहां छिपा रखे। मैं ने आपको इतने पत्र लिखे और प्रकाशित भी कराये आप हीला हवाला ही करते रहे। उस समय इसलाम की सत्यता का दोहरा प्रमाण कहां ताबूतके तख्ते की भांति पड़ा था। जब मैं दो मास कादियां में आपके पास रहा, आपके बालाख़ाना [बैतुल मुक़द्दस] में भी शास्त्रार्थ के नियमों के लिये उपस्थित हुआ। वह दोहरा प्रमाण कहां लाहूत [तल्लीनता] में गया था और क्यों न प्रगट किया करामात के विषय में जितने शब्द आपने एकत्रित करके काफ़िया बांधा है, उन सब का उत्तर मोजज़ा खण्डन विषय में आचुका है। निरर्थक बातों के अतिरिक्त इसमें और कुछ नहीं है. यहां सूक्ष्म वेत्ताओं के लिये एक गाथा लिखता हूं।

गाथा—जमशेद के समय में जब अगूंठी आविष्कृत हुई। बादशाह ने उस को वाम (चप) हस्त में पहिना। विद्वानों ने आक्षेप किया कि दायें (रास्त) में चाहिये थी। बादशाह ने उत्तर दिया कि "रास्त (दायां के लिये रास्ती (सचाई) ही पर्य्याप्त है।" आर्य धर्म को करामातों और धोखों की आवश्यकता नहीं, पर अन्य मतों को है। आर्य्य धर्म्म को आर्य्यत्व ही पर्याप्त है।

नहीं मौताज ज़ेवर का जिसे ख़ूबी ख़ुदा ने दी।
फ़लक पर ख़ुशनुमा लगता है देखो चांद बे गहने॥

जिस प्रकार सूरा कहफ़ वाले जुलकर नैनकी फ़ौलादी दीवार जगत में नहीं है, इसी प्रकार इसलाम के सत्य सिद्धान्तों की दृढ़ दीवार को जानिये। दोनों का मूल कुरान है, यदि एक सत्य नहीं है, तो दूसरे की सत्यता का क्या प्रमाण है, किन्तु स्पष्टतया अप्रमाण है। जरदश्त वाली करामातें जगत में विख्यात हैं। मुसेलमां की करामातों पर मुसलमानों को भी विश्वास है। मुहम्मद साहिब से बढ़ कर सब के करामात हैं और तमनराक इतना कि मानों आंखों के सामने साक्षात है। जितने शब्द आपने प्रयुक्त फ़रमाये हैं, उससे सैकड़ों दरजे बढ़ कर, उनके अनुयायी अपने नबियों के वास्ते लाये हैं। आपका कुरान मुहम्मद साहिब की करामातों से इन्कारी है, परन्तु हदीसा में मोजिज़ों की तार जारी है। संस्कृत का एक वचन है "मूले नाशे कुतो शाखा" अर्थात् जिसका मूल नहीं उसकी शाखा कहां से आगई। रेखा गणित का नौवां स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है कि सम्पूर्ण बढ़ा होता है अपने भाग से। मुहम्मद साहिब सारे दीन इसलाम के मानो सम्पूर्ण हैं, यदि उनके पास करामात सर्वथा नहीं जैसा कि हम कुरानी युक्तियों से सिद्ध कर चुके हैं कि वो मौजिज़ से शून्य थे, तब गुलाम अहमद में या इसलाम के किसी और कट्टर अनुयायी में भी नौवें सिद्धान्तानुसार मोजिज़ा का आना असम्भव है और न उनको सामर्थ्य है कि इस प्रकार की बातों में दम मार सके।

वादी—परन्तु इसलाम में स्थिति इसकी निश्चित् है, सो यदि इन दोनों प्रकार के प्रमाणों में से किसी की सिद्धि में सन्देह हो तो इसी जगह कादियां

में आकर,अपनी सन्तुष्टि कर लेनी चाहिये और यहभी पंडित साहिब को लिखा गया कि आपके आने जाने का साधारण व्यय तथा भोजन का उचित व्यय हमारे जिम्मे रहेगा और वो पत्र उनके कई आर्य्यों को भी बतलाया गया। रजिस्ट्रियों की उनके हस्ताक्षर युक्त रसीद भी आगई।

प्रतिवादी—हमें सन्देह था और अब भी सन्देह एवं असत्य जानते हैं कि यह आपको सर्वथा षड्यन्त्र है। हम कादियां में भी गये, परन्तु आपने किसी प्रकार की तसल्ली नहीं की और ना ही कोई मोजिज़ा बतलाया। जब उनके एक शिष्य से भी पूरे न उतर सके तो उनको निमंत्रित करना केवल एक झूठों की सी शरारत थी।

"आप मियां मांगते और बाहिर खड़े दरवेश" यह एक पंजाबी लोकोक्ति है और पूर्णतया आप पर घटती है। आप कर्जदार और गुजारे से लाचार, पर इतने इश्तिहारी रुपयों के दावेदार हैं। सार यह कि आप कागज़ पर सब अंकों को रकमें लिख सकते हैं, परन्तु नक़दी नदारद है।

कर्ज़ ने मिरज़ा निकम्मा कर दिया।
वरना तुम भी आदमी थे काम के॥

रहस्य—जब मिरज़ा साहिब की शादी (जिसकी खुदा की ओर से मुनादी आई थी) देहली में हुई, तो प्रसिद्ध किया कि नवाब नासर के घर में मेरी बरात जावेगी। कादियां के कुछ हिन्दू बरात में गये, पर मुसलमान नहीं थे। यह वहां जाकर हैरान हुए, न रियासत, न देश, न सेना, न ऐश्वर्य, कोरे नवाब नासर हैं। बहुत से उनके मूर्ख चेले इसको करामात जानते थे और जब अन्त में नवाब नासर केवल मियां नासर निकले, तो सब कलई खुल गई। क्योंकि आपने कई आर्य्यों का नाम (जिन को पत्र बतलाया गया था) नहीं लिखा, अतः आपका पत्त संदिग्ध है, विश्वास योग्य नहीं।

वादी—पर उन्हों ने जब लोक और लोक लज्जा के कारण से इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया,यहां तक कि जिस दुनियां से उन्हों ने प्यार किया एवं सम्बन्ध बढ़ाया, अन्त को बड़े शोक से उसको त्याग कर और सब रुपये पैसे से विवश होकर इस असार संसार से कूच कर गये और बहुत से पाप, अधर्म और कुफ़र के पहाड़ अपने सिर पर लेगये।

प्रतिवादी—वो तो संन्यासी थे। उन पर इन में से कोई भी बात नहीं घट सकती और न घटती है। न संसार से उनका प्रेम था और नाही रुपये पैसे से। वो तो मनुष्यों को पाप, अज्ञान और कुफ़र से निकाल कर, सत्य, तत्व, एकत्व तथा मुक्ति की ओर प्रेरित कर गये। सैंकड़ों मुहम्मदियों को द्वेष, रक्तपात, द्वैतवाद और अविद्या से बचा गये। रहीं आप की गालियां, सो इनका जवाब मेरे पास नहीं है।

वादी—और उनके परलोक यात्रा की सूचना भी जो ३० अक्टूबर सन् १८८३ को हुई, अनुमान ३ मास पूर्व दयालु भगवान् ने इस दास को दे दी थी।

चूंकि ये यह ख़बर कुछ आर्य्यों को भी बतलाई गई थी। और यह यात्रा तो प्रत्येक को करनी ही पड़ेगी और कोई आगे कोई पीछे मुसाफ़िर ख़ाना को छोड़ने वाला है, पर यह शोक है कि पंडित साहिब को भगवान् ने ऐसा अवसर उपदेश पाने का दिया कि इस दास को उनके समय में पैदा किया, पर वो अनेक प्रकार के ज्ञान होने पर भी शिक्षा ग्रहण करने से अभागे ही गये। प्रकाश की ओर उनको बुलाया गया, पर उन्हों ने इस पापी जगत के प्रेम से प्रकाश को स्वीकार न किया और सिर से पैर तक अंधकार में फंसे रहे। एक ईश्वर भक्त ने बारम्बार उन्हें उनके कल्याण के लिये अपनी ओर बुलाया, परन्तु उन्हों ने इस ओर पग भी न उठाया और व्यर्थ ही आयु को अनुचित पक्षपात तथा अभिमान में गवा कर, बुलबुले की तरह नष्ट कर दिया। ऐसी अवस्थामें कि इस दासके १००००)रु० के विज्ञापन के मुख्य निशाना वही थे और इस कारण से एक वार रिसाला बिरादरे हिन्द में भी उनके लिये विज्ञापन प्रकाशित किया गया, पर उनकी ओर से कभी आवाज़ न उठी, यहां तक कि मिट्टी या राख़ में जा मिले। अतः भ्रातृवर्ग! आप भी इन पंडित साहिब के हाल से शिक्षा ग्रहण करो।

प्रतिवादी—यदि उनकी मृत्यु की सूचना अर्श वाले रब ने कादियां में आकर आपको दी थी, तो आपने क्यों तीन मास के अन्दर अथवा उसके पीछे विज्ञापन प्रकाशित न कराये? क्यों आम बाज़ारों में मुनादी न कराई? ताकि हजारों लोग आपकी (मआज़अल्ला व नऊज़ बिल्ला) सचाई से आर्य धर्म्म को छोड़ देते और व्यवस्था निश्चित हो जाती और क्यों क़यामत मुजरिमाना कर सन् १८८४ में यह चालाकी से दर्ज किया? क्यों लाहौर या अमृतसर के आर्य समाज में पत्र न लिखा? क्यों सन् १८८४ के भाग में भी किसी आर्य का नाम न लिखा और किस कारण से स्वामी जी को रजिष्ट्री पत्र न भेजा? क्यों उनकी रसीद न मंगवाई? यतः इन बातों से आपने कोई नहीं की, आप का मोजिज़ा झूठा होगया और हमें कहना पड़ता है कि जो मुट्ठी लड़ाईके पीछे याद आवे अपने सिर पर मारनी चाहिये। पंडित जी के उपदेश का वृत्त सूर्य्य की न्याईं जगत पर प्रगट होगया, पर आपके सम्बन्धमें बड़ा ही शोक है कि जिस प्रकार आपके कुछ भाई सत्य पर आगये हैं, यदि आप भी अधर्म तथा अविद्या से निकल कर, ईश्वर को छलिया और फ़रेबी कहने से बच कर, हजर उल अस्वद की पूजा और सकीना ताबूत के आगे माथा घसाई तथा ईश्वर को रिश्वती एवं पक्षपाती मानना छोड़ कर, वैदिक धर्म्म की सचाई एवं एकेश्वर पूजा की ओर झुक जाते तो कितना जगत को लाभ पहुंचता और आपका कल्याण होता। यद्यपि वो सत्योपदेष्टा परलोक सिधार गये, पर अभी तो दया का मेघ बरस रहा है। उनके सारे कथनों से सत्य ही सत्य प्रकाशित हो रहा है। आईये! तसल्ली कर जाईये। हम आपके व्यय और भोजन के जिम्मेवार होते हैं। धन की पूजा छोड़िये और जुआ बाज़ी से मन मोड़िये। आपके पास वही मेराज के रात वाली रौशनी है या कोई और। यह रौशनी आज कल अंधेरी सिद्ध होगई·

है और इस रौशनी से जगत में रक्तपात का अंधाधुन्ध तूफ़ान फैल गया है। यह आपको रौशनी दवात की रौशनाई है और किसी ने 'अंधे का नाम नैनसुख' की लोकोक्ति इसी के अनुकूल बनाई है। आप ईश्वर के दास नहीं, "गुलाम अहमद" (मुहम्मद साहिब के दास) हैं और मौलवी अबदुल्ला के कथनानुसार—

नारे दोज़ख़ (नरक अग्नि) के इरादे ठन गये।
जो कोई बन्दों के बन्दे बन गये॥

नरक के निवासी हैं। यदि आप ईश्वर के दास होते तो परमेश्वर को इतने दोष न देते और इतने कलङ्क न लगाते, हां अन्धकार से निकलने का यत्न करते, परन्तु आप ने कुछ भी नहीं किया, तब हम आप को ईश्वर का दास किस तरह से जानें। आप तो विषय के उपासक और मनके दास हैं तथा रुपये एव नोट इकट्ठे करने के लिये सब ओर चन्दे लगा रहे हैं। मौलवी रूमी आपके विषय में कहता है, "दुनियां के लोग पूरे २ काफ़िर हैं।" दस हज़ार रुपये का आपका विज्ञापन आद्योपान्त झूठ, छल और जाल है। आप की मनक़ूला ग़ैर मनक़ूला किसी प्रकार की जायदाद इस मूल्य की नहीं है। सारे क़ादियां नगर के हिंदू, मुसलमान व आर्य मेरे कथन के साक्षी हैं, एवं सारे ज़िला गुरुदासपुर के लोग आप की चालाकी और गुज़ारे का हाल जानते हैं। विरादरे हिंद पत्र स्वामी जी के देखने में नहीं आता था कारण कि वह फ़ारसी उर्दू नहीं जानते थे और पण्डित शिवनारायण विरादरे हिंद का सम्पादक संस्कृत नहीं जानता, अतः वह विज्ञापन सर्वथा व्यर्थ तथा निष्फल था। हां, यदि भारत मित्र कलकत्ता या किसी और नागरी पत्र में छपवाते तो कुछ बात होती, पर उनमें नहीं छपवाया। आश्चर्य यह है कि आपको मक्का के ख़ुदा ने जैसा कि उस समय अरबी में इलहाम भेजा था, संस्कृत में क्यों इलहाम न भेजा? जिससे कि आप स्वामी जी से शास्त्रार्थ कर विजय पाते तथा उनके मरने के पीछे इतना न रोते और ना ही व्यर्थ की चिन्ता एवं क्रोध में जीवन खोते, परन्तु एक विचार आता है कि स्वामी जी के उपदेशों से जब बहुत से मुहम्मदियों ने अत्यन्त दूषित मन्तव्यों से हाथ उठा लिया तो ऐसी २ बातें सुन कर, मिरज़ा साहिब ने जो चिंता कर रहे थे, अर्श के रहमान के दर्बार में प्रार्थना की होगी कि तू हमारे पूर्वजों के नाम की लाज रख, हमारा तलवार का कोष व्यर्थ ही बरबाद हो रहा है, कुछ निरर्थक ऊट पटांग और निर्मूल आक्षेप लिख कर उसके रोकने का उपाय कर तथा उसको किसी प्रकार मना करदे, जिससे कि हम ग़नीमतों से वञ्चित न रहें पर सत्य का सूर्य उन दिनों निस्फ़ुल निहार पर था। जिसने थूका उसके मुंह पर गिरा और जो मुक़ाबले में आया उसने मुंह की खाई तथा वेद धर्म पर विश्वास लाया। मुहम्मदियों के ख़ुदा ने अपनी पाकेट बुक से लोहे महफ़ूज़ में देखा होगा और अर्श पर घबराया होगा तथा अपने प्यारेका प्रेम घटता देखकर फ़ाल डलवाई होगी कि उस महात्मा का जीवन काल कितना बाकी है। स्वामी जी के अन्तर्धान होने के पश्चात मुसलमानों के रब, अर्श, मक्का या क़ादियां वाले रब

को उनकी मृत्यु का समाचार मिला होगा, तो झट कबूतर बन कर कादियां में उतरा होगा और सलाम अलेकुम कह कर हाल बतलाया होगा। इस बात के बिना हम मिरज़ा साहिब के कथन को April Fool से अधिक मान नहीं दे सकते। ईश्वर उन्हें सुबुद्धि देवे और वेदोक्त धर्म की ओर प्रेरित करे।

अब हम मुहम्मद साहिब और स्वामी दयानन्द के जीवन का मुक़ाबला दिखलाते तथा उनके आचार व ईश्वर विचार के विषय में इसलामी विद्वानों की साक्षियां लाते हैं। ईश्वर करे कि पाठक सत्य और असत्य का निर्णय कर सकें।

मुहम्मद साहिब और स्वामी जी के जीवन की तुलना।

मुहम्मद साहिब—इनके माता पिता मूर्ति पूजक थे और मक्का के मन्दिर के पुजारी। कुरान में लिखा है, (सूरत उलज़ुहा) मुहम्मद तू मार्ग भूला था, पस तुझे ज्ञान दिया। पच्चीस वर्ष की उमर में यह एक धनवान् विधवा स्त्री खदीजतुलकिबरा नामक से ऋण लेकर शाम देश में व्यापार व यात्रा के लिये गये। जब वहां से लौटे, खदीजा से जिसकी आयु ४०वर्ष की थी विवाह किया और धनवान् होगये। जब तक वह जीवित रही, दूसरा विवाह नहीं किया। २५ वर्ष तक यही एक स्त्री रही, क्या कि वह धनवान् थी। जब वह मर गई तो ५० वर्ष की आयु में जो पैग़म्बरी का दसवां वर्ष था (१) सूदा, (२) आयशा, (३) ज़ैनब (४) उमसलमा, (५) ज़ैनबबिनतहजश, (६) जवारिया, (७) उमहबीबा (८) साफ़िया, (९) हफ़सा, (१०) मैमूना को अपने अधिकार में लाये। यह दस और एक खदीजा, सब ग्यारह हुई। कई लेखक इनसे अधिक बतलाते हैं। मुआरज उल नबुव्वत पृ० २८ रुकन ४ में लिखा है कि, "आयशा विवाह के समय नौ वर्ष की थी," और खुदा ने एक फ़रिश्ते के द्वारा दो बार आयशा की तस्वीर हरीर में नक्श करवा कर, मुहम्मद साहिब को स्वप्न में विवाह से पहिले दिखलाई थी और उसी दिन आयशा से +समागम किया। यह सब हाल मुआरज उल नबुव्वत के उपरोक्त पृष्ठ में वर्णित है। हज़रत इमाम ग़ज़ाली साहिब कीमीआय सआदत पृ० ८४२ में फ़रमाते हैं, "रसूल सलल्ला अलहवासल्लम" हर रात एक स्त्री के पास जाते और आयशा से अधिक प्यार करते थे और कहते थे कि मुझ से जितना होता है यत्न करता हूं, पर दिल अपने काबू में नहीं। यदि कोई एक स्त्री से तृप्त न हुआ हो और न चाहता हो कि उसके पास जावे, तो

+इसके साथ ताज़ीरात हिन्द धारा ३७६ को पढ़ो।

चाहिये कि उसको तलाक़ दे दे, कैद में न रक्खे, क्यों कि "रसूल सलल्ला अलेवा सल्लम" ने सूदा को तलाक़ देना चाहा कि बूढ़ी होगई है। उसने कहा मैंने अपनी बार आयशा को दे दी, मुझे तलाक़ न दे कि क़यामत के दिन तेरी औरतों में से होऊं। उसको तलाक़ न दिया। दो रात आयशा के पास रहते और औरों के पास एक।

महाशय गण! इस स्थान पर सूरत तलाक़ को ध्यान से पढ़ो, जहां लिखा है, "डरो ईश्वर पालक अपने से, न निकाल दो स्त्रियों को उनके घरों से और न निकल जावें वो, पर यह कि करें निर्लज्जता प्रकट और यह हैं हदें अल्लाह की और जो कोई निकल जावें अल्लाह की हदों से, पस निश्चय अन्याय किया उसने अपनी जान पर," (शोक! मुहम्मद साहिब ने इस खुदाई हद को तोड़ डाला) कीमीआय सआदत पृ० २५२ पंक्ति २१ में है, "ग़राइबुल अख़बार में लिखा है कि रसूल ने कहा कि मैंने अपने में कामेच्छा की दुर्बलता देखी और जिबराईल से इलाज पूछा। उसने कहा कि हरीसा खाया करो। हज़रत की काम वासना की कमज़ोरी का कारण यह था कि आपकी नौ स्त्रियां थीं और वो और लोगों पर हराम होगई थीं, उनकी आशा सब जहान से टूट गई अर्थात् और किसी के निकाह में नहीं आ सकती थी।" यही वर्णन हदीस में है और विशेषतया अबु हरीरा से रिवायत है और अधिक केवल इतना है कि हरीसा में ४० पुरुषों की शक्ति है। पृ० २८३ भाग २ मुआरज उल नबुव्वत में लिखा है कि मैमूना, बनत अलहारस नामक ऊंट पर चढ़ी हुई जा रही थी। उस पर हज़रत का मन मोहित हुआ और व्यवस्था दे दी कि ऊंट और ऊंट वाली मेरा है। उसके साथ वहीं ही समागम किया और उसको अपने साथ घर में तथा ऊंट को भी बैतुल माल में रक्खा, उसी समय यह आयत उतरी, (सूरत अहज़ाब) "हलाल है वो ईमान वाली जो बिना निकाह के अपना स्तीत्व नबी को दान करदे यदि नबी भी उसको अपने निकाह में लाना चाहे। यह ख़ास तेरे लिये हुक्म है"। मदारजउल नबुव्वत में लिखा है कि ज़ैनब जो, उसके मुंह बोले बेटे ज़ैद की स्त्री थी उससे भी हज़रत ने निकाह के बिना समागम किया और पूछने पर कहा कि ख़ुदा ने आसमान पर मेरा और ज़ैनब का निकाह पढ़ा है तथा जिबराईल गवाह है। पूरा वृत्तान्त तफ़सीर हुसैनी में इस प्रकार है, "पस जब पूरी करली ज़ैद ने उससे काम वासना, हमने उसको तेरी पत्नी बना दिया कि न हो तेरे पीछे मुसलमानों पर हर्ज, मुंह बोलों की स्त्रियों के विषय में, जब पूरी करलें उनसे इच्छा और है हुक्म अल्लाह का किया गया।" व्याख्या, "सैयद आलम सलअम (मुहम्मद साहिब) इस आयत के उतरने के पीछे ज़ैनब के घर दस्तूर के विरुद्ध गये। ज़ैनब ने कहा अल्लाह के रसूल बिना ख़ुतबा और गवाह के। हज़रत ने कहा कि ख़ुदा ने निकाह पढ़ा और ज़िबराईल गवाह, तथा ज़ैनब सब स्त्रियों पर गर्व करती थी कि परमेश्वर ने मेरा पैग़म्बर से निकाह पढ़ा और तुम्हारे निकाह पढ़ने वाले तुम्हारे संरक्षक थे।"

लालच और तलवार के बल से मत चलाया। कुरान सूरत बकर कीआयत माआलना इत्यादि, पर जलालीन वाला मुफ़स्सर कहता है, "मुहम्मद साहिब पहिले काबाकी ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ा करते थे। जब मक्के से मदीने गये तो यहूदियों को राज़ी करने के लिये बैतुल मुकद्दस को ओर नमाज़ करने लगे। एक वर्ष या सत्रह मास बैतुल मुकद्दस की ओर नमाज़ करते रहे, फिर उधर से फिर गये और उसी काबे को ओर सिजदा करने लगे। (तनिक ध्यान से पढ़ो] मुसलमान होने के लिये रुपया और ऊंट भी देते थे। लूट में जो लोगोंकी स्त्रियां पकड़ लाते थे, वो सैनिकों को भेड़, बकरी की भ्यांई पारितोषिक मिलती थीं। (देखो कुरान सूरत नसा।5) "हराम हैं तुम पर निकाह हुई औरतें, पर जो तुम्हारे हाथ आजावें (युद्ध में तो हराम नहीं ?) हुकम हुआ अल्लाह का तुम पर।"

अनुवादक अब्दुल कादर फ़ायदा सात में कुरान पृष्ठ ८० के मार्जन पर लिखता है, "काफ़िर स्त्री व पुरुष में निकाह था, औरत (मुसलमानों को) कैद में आये जिसको पहुंचे हलाल है।"

लूट के माल का प्रलोभन देकर बहुतों को फांसा और उन्होंने उसी लूट मार को मुसलमानी दीन जाना तथा उस लूट के माल से अपना और खुदा का हिस्सा भी ठहराया। देखो सूरत इनफ़ाल, "और याद रक्खो कि जो लूट लाओ कुछ चीज सो अल्लाह के वास्ते, उस में से पांचवां भाग और रसूल के और सम्बन्धियों तथा अनाथ के एवं निर्धन के और मुसाफ़िर के।" अनुवादक कुरान पृष्ठ १८० पर हाशिया चढ़ाता है, 'जो माल काफ़िरों से लड़ कर लेवें वो लूट है, इस में पांचवां भाग भेंट अल्लाह की है वास्ते ख़र्च रसूल के, कि रसूल को खर्च है अपना, अपने सम्बन्धियों का और निर्धन मुसलमानों का तथा हज़रत के पीछे भी ख़र्च होते हैं सरदार को; फिर लूट में चार भाग रहे सो सेना को बांटना— सवार को दो भाग और प्यादा को एक। जो धन संधि से लिया वो सारा खर्च मुसलमानों का।" शोक!

अगर तेगे जफ़ा* से शेरे नर मारा तो क्या मारा।
न मारा नफ़्से इम्मारा को गर मारा तो क्या मारा॥

यद्यपि रक्त का खाना पीना कुरान में हराम है, पर अहद को लड़ाई में जब हज़रत का लहू जारी हुआ तो अबूसईद हजरी के पिता हालकइब्नसनान ने उनके घाव पर मुंह लगा कर रक्त पी लिया और मुहम्मद साहिब ने कहा यह मनुष्य बहिश्तती है और प्रायः मूर्ख लोगों को अपना थूक पिलाया करते थे। (देखा शफ़ा काज़ी अरबी पृष्ठ २१२ पंक्ति १४ व १५)

मदारज उल नबुव्वत बाब १ में इस प्रकार वर्णन है, उम ऐमिन लौंडी ने हज़रत का पेशाब पी लिया और हज़रत ने उसको इस मूर्खता के कर्म से मना न किया, किन्तु हंस कर कहा कि अब तेरे उदर में कभी पीड़ा न होगी और मुंह धोने तथा कुला करने को भी न कहा। दूसरी बार बरका नामक स्त्री ने उसका

(१) अत्याचार की तलवार

पेशाब पिया, उसको भी आपने प्रसन्न होकर सोम रस (नोशदारू) बता दिया कि तू कभी बीमार न होगी। एक पुरुष ने भी एक बार हज़रत का पेशाब पिया था। (शफ़ा काज़ी अरबी पृ० २१२ पंक्ति २०)

एक मुहम्मदी नापित ने हज़रत का लहू रोग का निकला हुआ पिया। आपने उसे कहा तू कभी रोगी न होगा, जब कि उसी गन्दे खून से स्वयमेव रोगी थे। इसी प्रकार किसी रोग के कारण, हज़रत ने पुनः खून निकलवाया था, उसको अब्दुल्लाइबनज़बीर पी गया। मुहम्मद साहिब ने कहा, अब्दुल्ला अब तू दोज़ख में न जायगा। (शफ़ा काज़ी अरबी पृ० २१२ पंक्ति १५)

हज़रत ने एक बार पानी के प्याले में हाथ मुंह धोया और उस पानी में थूका तथा यारों को पीने के लिये दिया, जिसको बलाल और अबूमूसा ने तथा उमसलमा ने भी पिया।

मदारज उल नबुव्वत और शफ़ा में है कि हज़रत की विष्ठा (पाख़ाना) भूमि निगल जाया करती थी। जब बीबी आयशा ने पूछा तो कहा, नबियों और रसूलों का पाखाना भूमि निगल जाया करती है। (शफ़ा काज़ी मुद्रित नवल किशोर सन् १२८४ हि० भाग १ बाब २ फसल ३ पृ० २१२ पंक्ति ५ से ८ तक)

काज़ी अय्याज ने शफ़ा में लिखा है कि कई विद्वान् मानते हैं कि मुहम्मद साहिब का पाख़ाना व पेशाब पवित्र थे। शाफ़ईया उलमा का कथन है कि मुहम्मद साहिब का मल एवं पेशाब दोनों भोजन की न्याईं पवित्र और भक्ष्य थे। जनाब अब्दुलअली साहिब कारी अमृतसरी ने भी अपनी पुस्तक में जो नवाब बहावल पुर की सिफ़ारिश से प्रकाशित कराई है, इस बात की भली भांति पुष्टि की है। वाह! धन्य हो इस से अरब की अविद्या और साथियों की चतुराई को जान लेना चाहिये।

मज़ाकुल आरफ़ीन लमा ११ पृष्ठ १० व २१ में लिखा है कि मुहम्मद साहिब जब मृत्यु के रोग में फंसे, नित्य प्रति उनकी खाट एक २ स्त्री के घर में जाती थी। अन्त में निश्चित हुआ कि आपका, बीबी आयशा से अधिक प्रेम है, इनकी खाट इसी के घर में रहे और एक दिन हज़रत ने दिन में ६ स्त्रियों से समागम किया। इसी पुस्तक के पृष्ठ ८२ में लिखा है और यही वर्णन मुआरज उल नबुव्वत में भी है (रुकन ४ पृष्ठ २७)

'आयशा की कुछ विशेषतायें

दूसरा यह कि परमेश्वर से वही उस के बिस्तरे में उतरती थी, अर्थात् मुहम्मद साहिब के पास वही तब आती थी, जब आप बीबी आयशा के लिहाफ़ में होते थे और ऐसा ही तारीख़ हबीबुल्ला में भी लिखा है। अतः सच है, क्यों न हो यह नबुव्वत का पर्दा है और तारीख़ हबीबुल्ला के पृष्ठ १६६ फ़सल ३० (मुद्रित नवल किशोर सन् १८७२) में लिखा है कि मरते समय प्राण नहीं निकलता था, बहुत घबरा रहे थे। अन्त में बीबी आयशा की झूठी दांतुन इनके मुंह में खुवाई गई, तब प्राण निकला। यही वर्णन मुआरज उलनबुव्वत

फ़ो मदारज उल फ़तवत रुकन ४ बाब १३ पृष्ट ३४३ में लिखा है। सदीका से भी इसकी पुष्टि हुई कि कहा, 'प्राण त्यागने की अवस्थामें हजरत का सिर मेरी गोद में था। अब्दुल-रहमान-बिन-अबोबकर आया। उसके हाथ में हरी दांतुन थी। हजरत रसूल ने उस पर दृष्टिपात की। मैंने जाना कि वो दांतुन चाहता है। मैंने पूछा कि हे अल्लाह के रसूल ! दातुन चाहते हो। सिर हिला कर संकेत किया कि हां। मैंने दांतुन अपने भाई के हाथ से ले ली और अपने मुंह की थूक में उसे तर करके, हज़रत को दी, उन्हों ने ले ली और जल्दी २ दातुन की। उस समय मुंह मेरे सीने पर था। मकान की छत पर नज़र डालते थे। यहां तक कि आपका पवित्र आत्मा परलोक को सिधार गया। रौज़तुल अहबाब में लिखा है कि एक यहूदन के घर में खाना खाने गये। उसने खाने में विष डाल दिया उसी। विष के प्रभाव से रोगी रह कर मरे। अन्त में गद्दी को बाबत कुछ कहना चाहते थे। कलम दवात मांगी। उमर ने कहा, इस समय हज़रत के होश ठिकाने नहीं, कुछ का कुछ कह रहा है। इसके कथन पर विश्वास नहीं। मृत्यु की पीड़ा और चिता में फंसा है। सार यह कि ख़िलाफ़त के विषय में कोई प्रबन्ध न कर सके। मरने से पूर्व बड़ा सख्त ज्वर आया और सिर में पीड़ा हुई। अन्त में बीबी आयशा की जंघा पर सिर रख कर प्राण त्यागे। उमर साठ या तिरसठ वर्ष की थी। मदीना में दफ़न हुए।

रौज़ातुल अहबाब में स्त्रियों से हज़रत के व्यवहार की बाबत लिखा है कि वो उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करता था और यदि उनमें से किसी से किसी प्रकार का प्रार्थना होती और उसमें लाचारी न होती तो उसे पूरा करते। इस की प्रमाण यह दिया है कि कभी आयशा सदीक़ा आब-ख़ोरे से पानी पीती, हज़रत उस आब खोरे को उससे लेते और जिस स्थान से उसने पानी पिया था, वहीं से पीते और जब गोश्त की हड्डी में से दांतों से फिर एक डुती तो हज़रत उससे हड्डी ले लेते उसके मुंह वाली जगह से गोश्त खाते और जब आयशा (रजस्वला होती तो उसकी बगल में सिर रख कर, कभी उस पर तकिया लगा कर कुरान पढ़ते। दो बार सफ़र में आयशा के साथ दौड़ने में मुक़ाबला हुआ। पहिली वार आयशा उससे आगे निकल गई और दूसरी वार आयशा मोटी होगई थी, इस कारण हज़रत आयशासे निकल गये। अतः फ़रमाया कि यह बाज़ी उस जीत का जवाब है, जो तूने प्राप्त की थी। कभी २ ऐसा हुआ कि आप की सब औरतें एक स्थान पर एकत्रित होतीं, तो आप उन में से किसी पर हाथ रखते और दिल्लगी करते। प्रायः ऐसा हुआ कि एक रात या एक दिन में सब स्त्रियों के पास नौवार हो आते और एक ही बार स्नान करते। कभी २ सब पर त्वाफ़ करते और प्रत्येक समागम के पीछे स्नान करते। उन्हों ने कहा, क्यों सब के लिये एक स्नान नहीं करते ? कहा, यह बुद्धिपूर्वक, पवित्र तथा स्वास्थ्य जनक है। अमलमा कहती है कि हज़रत साहिब जब अपनी स्त्रियों में से किसी के साथ समागम करते तो मुबारिक आंख ······ ······ और कपड़ा सिर पर पहनाते तथा उस स्त्री को कहते ············ और

समागम करते, क्यों कि आपको तीस मनुष्यों की कामशक्ति प्राप्त थी। अतः आपके लिये हलाल था कि जितनी स्त्रियों से चाहें निकाह करें, नौ या नौ से अधिक। और कहते थे "हुब्बे...फ़िस्सलान," रौज़तुल अहबाब मक़सद १ बाब २ में लिखा है, "आयशा से यह रिवायत है कि वो कहती थी, मैंने किसी मनुष्य को नहीं देखा, जिस पर पैग़म्बर से बढ़ कर सख्त मर्ज़ हुई हो। रसूलिल्ला मौत के रोग में बहुत घबराहट ज़ाहिर करते थे और अपने फ़र्श पर लौट पौट होते थे।" रौज़तुल अहबाब मक़सद ३ बाब ३ फ़सल १. "मैमूना बिनतुल हारिस से रिवायत करते हैं कि उसने कहा, मैं और खुदा का रसूल दोनों ने समागम किया। मैंने बासन से पानी लिया और नहाई, थोड़ासा पानी बासन में रह गया रसूल ने उस शेष पानी से स्नान किया। मैंने कहा, मैंने इस जगह से स्नान किया। फ़रमाया, 'लैसा अललमा जनाबतह'

रौज़तुल अहबाब मक़सद १ बाब २ वसीअतनामे से, "जुमा के दिन जब पैग़म्बर का रोग बढ़ गया, यारों को फ़रमाया मेरे निकट आओ, ताकि तुम्हारे लिये वसीअत लिखूं कि मेरे पीछे गुमराह न हो जाओ। इसके पीछे असहाबों में मतभेद हो गया और एक दूसरे से झगड़ने लगे। असहाब में से कइयों ने कहा, उसकी शान क्या है और किस हाल में है। यह बात उसकी उन बातों की न्याईं है जैसे मनुष्य रुग्ण अवस्था में घबरा कर कहते हैं। उमर ने कहा, रोग ने पैग़म्बर पर ग़लबा (अधिकार) कर लिया है और क़ुरान खुदा की उत्तम पुस्तक तुम्हारे मध्य में है। फिर झगड़ा बखेड़ा हो गया।

जब झगड़े और मत भेद हद्दसे बढ़गये, तो फ़रमाया, उठो मेरे पास से, क्योंकि किसी पैग़म्बरके पास वो कुछ कहना ठीक नहीं, जो मेरे पास कहा गया। रिवायतहै कि अब्दुल्लाबिनअब्बास ने कहा कि बड़ा दुख यह था कि रसूल सलिल्ला अलैहु वासल्लम को वसीअत नामा न लिखने दिया। मरते समय आयशा के वियोग से रोते थे और उसके सौन्दर्य तथा रूप को देखते थे। खुदा ने उसकी मूर्ति बना कर जन्नत में दिखाई, तब कहीं अशान्त मन को शान्ति आई। मदारजुल नबुव्वत में इस प्रकार लिखा है कि, "खुदा के रसूल ने फ़रमाया कि निश्चय मौत मुझ पर आसान होगई, क्योंकि मैंने बहिश्त में आयशा के हाथ की हथेली देखी और ज्ञात हुआ है, हज़रत साहिब को आयशासे अत्यन्त प्रेम था, यहां तक कि उसके बिना सन्तोष नहीं हो सकता था। अतः उनके लिये आयशा की शक्ल की स्त्री बनाई गई, ताकि आसान होवे उस पर मौत उसके कारण।"

जिस प्रकार के अत्याचार और क्रूरता से दीन चलाया, उनसे यद्यपि कोई बुद्धिमान् अनभिज्ञ नहीं, तदपि एक विशेष घटना की ओर ध्यान आकर्षित करता हूं। बोस्तां बाब २ के काव्य में वर्णन है, "मैंने सुना कि रसूल के समय में तै जाति के लोगों ने ईमान का प्रचार स्वीकार न किया, शोर और नज़ीर के साथ लश्कर भेजा गया, जिसने उनके एक टोले को क़ैद कर लिया। हुकम हुआ इनको तलवार से मारदो, क्योंकि अपवित्र थे और अपवित्र मतके थे। एक स्त्री ने कहा मैं हातम की लड़की हूं, इस से मुझे बड़े २ नामवर हाक़िम चाहते हैं। इसलिये

ईश्वर के प्यारे, हे माननोय! मुझ पर दया कर। क्योंकि मेरा पिता दयावान था। शुद्ध सम्मति वाले पैग़म्बर की आज्ञासे उसके हाथ और पांओं से बेड़ी खोल दी गई। उस बाकी जाति में तलवार चलाई गई। वे रोक टोक रक्त का दरिया बहाया गया।"

सार यह कि इसी प्रकार सौ वर्ष रक्तपात और सेना के बल से अरब शाम, रूम, ईरान और मिसर के देशों ने अरब की सेना से पराजित हो कर, बलात् मुहम्मदी मत स्वीकार किया। (देखो सीरतुल रसल तारीख़ अबुउल फ़िदा और किताब ख़ामस) अब न्याय प्रिय पाठक वृन्द ईश्वर के लिये सत्या-सत्य की जांच कर असत्य को छोड दें।

स्वामी जी—आपका जन्म सम्वत् १८८१ विक्रमी काठियावाड के मोरवी देश में हुआ। आपके माता पिता मूर्त्ति पूजक उच्च कुल के ब्राह्मण थे। होश संभालते ही ब्रह्मचर्याश्रम (विद्या प्राप्ति) में लग गये। आरम्भ में कई बार आपके पिता आप को भी शिवालय में ले गये, पर नित्य नई शङ्कायें पैदा होती थीं। अन्त में एक रात शिवरात्रि को उनके पिता ने उनसे भी व्रत रखाया और जब रात को जागृण के लिये बैठे, उन्होंने पिता से शङ्का निवारण आरम्भ किया, परन्तु वे शङ्कायें ऐसी न थीं, जो दूर हो जातीं। पहिली शङ्का यह थी कि शिव क्या वस्तु है और कहां रहता है? दूसरी शङ्का यह थी कि इस पूजा से हमको क्या लाभ होगा? आपके पूज्य पिता ने कोई युक्त उत्तर न दिया। हां, यह कहा कि यही मूर्त्ति आवाहन करने से चेतन हो जाती है तथा मोहन भोग आदि को खाती है। अर्धे रात्रि को जब मूर्त्ति पर चूहे दोड़ने लगे और मूर्त्ति ने कुछ शक्ति न दिखलाई, तो आपका मन मूर्त्तिपूजा से सर्वथा उदासीन होगया तथा मूर्त्ति-पूजा को उसी दिन तिलाञ्जली दे दी। हां, तर्क से निरुत्तर होकर पिता ने भी इनको विद्याध्ययन के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया। इस काल में जब कठोरता होती, तो उनकी पूज्य माता उनको सहायता करती। १५, १६ वर्ष कीआयु तक घर ही में साधारण रूप से संस्कृत की पुस्तकें पढ़ते रहे। इन्हीं दिनों आपके चाचा तथा बहिन का देहान्त होगया, जिन से आपको बड़ा प्रेम था। इन मौतों से आपके मन पर काल की असारता पूर्णतया अङ्कित हो गई और असार संसार से मन उचक गया। सदा उदास रहने लगे।

इन्हीं दिनों माता पिता ने आपके विवाह का प्रबन्ध करना आरम्भ किया, पर उन्होंने प्रथम तो इस विचार से कि अभी ब्रह्मचर्य्या-श्रम पूरा नहीं हुआ, विवाह करना उचित नहीं। द्वितीय-विद्या प्राप्ति का प्रेम निरन्तर नित्य प्रति बढ़ता जाता था। तृतीय--सांसारिक सम्ब-न्धियों के बन्धन से आपके मन में वैराग आगया था। सारांश यह कि सो-लह वर्ष की आयु के पीछे विद्या प्राप्ति की इच्छा से घर से निकले। मार्ग में एक साधु ने इनसे कपड़ा व लोटा आदि ठग लिया। अस्तु शिव रात्रि की रात में (जिसमें आर्य्यावर्त्त की उन्नति तथा कल्याण का शुभ तरु बोया गया था) दिन प्रतिदिन अपने उद्देश्य द्वारा रात्रि का व्रत में गोता लगाने वाले को

म्याईं फिर रहे थे। इनके पिता ने समाचार पाकर एक बार आकर पकड़ भी लिया था, पर वहां से भी भाग गये और फिर देश २ तथा नगर २ घूम कर सत्य विद्या की खोज में तत्पर रहे। कहीं किसी महात्मा से न्याय सीखा, कहीं किसी सत्पुरुष से व्याकरण में दक्षता प्राप्त की, किसी से सांख्य और किसी से वेदांत, किसी से ज्योतिष और किसी से मीमांसा तथा किसी से वैशेषिक पढ़ा। हिमालय की तथा बद्रीकाश्रम की कन्दराओं में ऋषियों, तपस्वियों से मिल कर विकट समस्यायें हल कीं तथा परमात्मा के ज्ञान ध्यान में भी अच्छा अभ्यास किया। इस से निवृत्त होकर वेदों की तत्व प्राप्ति को महर्षि सत्यवादी वेद वक्ता अपूर्व विद्वान् स्वामी विरजानन्द जी सरस्वती की सेवा में मथुरा में भेंट की। "होनहार बिरवे के चिकने २ पात" उन्होंने भी इनकी शिष्यता को आर्य्यावर्त्त के सुधार का साधन समझा। अहर्निश के परिश्रम से कुछ वर्षों में ही वेदों की विद्या में पारङ्गत हो गये। जब विद्याध्ययन से निवृत्त हो चुके तो महर्षि गुरु ने गुरु दक्षिणा मांगी। उन्होंने प्रार्थना की कि जो मेरे पास है, तन-मन से देने के लिये उपस्थित हूं। गुरु ने कहा, हम केवल यह मांगते हैं कि देश का भला करो, अविद्या को हटाओ, वेद विद्या को फैलाओ और मनुष्य पूजा से जनता को बचाओ। उन्होंने साधारण सी क्षमा प्रार्थना के पश्चात सिर आंखों से स्वीकार किया।

विद्या के भंडार गुरु ने जितना और भी विद्या का कोष था, उनको सौंपा अन्तिम विदा का समय सम्वत् १९२० के पश्चात् है। फिर तप और मन पर विजय पाने के लिये चिरकाल तक हरिद्वार के पास योगाभ्यास में निमग्न रहे। जब पूर्ण विद्वान् (आत्मिक तथा शारीरिक शान्ति पाकर) हो चुके तो देश के सुधार पर कटिबद्ध हुए और हिन्दुस्थान को आर्य्यावर्त्त बना दिया। सांसारिक भोग विलास को देश की बुराइयों के मुकाबले में तुच्छ जान कर ईश्वर की एकता का डङ्का सारे देश में बजा दिया और आयु पर्यन्त पाशविक भावों को रोक कर, कुमार्गता तथा मूर्त्तिपूजा का कलङ्क आर्य्यावर्त्त के माथे से मिटा दिया। अन्याय तथा अत्याचार की तलवार चलाने के स्थान में सत्य धर्म के उपदेशों के नुस्खों से अज्ञान-अविद्यान्धकार के असाध्य रोगों को निर्मूल कर दिया। सचाई आपके भाव में कूट २ कर भरी थी और सत्य प्रियता से आपको आत्मिक प्रेम था। सैंकड़ों नास्तिकों को ईश्वर का विश्वास कराया, सहस्रों 'अहं ब्रह्मास्मि' रटने वालों को ब्रह्म का दास बनाया, लाखों मूर्त्तिपूजकों को निराकार परमात्मा के आगे झुकाया और अज्ञान के गहरे गढ़े से निकाल २ कर जगदीश्वर के आगे झुकाया। तीन हज़ार वर्ष से स्थापित मूर्त्तिपूजा की लाठ को सत्य वेदों के उपदेश से पूर्ण वीरता से बड़े २ शास्त्रार्थ करके एक भारी भूकम्प सा लाकर सर्वथा उखाड़ दिया।

किलके कुदरत ने जो खींचीं पांच तसवीरें वहम।
अव्वल उन चारों को इनको नक्शे सानी लिख दिया॥

अधिक क्या आर्य्यावर्त्त का सुधार करते हुए सन् १८८३ के अन्त में रियासत जोधपुर में पधारे और बहुत कुछ सत्य धर्म्म फैलाया, पर स्वास्थ्य ठीक न रहा। रोगी होगये। महाराजा साहिब आपके रोग और विशेष कर इस बात से कि उनकी रियासत में स्वामी जी रोगी हुये, अत्यन्त दुखित थे। विदा करते समय वो स्वामी जी की पालकी के साथ बहुत दूर तक पैदल आये और शोक का प्रकाश किया। वहां से जल वायु परिवर्तनार्थ आबू पर्वत पर गये, फिर अजमेर चले आये, पर रोग न गया। परिणाम यह कि कार्तिक मास दिवाली बदो अमावस के दिन सायंकाल के समय अत्यन्त आनन्द साहृदयता से गायत्री का जाप करते हुये, यह शब्द कह कर प्राण त्यागे। "हे ईश्वर! तेरी आज्ञा पूर्ण हो"। उसी जगह वैदिक रीत्यानुसार मृतक संस्कार किया गया। 'तारीख़ हुई "गुरूबे मेहर दर अजमेर गोईं" सम्बत् १९४० वि०

अब कुछ निष्पक्ष मुसलमानों को सम्मति लिखता हूं—

मौलवी वाजदअली साहिब सेक्रेटरी अंजुमन इसलामिया मुलतान की सम्मति, (अखबार दशोपकारक पृ० ६, २८ नवम्बर सन् १८८३ से उद्धृत)

ऐ आर्य्यावर्त्त! तेरी बदकिस्मती पर मुझे रोना आता है। ऐ आर्य्यावर्त्त! तेरी बेकसी पर मुझे गैरत आती है। ऐ आर्य्यावर्त्त! तेरी बेपरोबाली पर (पत्र और बाल के बिना होना) पर मेरा दिल कुमलाया जाता है। कैसी जल्दी तेरी तय्यारी के सरचश्मा को बन्द कर दिया गया। ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम शोरख्वार (दूध पान वाला) परवरिश पायें। ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम दुनियां को रफ्तार के साथ उठना सीखें। ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम इन वाही तबाही फंदों से निकलें। ऐ खुदा! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम बेजा, बे वजह, बे जरूरत और बेसूद, कयूद (व्यर्थ के बन्धनों) से रिहाई पावें। ऐ खुदा! क्या तुझे मन्जूर न था कि हम इन वाहियात रसमों के बन्दों से नजात पायें। ऐ खुदा। क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम आपस के नफ़ाक को दूर करें। ऐ खुदा! क्या तूझे मंजूर न था कि हम अपनी २ नाम (जाति) को अपना भाई समझ कर उनसे प्रेम करना सीखें। ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम उलूम अलाविया (सूक्ष्म विद्या) को तहसील (प्राप्त) करें। ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम उस सत्य धर्म्म को फिर सत्य देखें। ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम अपना खोया हुआ नाम हासिल करें। ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम उस सत्य धर्म्म को सीख कर तेरी उन आला नेहमतों की कैफ़ीयत उठायें, जो तूने अपने बन्दों के वास्ते मख़सूस की है। नहीं, ऐ खुदा! यह सब कुछ तेरी मर्ज़ी के मुताबिक़, और तेरे मंशा के मुवाफ़िक़ हो रहा था, फिर ऐ खुदा! तू ने हम को यकलख़्त इस तरह बेसरो सामान और बेख़ानमान कर दिया यानि हमारे सच्चे हादी श्री स्वामी जी महाराज दयानन्द सरस्वती को जो हमें यह सब कुछ सिखाते थे, ३० अक्टूबर सन् १८८३, ६ बजे शाम के बुला लिया। दिवाली की रात को मसनूई चिराग़ों से रोज़

रौशन है, लेकिन हक़ीकी आफ़ताब आलिमताब ग़रूब होगया। हम बिलकुल नादान थे, वो हमें हर एक चीज़की शिनाख़्त कराता था। हम कम ताक़ती से उठ नहीं सकते थे, वो हमें उठना सिखाता था। हम बेमायगी (पूंजी शून्यता) इल्म से बात नहीं कर सकते थे, वो हमें बोलना सिखाता था। हम एक दलदले अज़ीम में फंसे हुए थे, वो हमें उसमें से निकालता था और ठीक रीति पर लाता था। हम रसूमातकी बेड़ियां पैरों में और तअस्सुब की हथकड़ियां हाथोंमें दिये हुए थे, वो हमको उनसे नजात देता था। हम अपने भाइयों से हिक़ारत करते थे, वो हमें रफ़ाक़त सिखाता था। हम अपनी आंखों पर पर्दे और दिलों पर मोहरें रखते थे, वो उनको उठाता। हम बईहमा कुछ अपने तईं समझे हुए थे, वो हमें बताता था कि सत्य धर्म्म के वास्ते ज़ाहरी जहान फ़िज़ूल है! हम इस ग़लत इम्तियाज़ को स्वाब जानते थे, उसने उसको ऐब साबित कर दिया। हमने अपना नंगो नामूस गंवा दिया था, वो हमें फिर दिलवाना चाहता था। ऐ ख़ुदा! हम तुझ से बहुत दूर हो गये थे, वो हम को तुझसे मिलाना चाहता था, लेकिन ऐ ख़ुदा! तू ही जाने, तेरे दिल में क्या आई तू ने उसको हमसे इतनी जल्दी जुदा कर दिया। तेरी बातें तू ही जाने।"

मौलवी मुरादअली साहिब एडीटर राजपूताना गज़ट की सम्मति—

(अख़बार कोहेनूर लाहौर नवम्बर सन् १८८३ पृ० १४२६ से उद्धृत)

जनाब एडीटर साहिब कोहेनूर तसलीम। आपका अख़बार सदाक़त शआर कोहेनूर मुवरख़ा १० नवम्बर सन् ८३ मेरे रूबरू रखा हुआ है, जिस में आपने कमाल दानाई और दूर अंदेशी के साथ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज बैकुण्ठवासी की यादगार के बारे में करोड़ रुपये की राय ज़ाहिर फ़रमाई है। बख़ुदा मुझे भी उसी रोज़ से, जिस दिन से कि स्वामी जी महाराज ने हमारे शहर में इन्तक़ाल फ़रमाया, इन्हीं बातों का बहुत बड़ा ख़्याल होरहा है और बारहा इस अरसे में कुछ न कुछ लिखने के लिये क़लम उठाया, लेकिन फिर इसी ख़्याल से कि देखें ऐहलउलराय अललख़सूस आर्य भाई जनाब ममदूह की यादगार के लिये चन्दा जमा करने की तजवीज़ करते हैं या नहीं और जो करते हैं, तो इस चन्दे से क्या यादगार क़ायम करने की तजवीज़ करते हैं, चूंकि सब से पहिले इस बारे में आपने उम्दा और सही राय ज़ाहिर फ़रमाई है, जिसको मैं भी ज़ाहिर करना चाहता था। यह तो सब पर ज़ाहिर है कि स्वामी जी महाराज ऐसे बुज़ुर्ग की कोई न कोई यादगार क़ायम होनी ज़रूर चाहिये। क्योंकि स्वामी जी मरहूम जैसे बुज़ुर्ग बार २ इस संसार में पैदा नहीं होते। अगरचे हम लोग उनकी याद- गार क़ायम करने में दिल व जान से कोशिश कर रहे हैं और करेंगे, मगर फिर भी आप ख़ूब याद रखें कि स्वामी जी मरहूम की यादगार उनके पैरोकार न भी क़ायम करें, तब भी स्वामी जी ऐसे न थे कि उनकी यादगार इस दुनियां के रहने वालों के दिलों से फ़रामोश हो जाय, बल्कि मेरा ख़्याल यह है, जिसको

मैं निहायत सही समझता हूं कि स्वामी जी महाराज की यादगार न सिर्फ़ आर्य मत के लोगों के दिलों में रहेगी, बल्कि अंग्रेज़ों, यहूदियों, मुसलमानों वग़ैरा के सिवाय खुद उन लोगों की किताबों और दिलों में भी स्वामी जी की यादगार हज़ारों वर्ष इत्ता कि क़यामत तक रहेगी। जो उनमें इस दुनिया में झगड़ते रहे हैं और हमेशा उनको मुख़ालिफ़त में गई करते रहे हैं। वजह यह कि मुसलमानों को तेरहवीं और अंग्रेज़ों को अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में हिंदुओं के मत का कोई आलिम फ़ाज़िल ऐसा नहीं गुजरा जैसा कि स्वामी दयानन्द जी महाराज थे, बल्कि अगर मेरा ख़याल सही है तो स्वामी तुलसीदास जी महाराज मशहूर हिन्दी शाइर और स्वामी वल्लभदास के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती ही एक ऐसे वेद मुक़द्दस के आलिम गुज़रे हैं, जिनको स्वामी तुलसीदास और वल्लभ दास पर भी तरजीह दें तो जायज़ है। क्योंकि जो काम स्वामी दयानन्द महाराज की ज़ात बाबरकात से ज़हूर में आये, वो उन दोनों बुज़ुर्गों के ख़्वाबो ख़याल में भी नहीं आये। अगर हम स्वामी दयानन्द जी महाराज को तअल्लुक़ाते दुनियावी से बिलकुल जुदा नहीं बतला सकते, तो यह भी नहीं कह सकते कि वह लोभ या मोह के वश में थे। पस जिस क़दर लोभ या मोह दुनियावी मुआमलात से उनको था, वह इसी लिये था कि ख़लक़उल्ला ख़सूसन अहले हिन्द को अपने जौहरे इल्मी से फ़ायदा पहुंचावें। अगर स्वामी दयानन्द जी महाराज सन्यास लेकर दुनियां का तर्क (यद्यपि अब भी वह वह संसार को त्यागे हुए थे) कर बैठते और मिस्ल बाज़ महात्माओं के किसी से वास्ता न रखते, तो आज के रोज़ यह फ़वायद जो गरोह हनूद को पहुंच रहे हैं कहां से पहुंचते। पस यही वजह है कि दयानन्द जी महाराज ने दुनियां को ऐसा त्याग नहीं दिया कि उससे बिलकुल जुदा हो बैठते और उनका फ़ज़ल व कमाल यों ही पोशीदा रह कर सिर्फ़ उन्हीं के आत्मा को नफ़ा पहुंचाता। हमारे नज़दीक उस क़िस्म के संन्यास से ऐसी यह संन्यास, जिसमें स्वामी महाराज ने अपनी उमर को वदायत कर दिया, हज़ार दरजा बेहतर है। ऐहले कमाल की पूरी क़दरदानी उसके मरने के बाद हुआ करती है। पस अब देखना है कि स्वामी दयानन्द जी के फ़ैज़ को जिससे हज़ारों आदमी आये दिन सेर होते थे, इन्साफ़ पसन्द और दाना लोग याद करके किस क़दर रोयें ? हज़रत हमारा दिल तो स्वामी जी के लिये इस क़दर रोता है कि बयान नहीं हो सकता। ऐसे बाकमाल बार बार कहां पैदा होते हैं। पस अगरचे उनकी ज़िन्दगी के वाक़आत हमारी यादगार के मोहताज नहीं, तो भी आर्य भाइयों पर फ़र्ज़ है कि इस मुआमले में दामे दिरमे सख़ुने बहुत जल्द कोशिश करें ताकि मालिके ग़ैर के बाशिन्दे और आयन्दा आने वाली नसल भी समझ लें कि हमारे बुज़ुर्ग अपने पहले कमाल मुर्शिदों और रिफ़ार्मरों की किस क़दर ख़ातिर व इज़्ज़त करते थे और कैसे दिल व जान से मोतक़िद थे। ऐसे कामों में हिम्मत और क़ौमी इत्तिफ़ाक़ के सबूत के इलावा अपना गर्म जोशी

का भी पूरा इज़हार होता है। अब रही यह बात कि स्वामी दयानन्द महाराज की यादगार किस किस्म की होनी चाहिये। इस अमर में आप की राय से मुझे कुल्ली इत्तिफ़ाक़ है। स्वामीजी की वह ही यादगार उनकी मौत के बाद क़ायम करनी लाज़िम है, जिस को ज़िन्दगी में वह दिलोजान से प्यार करते थे और न सिर्फ़ प्यार बल्कि उसके पूरा करने में अपनी तमाम ताक़त को सर्फ़ कर रहे थे। वह क्या है? वेद का तर्जुमा और तफ़सीर, जिसको सिवाय स्वामी जी के चारों युग में आज तक किसी आलिम ने नहीं किया। करना तो क्या, इरादा भी नहीं हुआ। होता क्या कर? यह काम कुछ ऐसा वेसा तो था ही नहीं और ज़ाहिर है कि इस यादगार से तमाम आर्य लोगों को फ़ायदा अज़ीम क़यामत तक पहुंचता रहेगा और आर्य्यों के अलावा तमाम क़ौमें इस चश्मए फ़ैज़ से अब्दुल अबाद तक सेराब होती रहेंगी, जब इन तफ़सीरों को अपने रूबरू रक्खेंगे तो वही लुत्फ़ हासिल होगा, जो स्वामी जी महाराज से गुफ्तगू करने और उनके वाज़ मुबारक सुनने में हासिल होता था। अब फ़रमाइये कि स्कूल या और कोई यादगार बनाने में यह लुत्फ़ कब मिल सकता है।

राकम मुहम्मद मुरादअली बीमार अज़ अजमेर।

"आनरेबल मौलवी सैय्यद अहमद ख़ां साहिब अलीगढ़ कालिज के प्रबन्धकर्त्ता की सम्मति (क़ोहेनूर लाहौर सन् १८८३ पृष्ठ १४६५)

निहायत अफ़सोस की बात है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती साहिब ने, जो ज़बान संस्कृत के बहुत बड़े आलिम और वेद के बहुत बड़े मुहक्क़िक़ थे, ३० अक्टूबर सन् ८३ को ६ बजे शाम के अजमेर में इन्तक़ाल किया। इलावा इल्म व फ़ज़ल के निहायत नेक और दरवेश सिफ़त आदमी थे। उनके मोतक़िद उनको देवता जानते थे और बेशुबा इसी लायक़ थे वो सिर्फ़ ज्योति स्वरूप निरङ्कार के सिवाय दूसरे की पूजा जायज़ नहीं रखते थे। हम से और स्वामी दयानन्द सरस्वती मरहूम से बहुत मुलाक़ात थी। हम हमेशा निहायत उनका अदब करते थे, क्योंकि ऐसे आलिम और उमदा शख़्स थे कि हर मज़हब वाले को उनका अदब लाज़िम था, शायद हमारी समझ की ग़लती हो, मगर हमको ख़याल है कि स्वामी साहिब मेटर यानि माद्दे को जिन्स की माया से तावीर करते थे क़दीम अज़ली मानते थे। अगर उनका यह ख़याल न होता, तो निस्बत ज़ात बारी के, उनका और मुसलमानों का अक़ीदा बिलकुल मुत्तहद था। बहर हाल ऐसे सख़्श थे, जिन का मिस्ल इस वक्त हिन्दुस्तान में मौजूद नहीं है। और हर शख़्स को उनकी वफ़ात का ग़म करना लाज़िम है कि ऐसा बेनज़ीर शख़्स उनके दरम्यान से जाता रहा।

"स्वामी साहिब की मृत्यु सम्बन्धि कविता" (मौलवी अब्दुल रहीम साहिब अध्यापक मदरसा बरोवाल) (आर्य मित्र अमृतसर ३० जनवरी सन् १८८३ स० ३ भाग ११ से उद्धृत)

बिगो अब्दुल रहीम ईं सानये पुर दरदो ग़म अफ़ज़ा ।
कि ईं आशोबे महशर अज़ चिसां उफ़ताद दर दुनिया ॥
बमाहे कातिको रोज़े दिवाली सी अकतूबर ।
ग़ुबारे तीरा शुद अज़ सम्मत् अजमेर आं चुनां पैदा ॥
कि शुद यौमुज़ ज़हा लेलैलदजा दुर दीदाएमर्दुम ।
मगर गोईकि गरदीद आफ़ताब अज़ चर्ख़ ना पैदा ॥
ज़ि हर जानिब सदाए गिरियाओ वा हसरता ख़ेज़ां ।
बुलन्द अज़ हर तरफ़ अफ़सोसो आहो दरदो वावैला ॥
बदिल गुफ़तम मगर महशर बपाशुद हाय ! हातफ़ गुफ़्त ।
कि नशनीदी सफ़र कर्द अज़ जहां आं ज़ुब्दतुल हुकमा ॥
महाराजे स्वामी दयानन्द आं फ़ख़रे अशराफ़ीन ॥
कि दरज़ीये मशाईं शुद हदायत बख़श दर दुनिया ।
ब हिन्दुस्तां चु शमा आर्य्यां मज़हब मुनव्वर कर्द ॥
चिरागे, मुशरबे वेदान्त हम अफ़रोख़्त दर दुनिया ।
शुदम अन्दोहगीं ज़ीं ख़बरे वहशत असर ग़म परवर ॥
शुदम दर फ़िकरे तारीख़े वफ़ाते आं मुक़द्दस रा ।
चो पुरसीदम ज़ि हातफ़ सन्नें ईसा सम्वते विक्रम ॥
बसन्नें यक हज़ारो हश्त सद हश्तादो से गुफ़्ता ।
मगर अज़ सम्वते विक्रम दिगर तारीख़ हम फ़रमा ॥
बख़न्दा गुफ़त सन्नें ईसाअस्त अज़ ज़ाहिरश माहिर ।
ज़े पदा हरूफ़श सम्वते विक्रम शवद पैदा ॥
बिबीं सनअत कि अज़ यक माह दो तारीख़ हासिल शुद ।
बसिला अश चश्मे इन्साफ़स्त अज़ पहले हुनर मारा ॥

'अहमदी ग़ुर्क खंडन की' इतिश्री

सत्य प्रिय पाठक वृन्द ! मिरज़ा साहिब ने अपने इलहामी और कुरानी ख़ज़ाने से जितने निरर्थक और कपोल कल्पित आक्षेप किये थे, उनके युक्तियुक्त उत्तर पहिली अक्टूबर सन् १८८८ को एक बड़े समूह के सन्मुख आर्य्यसमाज गुरदासपुर में सुनाये थे, (कारण केवल यही था शायद पुस्तक देर से छपे) जहां पर निकट होते हुए विज्ञापन भेजने पर भी मिरज़ा साहिब शास्त्रार्थ के लिये न पधारे। दूसरी वार क़ादियां में जाकर, सब क़ादियां निवासियों को बुराहीन उल अहमदिया का उत्तर सुनाया गया। इस प्रकार कि प्रथम मिरज़ा साहिब की पुस्तक से आक्षेप, फिर अपनी पुस्तक के और ज़बानी उत्तर सुनाये गये, जिस कारण से उस पास पड़ोस का बच्चा २ उसके छल कपट से सावधान होगया। क़ादियां जाने के निम्न लिखित कारण हैं।

(१) मिरज़ा साहिब ने विज्ञापन दिया था कि जो आर्य्य हमारे पास आवे और एक वर्ष हमारे पास रहे, यदि इस समय के अन्दर दीन इसलाम को अस्वाभाविक घटनाओं, करामातों और सचाई को न मान लेवे तो हम उसको दो सौ रुपया मासिक के हिसाब से हर्जाना या जुर्माना देंगे।

(२) वहां समाज भी नहीं था। इसकी स्थापना भी वहां होनी आवश्यक जानी गई। मिरज़ा साहिब ने युक्त उत्तर देने से इन्कार किया, अतः लेखक दूर यात्रा का कष्ट उठा कर कादियां में गया और पूरे दो मास वहां रहा। उन्हीं दिनों में परमात्मा को कृपा से समाज भी स्थापित होगया। नित्य प्रति वेदोपदेश होता रहा। मिरज़ा साहिब को किसी नियम पर टिकाने के लिये तीन बार इलहामी कोठे (मिरज़ा साहिब के बाला खाने) पर भी गया, पर मिरज़ा साहिब किसी नियम पर न ठैहरे। एक दिन से लेकर दो वर्ष तक रहने की शर्त को भी स्वीकार किया, पर मिरज़ा साहिब किसी वचन पर न अड़े। यदि करामात का नाम निशान भी होता, तो ठैहरते, पर वहां तो आसमानी निशान का नामो निशान तक नहीं है। हां, ईश्वर कृपा से इतना अवश्य हुआ कि उनके पेटपूजा के अनुचित साधन बन्द होगये। यक्कों में बैठ कर दूर २ नगरों से यात्रियों का पीर साहिब के दर्शन को आना और भेंट चढ़ाना सर्वथा रुक गया। अन्त को यहां तक हुआ कि सारी जोड़ी हुई पूंजो को खा चुके और ऋण लेकर अम्बाले की ओर प्रस्थान कर गये

न हां ज़बां से निकाली बुते कुरानी ने।
न चों ज़बों से उतारी सितम के बानी ने॥
हज़ारों चोंचले करता रहा कसम के साथ।
न इक भी पूरा किया मुनकिरे ज़मानी ने॥
दिखाके नाज़ करश्मा जहां को फुसलाया।
बहुत सा लूटा है लोगों को कादियानी ने॥
सभी को देता था बेटे पर उसकी बदकिसमत।
न छोड़ा उसको सहीद हमल की गिरानी से॥
नजूमी लोगों को बतलाता था फ़लक के हाल।
बला में डाला उसे कैहरे आसमानी ने॥
बड़ा जो बोल है हर एक को गिराता है।
रुलाया मिरज़ा को भी उसकी लनतरानी ने।

शोक! इतनी प्रतिज्ञाओं के होते हुये मिरज़ा साहिब ने किसी को भी सच्चा न कर दिखाया और सदा पूछने पर धोखा तथा मकर बनाया। कादियां के लोग बाल से वृद्ध तक उनकी टाल मटोलों और लोमड़ी को सी चालों को जान कर मेरे इस लेख के साक्षी हैं। आक्षेपक ने जितने आक्षेप वैदिक धर्म पर किये थे, उनके युक्ति युक्त उत्तर वेद तथा कुरान के प्रमाणों सहित लिख दिये। आर्य धर्म के प्रचार और दूर २ यात्रा के कारण पुस्तकों को साथ रखना कठिन

है, इस कारण से भी देर हुई अन्यथा कब की छप चुकती, तदपि " सहज पके सो मीठा होय " के अनुसार पूरे प्रमाण लिखे गये। बहुत से मुसलमान भाइयों को भी इसके पाठ से लाभ पहुंचा और हस्त लिखित पुस्तक की प्रतिलिपी भी दूर २ चली गई है। यह तकज़ीब बुराहीन उल अहमदिया के चारों भागों के उत्तर में प्रथम भाग है जो सर्व प्रकार से युक्ति तथा प्रमाण से पूरित हैं। यदि मिरज़ा साहिब कुछ और बोलेंगे तो हम कुरान का रहा सहा पोल खोलेंगे, अन्यथा सच्चों के लिये पर्याप्ति वर्णन है, एवं एक प्रकार का दर्पण है। प्रत्येकमुहम्मदी भाई सेप्रार्थना है कि पाठ से पूर्व सीने के कोष से ईर्षा और द्वेष को निकालदें और सत्य-ग्रहण के लिये ईश्वर से याचना करें। तब पूर्ण विश्वास है कि मनोवाञ्छित फल प्राप्त करेंगे।

गर नियायद ब गोशे रग़बते कस ।
बर रसूलां बलाग़ बाशदो बस ॥
(कोई माने न माने अपना काम कह देना है)

अन्तिम निवेदन

ऐ मुहम्मदी भाइयो और हमारे बिछुड़े हुए मित्रो! आर्य सन्तान के अङ्गो और भारत के जिगर के टुकड़ो! भारत वर्ष के प्यारो! परमात्मा ने आपको और हमको एक ही प्रकार के पञ्च तत्व से उत्पन्न किया, एक ही अन्न-जल हमारे पालनार्थ दिया, एकही वायु पर हमारा गुज़रान है, एक ही पृथ्वी हमारा निवास स्थान है, पर फिर भी हम क्यों एक दूसरे के रक्त के प्यासे हैं। भाइयों को कसाइयों से अधिक विरोधी जानते हैं। स्वाभाविक सम्बन्धों के होने पर भी हम पूर्व, पश्चिम की न्याईं दूर पड़े हैं इससे जो मेरा अभिप्राय है, उसे। ध्यान पूर्वक पढ़ो, श्रवण करो, मनन करो, निदिध्यासन करो उसके पश्चात् जो चाहो सो कहो। अनुमान सात सौ वर्ष बीते कि हम दोनो जातियां एक ही थीं, हमारा धर्म्म एक ही था, हमारे पिता पिता मह। एक ही कुल में से थे, हमारा आहार तथा व्यवहार भी एक ही था, हमारे रुधिर एक ही थे और हमारी गति भी एक हीथी। उस समय आप जानतेहैं कि हम में और आप में कोई भेद न था और न कोई जातीय द्वेष था। जब पश्चिम की ओर से तलवार का तूफ़ान आया और बलात् व क्रूरता से तलवार चलाने तथा अन्याय व अत्याचार कमाने लगे, ऐसे समय में विजयी व पराजित को जो अवस्था होती है, वह किसी न्यायप्रिय इतिहास वेत्ता से छिपी हुई नहीं है। अतः उन स्वेच्छाचारी राजाओं के समय में, जब "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की जारी थी और प्रत्येक को जान तथा माल की रक्षा की चिंता हो रही थी, पिता पुत्र के और

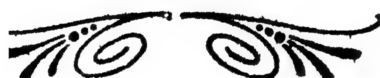
भाई—भाई के सुध लेवा एवं शुभचिंतक न रहे; महमूद ग़ज़नवी के अत्याचार और बलात्, औरङ्गजेब की हत्या और रक्तपात, मुहम्मद शाह तथा नादिरशाह के समय की सर्व बध और मार काट, अहमदशाह अब्दाली और तिमूर आदि के रक्तपात, जिनके हाथों से इतिहास रक्त के अश्रु पात कर रहा है, वही समय थे, जिनसे आपके और हमारे वियोग की अशुभ नींव रखी गई। वही समय थे, जब इस फूट हत्यारी का बीज बोया गया। वही समय थे, जब कि फूट के पौदे बोये जाने का आरम्भ हुआ। उत्साहहीन भीरू सन्तान, जिन्होंने प्राणप्रिय रखे अथवा पाशविक प्रलोभना के पच पेच में व मदमत्त यौवन के कारण हिम्मत हारी, वही लोग वलात् अथवा अनुचित रीति से मुसलमान होने पर बाधित हुये। आर्य जाति भूषण हकीकत राय की कथा जितनी शोक जनक तथा दुःख भरी है, उससे कोई मुसलमान भाई भी इन्कार नहीं कर सकता। जिस कदर अन्याय से इस रुस्तम से दिल वाले बालक की जान ली गई, कोमल हृदय तथा न्यायशील मनुष्यों के मन उसके लिये अब तक आंसू बहाते हैं। सार यह कि इस प्रकार के बलात्, अन्याय अत्याचार तथा दबाओं से आपके पूर्वजों को दीन इसलाम स्वीकार कराया गया। हज़ारों, लाखों वृद्ध उस मृदुल बालक की तरह उनके हाथों एवम् तलवारों से मारे गये, पर कुछ काल पीछे वह ईश्वरीय कोप जोश में आया और राज्य ने पलटा खाया। बुद्धिमानों ने सच कहा है।

जो कि ज़ालिम है वो हरगिज़ फूलता फलता नहीं।
सब्ज़ होते खेत देखा है कभी शमशीर का॥

परमेश्वर ने उनके राज्यकोप से बचाने के लिये, कम्पनी को भारत के व्यापार के लिये उद्यत कराया, जिसने उन अत्याचारियों के पञ्जों से विद्यातथा नीति; बुद्धि एवं तलवार के द्वारा हिन्दुस्तान के बन्दियों को छुड़ाया। लोग शांति तथा आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे और अशांत मनों ने शांति को पाया। तत्पश्चात् जब कम्पनी के ठेके का समय बीत गया तो श्रीमती महारानी विक्टोरिया ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेकर विद्या एवं शिक्षा का फैलाना आरम्भ किया। जिसके प्रताप से चहुंओर अमन और शांति होकर चोरों के अत्याचार तथा उचक्कों के वलात् का नाश हुआ। लुटेरों से देशवासियों ने छुटकारा पाया और सभी अपनी अवस्थाओं को संभालने लगे। जब विद्या ने आंखें खोलीं और अत्याचार की तलवार टुकड़े २ होगई, तब अनेक बुद्धिमानों और वृद्धोंके रुधिर पर बलिदान होने वालों ने प्रायश्चित का विचार किया, पर हमारे ब्राह्मण भाई पूर्व काल के भय एवं रोब के कारण वापिस करने पर सहमत न हुए। अतः वो उस समय भूल व विशेष नीति से शुद्ध न किये गये। प्रसिद्ध है कि सौ वर्ष पीछे ईश्वर कूड़ी की भी सुनता है, भारत की दुर्गति ने पलटा खाया और सत्य तथा धर्म्म रूपी सूर्य्य उदय हुआ अर्थात् जब अवनति तथा दुःख के दिन हो चुके, तो श्रीमान् परम सुजान स्वामी दयानन्द जी विराजमान हुए। जो अन्य मनुष्यों से प्रलोभन तथा तलवार से न होसका वो

युक्ति तथा प्रमाण और उपदेश एवं ज्ञान से कर दिखाया। इस समय तक अनुमान डेढ़ हज़ार की संख्या में मुसलमान और ईसाई हुए हिन्दु भाई प्रायश्चित्त और सत्योपदेश से आर्य्य धर्म्म में वापिस किये गये हैं। श्रद्धा पूर्वक वो अज्ञान से निकल कर वेद भगवान् की शरण में आये और अत्यन्त प्रेम से हमारे ब्राह्मण भाइयों ने भी उन्हें भाई समझ बिरादरी में मिलाया। पहिले पापों को क्षमा किया, कारण कि वो भूल और अन्याय के कारण थे। आर्य्यावर्त के सारे विद्वान् पंडित उस महात्मा के कृतज्ञ होकर धन्यवाद देरहे हैं। काशी, जम्मूं, अमृतसर, लाहौर के महात्मा पंडितों ने इस शुभ कार्य में व्यवस्था देदी। समुदाय के समुदाय शुद्ध हो रहे हैं और अरबी का यह वाक्य, पूरा होता है; "और देखे तुलोगोंको दाखिल होते हैं, परमात्मा के सच्चे धर्म्म में समुदाय के समुदाय" अर्थात् सच्चा धर्म बहुतायत से फैल रहा है और भूले हुए लोग प्रायश्चित कर रहे हैं। आप में यदि पुर्वजों के रक्त का थोड़ा भी अंश शेष है, यदि उन पुरुषोंकी जातिसेवा का कुछ प्रभाव है, यदि देश और जाति के हित का भी रचक मात्र भाव है, यदि जीवन की सचाई का कुछ लेश रखते हो, यदि परमात्मा से प्रेम की सच्ची अभिलाषा है यदि विद्या सरबन्ध कोषों से लाभ पाना चाहते हो, यदि उस पवित्र भाषा के गुप्त गुणों की चमक से मन एवं बुद्धि को प्रकाशित करना चाहते हो, यदि अन्याय और अत्याचार सहन करने का स्वभाव नहीं होगया, यदि इतिहास से कुछ भी शिक्षा ली है, यदि सद्व्यवहार और प्रेम का मस्तिष्क पर कोई संस्कार रखते हो, तो ऐ प्यारो ! अज़ीज़ो ! भाइयो ! आओ। मिलो। प्रेम से सोचो, विचारो। जिस को असत्य समझो छोड़ दो। यथार्थ उत्साह से छोड़ दो, सच्चे जीवन के लिये छोड़ दो, दिली ईमान के लिये छोड़ दो, ईश्वर के लिये छोड़ दो, पाप को मन में मत रखो, हठ धर्म्मी को मत छिपाओ, द्वेष और पक्षपात् के निकट मत जाओ, किसने ढूंडा जिसे न मिला और किस ने चाहा जिसे न दिखाई दिया। सत्य भावना और प्रेम से इसका पाठ करो, जिस से द्वेष भाव दूर होकर, हम और आप भाई बनें। ईश्वर आपको शक्ति देवे। हे परमात्मन् ! हमारी प्रार्थना, हमारे मुहम्मदी भाइयों के मनों में साधारणतया तथा मिरज़ा साहिब के मन में विशेषतया स्थापित कर, जिस से कि मत भेद का सत्यानाश हो और धर्म का प्रकाश।

निवेदकः—देश और जाति का शुभचिंतक लेखराम।



Ludwig had given to the Gravenitz,[1] and in Stuttgart in the palace once occupied by various favourites from the Gravenitz's brother to Montmartin, and which the Duke now transformed into 'a *bonbonnière* decorated with incredible art and lavishness'.[2] In 1775 Francisca, by the grace of the Emperor and in consideration of a payment of 7,000 florins, became Countess of Hohenheim, the name of a property near Stuttgart which the Duke had presented to her in the previous year.

Mme d'Oberkirch, always indulgent when it came to members of the Württemberg family who admitted her into their circle, depicts in the most flattering terms 'the beautiful Francisca', the epitome of 'all the talents and of all the graces . . . of extraordinary intelligence and charming wit, an exquisite and noble simplicity, a good woman with no vestige of hypocrisy'.

In actual fact, the girl—she was twenty at the time—was exceedingly plain. Her moral character can be clearly seen when one turns over the pages of the diary which she kept in minute detail. She shows herself to be lacking in education, almost illiterate and to have possessed an abominable handwriting. She wrote as she spoke—and she spoke badly, in a German that was almost a dialect. She never managed to learn French although, unknown to the Duke, she received lessons from a French teacher. Her qualities were those of a good, sincere middle-class woman, an excellent housewife entirely absorbed by the small cares of her household. She was a good cook and could make her own dresses and hats. She was never more at ease than in the country playing at being a farmer's wife. One looks in vain in her diary for a single original idea, for some insight into questions of general policy or for a trace of ambition. The facts that she records are hardly worth reading; she had nothing to say and seems to have been a goose. Nevertheless, Karl-Eugen was captivated by the ingenuous charm of this gentle, modest, sentimental woman whose rather mystic piety did not prevent her from showing a gay face to the world. He was also very sensitive to certain qualities which he was surprised to find in his new mistress. To begin with, she had no desire to play a political role and would tolerate none of those in-

[1] Today it is No. 3 Markstrasse.

[2] Baroness d'Oberkirch, op. cit.

trigues which had so often caused an upheaval at the Court of Stuttgart. According to Spittler, she exercised her influence on the Duke discreetly and indirectly through her protégé Buhler, whom she appointed Privy Councillor in 1773 Moreover, Francisca was never once unfaithful to her lover during an affair that lasted twenty years She bore him a sincere love—which incidentally was returned—and, surprisingly, was completely lacking in self-interest Francisca in fact was the ideal woman for a man who, tired of the ravages caused by a disorderly life, had decided to pull himself together and put an end to his follies

From the moment that Francisca's influence was confirmed, the Duke, whose *amour-propre* was always susceptible to the least attack, became a debonair prince with no desire for luxury, he dressed simply, and from some strange affectation wore a three-cornered hat at least a quarter of a century old

'He embarked upon an economy campaign,' writes Risbeck, 'with the same ardour he had manifested in the olden days for dissipation and frivolous amusements In this country no more artificial lakes were built on the tops of mountains nor were the peasants forced to fill them with water merely to gratify his hunting whims No longer were immense forests illuminated and no more fauns and dryads were rounded up to tread nocturnal measures Gone were the costly gardens where European spring flowers blossomed in the winter Even the opera where Noverre had staged his triumphs when his reputation was at its height was left to fall into ruin '

According to Mme d'Oberkirch it was without doubt Francisca who persuaded the Duke 'to think only of the happiness of his people' and who several years later drew from him a public confession, proclaimed in all the parishes throughout the country, in which the Prince admitted his past failings.

'We are men,' one reads in this astonishing manifesto, 'and therefore very imperfect creatures But the honest man must recognise his faults I look upon this day on which I enter my fiftieth year as the beginning of the second period of my life. I can assure my beloved subjects that in the future, all the days

which it may please Providence to accord me will be devoted to working for their happiness. In future, the prosperity of Wurttemberg will be established on solid foundations: the love of the sovereign for his people and the confidence of the people in the affection of their sovereign.'

According to Justinus Kerner, the Duke admitted apologetically to his retinue: 'I was an unleashed demon. What is surprising in that? Everyone knelt before me.'

The era of economy had set in. The Estates of Wurttemberg, reconciled with their ruler, were given full powers—a prerogative so long and so bitterly contested—to fix the rate of taxes and to make the necessary reduction in the number of officials. The lottery introduced by the sinister Montmartin was retained merely because of the important revenue it brought in, but they dismissed half the troops leaving the Duke only 'a superb guard of handsome men in red uniforms'.

The French troupe of comedians, Vestris and Noverre, were dismissed and the *corps de ballet* reduced. Jomelli himself left Stuttgart, considering his collaboration in a declining opera pointless. The Duke now detested costly fetes and spoke of Paris as 'a place of follies'. He intended to devote himself to good works, science, the arts and philosophy. He founded hospitals, a Botanical Garden,[1] a Library and a Natural History Museum, both the latter in the castle itself. To Rome between 1775 and 1782 he sent emissaries such as the Abbés Milon and Jordan, charged with finding him a few good antiques to enrich the new Stuttgart Museum.

But the enterprise which seemed to please him most was the Karlsschule, a kind of university bearing his name and which he considered to be the outstanding idea of his reign. The Karlsschule, founded at Solitude in 1771, according to Burney, was housed in a building with a façade six to seven hundred feet long. It was demolished before the turn of the century. Its object was the free

[1] The Botanical Gardens occupied the ground situated between the castle, the Riding School and the Palace of the Crown Prince Eberhard's son. In 1810 it was transformed into a barracks and in 1867 became the Hotel zur Post.

education of three hundred children chosen from among the most talented sons of titled officers or bourgeois soldiers The pupils wore a pretty uniform, a pale blue coat with black trimmings, white trousers and a cocked hat They received from non-commissioned officers and academicians lessons in religion, medicine, living languages and gardening French was taught by professors such as Uriot[1] or by Germans who had spent a considerable time in France Karl-Eugen wished the new institution to include a selection from the best of his subjects, in whom he saw the future hope of Wurttemberg According to him the Karlsschule was to become a school of the fine arts, a nursery for architects and decorators designed to replace the artists summoned by him from abroad, as well as a conservatoire to produce the actors and poets he needed. 'Among the pupils', writes Nicolai, 'destined to become actors, musicians and dancers', a troupe was formed which played on a private stage before a peasant audience When Burney visited the school he recorded the presence of '18 castrati, the court having at its disposal two surgeons from Bologna, experts in this kind of royal manufacture'

The details of life in the Karlsschule are known from the accounts of pupils like Hoven, Petersen, Scharfenstein and above all Streicher We learn from their youthful tales that the nobility and the bourgeoisie were segregated. The nobility neither slept, ate, nor bathed with the bourgeoisie Only the nobles wore silver epaulettes and powdered wigs They alone had the right to kiss the Duke's hand; the commoners had to be content with kissing the hem of his coat [2] Discipline in the Karlsschule was severe and on military lines The pupils had uniform inspection, marched in ranks and were drilled like recruits. The whole day was ruled by a very strict ceremonial 'At the cry "Eat", everyone ate.'[3] In

[1] Joseph Uriot, 1713–88, originally a comedian at Bayreuth, became librarian and lecturer to Karl-Eugen and finally director of the theatre at Nancy, his native town

[2] Bernard d'Harcourt *Jeunesse de Schiller*

[3] Berdot *Voyage de Montbéliard à Berlin* (1775) In 1783, Carlotta von Lengfeld, the future Frau Schiller, had attended the pupils' mess and noted in her diary 'The whole appointment of the Academy is charming but the human heart with its innate instinct for liberty has a

this kind of convict settlement, punishments were the order of the day the bastinado, cells and long periods on bread and water 'Any misdemeanour earned an entry on a small sheet of paper the culprit had to wear in his buttonhole The Duke removed this slip and noted the nature of the crime '[1]

Throughout the whole school complete servility reigned From the pupils were demanded not only hypocritical genuflections but spying and informing No leave was given and the inmates were cut off from the outside world. Women were excluded from the institution or, according to Schiller, the only ones allowed were of no interest or had already ceased to be of interest [2]

His Serene Highness, as Karl-Eugen was called, delighted with his new creation, made an almost daily visit to his favourite enterprise He attended the few distractions which relieved the monotony of these recluses—balls, concerts, fencing or equestrian contests His tender solicitude for his precious 'brain child' made him attend the lectures, visit the tables at mealtimes, question the masters and distribute his rewards He presided at the monthly examination which took place with great pomp and ceremony in the presence of the Diplomatic Corps and all the local authorities In the course of his inspections he was often accompanied by Francisca, whose beneficent role consisted in mitigating the punishments and finding extenuating circumstances for small peccadilloes In the presence of his mistress, the Prince was sometimes almost jovial One day he reprimanded a young Count of Nassau for his bad marks 'If you were in my place,' he said to the boy, 'and I were in yours, what punishment would you inflict upon me?' 'Well,' said the young hothead, flinging his arms around Francisca's neck, 'I would embrace the charming Coun-

strange impression of uneasiness at the sight of these young men assembled for their meal Each of their movements follows a signal from the supervisor It is painful to see human creatures treated like puppets '

[1] B d'Harcourt Some of these notes have been preserved They are vaguely reminiscent of the barracks of our days '24th December 1773 Pupil Gross minor for prevailing upon the charwoman to make coffee in exchange for a shirt The pupils Schiller and Baz for having drunk coffee in the room of the said charwoman in company with the pupil Gross minor '

[2] Schiller, *Annonce de la Thalie Rhénane*, 1784

tess and say to her, "Leave the poor boy in peace"' This time the Duke was at a loss

Karl-Eugen put so much heart into this new and unfamiliar role of amateur pedagogue that he was sometimes subjected to irony. The poet Schubart, one of the aristocratic intellectuals of Wurttemberg, paid the price for not bowing like the others to the Duke and refusing to offer base adulation He had the audacity to call the Karlsschule 'a slave factory' and composed an epigram starting with the historical statement which was far too apposite 'When Denis ceased to be a tyrant he became a schoolmaster . .' The satirist soon found to his cost how popular this witticism had become. The despot, reappearing suddenly in the frock-coat of the schoolmaster, banished the reckless poet to the fortress of Hohenasperg where he was imprisoned for a whole year in a dark cell, forbidden to read or write, he was then sentenced to five more years' detention, during which he was allowed to receive his wife and a few friends such as Lavater, Nicolai, Goethe and Schiller[1] Karl-Eugen is supposed to have visited his prisoner in 1779 Schubart at last received permission to collaborate from his cell with a few newspapers and even to publish a volume of verse on condition that he ceded his rights of authorship to the Duke. On the insistence of Frederick II, Karl-Eugen liberated his prisoner after ten years and gave him a cordial welcome, a comfortable pension and appointed him Director of Music in Stuttgart. The moral authority of the Prince over the bourgeoisie at that period was so strong that Schubart felt no resentment towards him In 1787 he wrote 'I have had a long audience with the Duke I must admit that he was very affable and promised that, as from today, I shall lead a very pleasant life All my resentment against this ruler has vanished like clouds in the night'[2]

[1] Schiller who had come with the intention of showing Schubart the manuscript of his first play, *Die Rauber*, arrived under a false name so as to give the critic full liberty of appreciation. After an hour's reading the author, covered with praise, revealed his true identity to the prisoner and the two young men embraced warmly

[2] Christian Schubart, 1743–91, began his career at Ludwigsburg as organist in the Lutheran chapel Burney, who met him there, called him one of the greatest masters The conversation of these two artists was

Franciska for her part, in the same way as Karl-Eugen, was tempted to play the role of educationist on the pattern of Mme de Maintenon. In 1772 she founded an institution at Ludwigsburg for the daughters of officers and officials in straitened circumstances. Convinced that the House of St Cyr, at one time a dramatic centre with a European reputation, had been a kind of conservatoire to train actresses, singers and dancers, Franciska decreed that all her new pupils should adopt a stage career and replace on the Wurttemberg boards the foreigners to whom so far they had had recourse. Unlike St Cyr, since costume was prohibited in Franciska's school, here the actors from the Karlsschule occasionally had to lend their support to the dramatic performances given by the girls. On such occasions, to avoid a situation which might have become delicate, the girls, according to Nicolai, were forbidden 'to exchange a single word with the men in the wings'.[1]

In 1775 Karl-Eugen decided that Solitude was too restricted a setting for his Karlsschule. Possibly he also thought that his supervision would be more efficient if the school moved into the capital. Fischer was ordered to convert the large outbuildings belonging to the castle, so that they could at the same time house the Academies of Science, Arts and Medicine.[2]

not lacking in the picturesque. Since Burney knew no German and Schubart no English, they had to speak in Italian or Latin. Later Schubart became a man of letters and several of his poems were set to music by Burney. He finished his career as editor of an important newspaper, *Patriotisches Archiv*, which appeared at Augsburg and had numerous French subscribers.

[1] The Institution, retransferred later from Ludwigsburg to Solitude, was considered too costly by Karl-Eugen and was closed in 1784. The Prince persuaded his wife to devote her attention to running her orphanage at Schloss Hofen; this was later moved to the Altes Schloss in Stuttgart and finally to Ludwigsburg.

[2] In the wing nearest to the Residenz, a hall called 'The Little Temple' has preserved its decoration and period furniture intact. Karl-Eugen used to take his meals there when he spent a day visiting his school. A few other rooms of the Academy still possess their ceilings and stuccoes.

CHAPTER NINETEEN

Schiller and Karl-Eugen



The success of the Karlsschule was soon broadcast by the European press Foreign pupils flocked to it Among the young men who began their studies there, two were to achieve fame. Cuvier[1] from Montbéliard and, in particular, Schiller The conflict which ensued between the poet and the Duke was so involved that it seems necessary to give some details here

Schiller had come to Ludwigsburg with his father, a barber-surgeon in a hussar regiment, who had retired there in 1766 The boy, hardly seven at the time, had often met the potentate in all his majesty dressed 'in a narrow little gold-braided head-dress, his ringlets ending in a wig, a scarlet coat, a waistcoat with yellow brandenburgs, nankeens and high hessians . . riding in a coach with eight horses, preceded by eighteen mounted trumpeters' [2] The luxury and dissipation of Ludwigsburg, then at their height, offended Schiller's sensibilities, and far from arousing his admiration, merely shocked him. For the first time he was faced with these powerful ones, human idols whom later he would call 'the Gods of the earth' He discovered that a wide gulf lay between the life of the great and that of the people, of whom he was one. He looked at them with envy, and the tremor of revolt which was to run through all his works was born at Ludwigsburg.[3]

Schiller was taken by his father to the performances given by

[1] Cuvier was the son of a house steward of Prince Ludwig-Eugen at that time Governor of the County of Montbéliard, a fief of the House of Wurttemberg until October 1793.

[2] Justinus Kerner. *Bilder aus meiner Knabenzeit*

[3] Bernard d'Harcourt, op cit

the Prince of those vapid, mythological operas with Italian librettos which he did not understand, but which seemed to him to be fairyland He was bitten by a taste for the theatre At the age of thirteen he composed a Biblical drama *Absalom* and with his own hands made a puppet theatre which he operated in his room to an audience of empty chairs The boy went to school at Ludwigsburg and studied to be a pastor

His career was then subjected to a great change Karl-Eugen decreed that this pupil who figured in his school reports as 'an exceptional candidate' was to be sent to the Karlsschule 'Heart-broken' at the thought of abandoning his plans for the future, the boy entered the barracks on the 16th January 1776 It was for him the starting-point of a twenty-year ordeal Everything shocked him in the new life which opened before him. Like Rousseau he had a great passion for nature, and an instinctive horror of a world in which he would never succeed But it must be recognized that without the 'royal command' and the change forced upon Schiller, he would only have lived the monotonous life of a village pastor and the works that lay fallow in his imagination would never have been conceived Karl-Eugen by changing the young man's vocation provoked him to revolt, and unwittingly encouraged his genius to blossom

One can imagine the existence that the formidable Karlsschule held in store for this anaemic, melancholy adolescent in whom the signs of the disease which would eventually kill him were already apparent [1] Schiller, as the son of an officer, was admitted into the circle of the noblemen's sons, but this privilege gave him little protection from the ill-treatment meted out to the sons of commoners At the least insubordination he received the same vicious beatings with the cane or the flat of a sword He suffered more than most under this penitentiary régime and spoke with terror of the 'iron bars' and the insensate methods employed in his

[1] Scharfenstein, one of his schoolmates, who later became a general, has left us a portrait of Schiller 'He was very tall for his age and his thighs were the same thickness as his calves He had a very long neck and a pale face with red-rimmed eyes He was one of the dirtiest boys in the school How can one describe that ill-combed head covered with curl-papers, with an enormous pigtail which he loathed '

education: 'March!' he wrote 'That's all I ever hear I would rather be an ox or an ass' The boy rebelled at this brute violence, and yet he had to adopt an attitude of almost crawling humility, under pain of the direst punishment

His studies took a turn which displeased him. He now had to study medicine to become a major like his father—a profession which it was hoped would earn him a livelihood But he remained poor all his life, even after he had become the leading dramatist in Germany Schiller's happier moments at the Karlsschule were spent with his father, who retired to Solitude in 1770 with the title of Inspector of Gardens, or when he had a chance to display his histrionic talents in the small troupe recruited from his comrades It was at a theatrical fête given at the school on the 22nd December 1779 that he found himself for the first time in the presence of Goethe and Duke Karl-August of Weimar, with whom he soon formed a friendship that was to become famous But he was happiest alone in his room secretly reading the poets Klopstock, Goethe and Wieland, the philosophers, historians, dramatists, and above all, Shakespeare, for whom he conceived a veritable passion. He had already formed the habit, which lasted throughout his life, of turning night into day Stimulated by coffee and tobacco, he composed verses[1] and planned his plays. He had an innate taste for the theatre and already felt the urge to win renown as a playwright Without the knowledge of his supervisors, between 1777 and 1779 he worked out the plot of his first tragedy 'We shall write a play,' he decided, 'which will be burnt in the public square by the hangman' This declaration of war on the ruling classes was to become *Die Rauber*, a work which, indeed, was considered as incendiary and capable of endangering the balance of society.

In 1780, the final draft of his play being complete, Schiller had it printed at his own expense, borrowing the 150 florins demanded by the printer from his schoolmates In December of the same year, having reached the age of seventeen, he was considered fit to practise medicine, not in the city but only on his colleagues in

[1] From 1776 he published verses in a Stuttgart periodical *Die Suabische Werkstatt*

the regiment, for a monthly salary of 18 florins. He remained an ordinary soldier—having no title he would never be an officer and as such had to continue leading the distasteful barracks life, carrying out all the military duties and attending parades in full-dress uniform.[1]

Die Räuber caused a great stir on publication. The work, full of the ideas of emancipation which were already in the air, was set in the present and contained allusions to particularly hated contemporaries such as the Minister Montmartin, Suss Oppenheimer, etc. Schiller, immediately hailed as the German Shakespeare, learned that his play had been read by Dalberg, the director of the Mannheim theatre, and he slipped away to that town to discuss the possibilities of its being performed. But Karl-Eugen heard of his escapade. He summoned the author to the castle, confined him to barracks for fifteen days and forbade him to communicate with the outside world or to publish any more poetry or drama. On pain of severe punishment he was warned to confine his activities to his military duties. Schiller, determined to pay no attention to this reprimand, continued to put the finishing touches to his play. Dalberg considered that the original text would have to undergo drastic changes before it could be performed before the public. For fear of a scandal he insisted that the action should be changed from the eighteenth to the fifteenth century and that the characters should be toned down. As soon as the play was ready in its new form, Schiller asked permission to return to Mannheim to attend the first performance. On being refused, and

[1] Scharfenstein has drawn a picturesque portrait of Schiller at this period. 'How comical Schiller looked, rigged out in his uniform cut in the old Prussian manner, which was particularly stiff and hideous in the case of the army surgeons. On either side of his head instead of ringlets he wore three little stiff pomaded curls. His small, military cap was perched on the top of his head and barely covered the nape of his neck, to which was attached a very thick false pigtail. His long thin neck was strangled by a thin horsehair cravat. But the most curious part of his attire was undoubtedly the legs. Thanks to the felt and the stuffing with which he had padded his white gaiters, his calves looked like two cylinders, broader than his thin thighs encased in narrow trousers. In these gaiters, which were always stained with polish, he walked with the stiffness of a stork unable to bend its knees. This whole garb, so opposed to the idea we had of Schiller, often brought smiles to our little clique.'

profiting by the absence of the Duke, he got into the coach and left Stuttgart in civilian clothes, indifferent to the almost certain risk of losing his position

On the 23rd January 1782 the author, hidden in the back of a box, witnessed his triumph Dalberg had done things well the actors were good, the production artistic, the décor cost no less than 100 ducats (about £100 today), and a moon, cut from a piece of white metal, caused a sensation when it rose on the backcloth at the moment of Karl's famous monologue 'Hear me, moon and stars!' The aristocracy of the Palatinate, outraged by the young author's audacity, tried to raise a protest We find an echo of this in a letter addressed to Goethe by Prince Putavin the day after the first night. 'Had I been God,' wrote this indignant spectator, 'and on the point of creating the world, and had I foreseen that one day someone would write *Die Rauber*, I should not have created the world '[1] But the majority of the public enthusiastically acclaimed this uncompromising and thinly veiled satire on the excesses of power. We know from the account of a spectator the excitement which ran through the audience as the tragic story unfolded 'The theatre seemed like a madhouse among the audience one saw rolling eyes and clenched fists Raucous cries could be heard Strangers wept and embraced each other, and women as they left the theatre were on the point of fainting '[2]

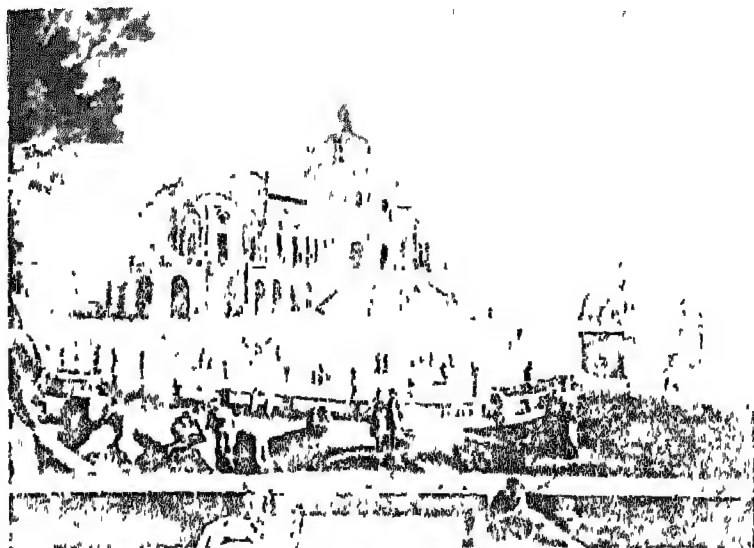
Schiller savoured his triumph when, in the midst of great applause, he was carried on to the stage

On his return to Stuttgart he was summoned to Hohenheim. The poet arrived suspecting nothing a horse had been put at his disposal for the journey. 'The Duke was walking in his garden Suddenly he sprang on his victim with the savagery of a wild beast which has watched its prey for a long time from an ambush '[3] He hurled at the unfortunate poet's head all the details of his

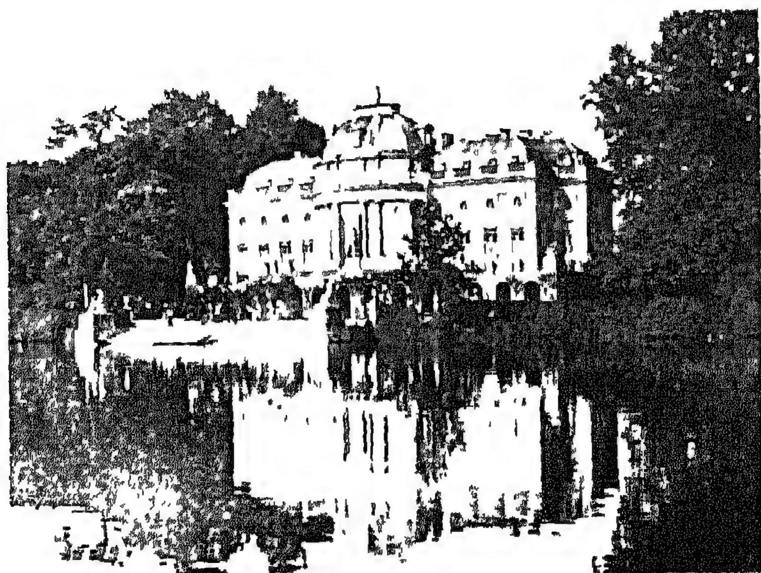
[1] Goethe *Conversations with Eckermann* (17th January 1827)

[2] The play, although considered subversive, was soon performed in numerous German theatres—Hamburg, Berlin and Leipzig But in the latter town the playbills were not allowed to remain for long on the hoardings It was not performed in Stuttgart until 1796, two years after the death of Karl-Eugen, and not until 1850 in Vienna

[3] Bernard d'Harcourt op cit



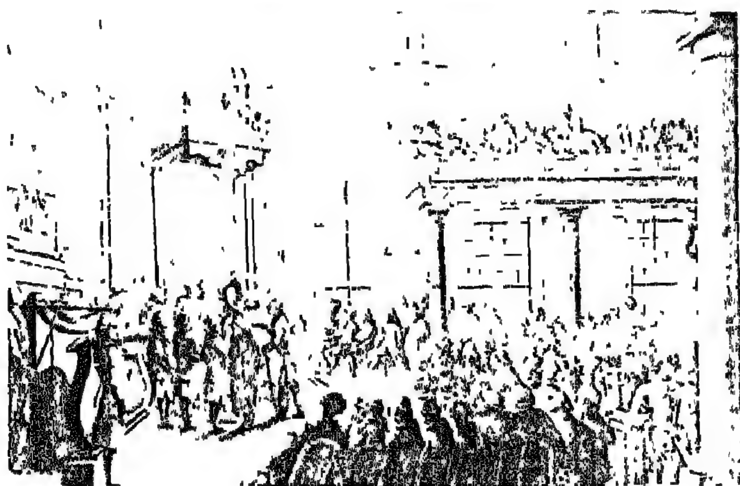
Solitude, about 1780, by V. Heideloff



Monrepos



Francisca von Hohenheim



Presentation of diplomas at the Karlsschule, 11th February 1782 (Karl-Eugen stands on the dais; Francisca is seated by the window) By V. Heidelhoff

flight, threatened to imprison his whole family and to put Schiller himself in a fortress for the rest of his days. The young man suddenly had a vision of Schubart's fate. But his courage was unshaken and he remained determined to pursue his literary career, which he felt quite unable to renounce.

One day Schiller decided that the situation had become too strained. His cup was full to overflowing, and his existence at Stuttgart was too full of danger. He determined to escape and confided his plan to his friend Streicher,[1] who for his own part wanted to flee to Hamburg to continue his musical studies. The propitious moment seemed to have arrived when, on the 22nd September 1782, attention was focused on the great night fete which Karl-Eugen was giving at Solitude in honour of the Comte du Nord, the future Tsar Paul I. Without even telling their families the two fugitives, travelling under assumed names, took a carriage at ten o'clock at night and crossed the half-deserted town; they managed to pass the gates, although the false passports they had procured were scrutinized. For their romantic adventure they took with them, apart from the 28 florins Schiller had in his pocket, two small trunks and two pistols, 'one of which', according to Streicher, 'had no pawl and the other no flint. ... Needless to add that as regards powder neither was loaded except with our wishes for success.' In this way they reached Mannheim. There the author of *Die Räuber* asked Dalberg for some royalties, without success, and learned that Karl-Eugen would pardon him provided he returned to Stuttgart immediately. But the poet did not fall into the trap by trusting to these dubious promises; in fact, he was posted as a deserter and dismissed from his post of army surgeon. In a fine spirit of revolt he accepted his disgrace. For fear of an extradition order he hid with friends in Darmstadt, then at Frankfort and finally went to ground in a wretched inn at Oggersheim, between Worms and Mannheim. Here he stayed for some time. He did not return to Mannheim until April 1784, to be present at the first night of his new play *Kabale und Liebe*. His characters were only too easily recognizable: the Duke, his sworn

[1] Andreas Streicher—Schiller's schoolmate who always remained a true friend—has written the story of their odyssey.

enemy whom he represented as 'an adept in debauch, an insatiable hyena, scourged by desire and constantly in search of new victims', the Minister Montmartin; Francisca, etc He pilloried the depraved morals of the Wurttemberg Court, lashed absolutism and postulated the new ideas which already had many partisans [1]

Schiller was not to see his native city again before 1793 By this time, Karl-Eugen, on the point of death, had lost his old resentment and told the poet that he could settle in Ludwigsburg, where he pretended to ignore his presence [2]

In 1780 the news spread of the death, at the age of forty-eight, of Frederica, Duchess of Wurttemberg, who for a quarter of a century had been little remembered by her former subjects All attempts made by the families in Bayreuth and Prussia to bring about even an apparent reconciliation between the couple had been in vain The Duke had transferred to his wife the Schloss Neustadt, promising to spend 50,000 florins in making it habitable, and 4,000 florins on its upkeep Unfortunately, according to his usual habit he neglected to keep his word and Frederica decided to go and live with her family

On the death of her mother (1758) she received as a present from her father the Margrave the charming little castle of Fantaisie, situated some miles from Bayreuth, and completely altered the interior and the gardens She lived a retired life entirely devoted to literature and the theatre 'Philosophising more from reason than by inclination, showing herself capable of rising above her misfortune by her feelings as she had risen above the malice

[1] For two years Schiller led a vagabond existence, always in need, always haunted by tuberculosis which gradually did its work and killed him In 1787 he settled down near Weimar

[2] Schiller, in his Ludwigsburg quarters, which can still be seen today, began to compose his *Wallenstein* trilogy during the winter of 1793/4 He wrote late into the night and in order to remain awake worked with his feet plunged in a bucket of cold water, which undoubtedly aggravated his tuberculosis Sometimes, however, overcome by sleep, he would doze off, and the sculptor Dannecker took advantage of these brief moments to model the features which would serve for the bust of his great friend

of courtiers by her behaviour.[1] Once at Frederick II's invitation and despite her husband's veto, she spent a winter in Berlin where she enjoyed the flattering homage paid to her by the intelligent men at her uncle's court. Occasionally she travelled and we find traces of her at Ferney with Voltaire to whom she said one day: 'I wish you would call me your daughter, for you are my true father.' She flung her arms round the neck of the old man when the latter, having accepted paternity, improvised the following quatrain:

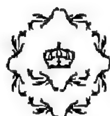
Oh! le beau titre que voilà!
Vous me donnez la première des places;
Quelle famille j'aurais là!
Je serais le père des Graces.

The ill health which saddened Frederica's last years aggravated the eccentricity of her character. On hearing of her death Mme d'Oberkirch said: 'She was not regretted; she was a strange person, who was able to make neither the Duke nor her own familiars happy.'

[1] Maubert, op. cit.

CHAPTER TWENTY

Schloss Hohenheim



Karl-Eugen, a widower at last, declared that a great weight had been lifted from his mind. A hope which he had nursed for a long time could at last be realized—to make the woman with whom he had lived for more than fifteen years his legitimate wife. He immediately opened his heart to Francisca, and to avoid any misunderstanding between them drew up a statement determining in writing the conditions of their future existence 'I hope,' he declared in this curious document, 'that you will always remain apart from everything, and that you will neither interfere in affairs of state nor in my affairs in general' A letter, dated 1780, also deals with the religious conflict which might arise between the Catholic Karl-Eugen and the Protestant Francisca. 'I do not wish to cause you any difficulties regarding your religion, but I ask one thing of you not to succumb to false piety and to follow my advice more closely than ever Believe me, my dear lady, I have already suffered deeply on account of you and because of this.'

Their matrimonial plans, however, ran up against obstacles Rome and the Catholic sovereigns in Germany objected to the Duke's marriage with a Lutheran At Stuttgart the marriage was received with mixed feelings The Wurttemberg family, deploring the mésalliance, was unanimous in insisting that any issue should be declared unfit to succeed to the Duchy Of Karl-Eugen's two brothers the younger, Friedrich-Eugen, showed appreciation and gratitude to the woman who had brought her lover back on to the right path, but the elder, Ludwig-Eugen, remained implacable The Estates of Wurttemberg, approving the marriage of their prince to a woman who had always shown herself to be good and

charitable, promised him a revenue of 50,000 florins if he married his mistress in preference to some princess of the blood whose influence was to be feared. A compromise was made: on the 7th July 1783 in the chapel of the castle was blessed a union which, 'for reasons of state', according to Mme d'Oberkirch, they were forced to keep secret until the following year, when the morganatic marriage was made public. An official ceremony at Stuttgart on the 2nd October 1784 sanctioned it amid general rejoicing.

The newly married couple left for Solitude, to spend a few weeks' honeymoon there.

One might be inclined to think that with his changed outlook Karl-Eugen would have been cured of his mania for building. But his ruling passion had only been dormant. Doubtless the Prince would no longer build vast town or country palaces, which had already brought him to the verge of bankruptcy, but his architects were not allowed to remain idle.[1] From 1779, with the help of Fischer, he finished rebuilding the burnt-out wing of the Stuttgart castle and ordered a theatre called *Das Kleine Theater* — 'very pretty' according to Nicolai, and designed to replace the Opera which had been burned down.[2]

Then for a moment he flirted with the idea of building a hermitage in the valley of Heigerloch, where he had found a delightful site. With regret he abandoned this plan. 'I should like to be poor,' he wrote to Francisca, 'and build a hut on this site.'[3] In

[1] We know Goethe's opinion of Karl-Eugen's architectural works in Stuttgart: 'As far as architecture is concerned, I thought with particular melancholy of everything that Duke Karl could have realized with his desire for grandeur had he been lucky enough to possess a true sense of art and to have found artists worthy of the name to carry out his plans. But one soon saw that here was only a kind of distinguished inclination for splendour without real taste, and in his heyday French architecture, from which he took his models, was itself already decadent.' (Letter to Schiller from Stuttgart, 31st April 1797.)

[2] A pediment supported by four columns adorned the very simple façade. The furniture came from Paris (Francisca's diary). Until 1793 operas, ballets and occasionally Shakespeare plays were performed, but above all at the instigation of the new Duchess and as a reaction against the invasion of foreign literature, the tragedies of Lessing and Goethe. *Das Kleine Theater* was destroyed by fire in 1802.

[3] C. J. Weber: *Deutschland*, 1834.

1781 he bought from his brother Friedrich-Eugen the hunting lodge of Hochberg, which he restored and redecorated The same year he built at Karlhof, near Hohenheim, a small castle where he and his wife liked to stay for the haymaking Three years later he repaired the old manor of Scharnhausen, leaving it to Francisca to decorate the interior.[1]

Karl-Eugen however devoted all his attention to the creation of Hohenheim, which was to become Francisca's favourite abode Here she gave free reign to her talents on the farm.[2] Until the Renaissance, a castle belonging to the family of the famous alchemist Theophrastus Paracelsus had existed at Hohenheim In 1768 the Duke bought the half-ruined manor, demolished the remains and caused a French park to be designed in the vicinity, called the Gartenhof In 1771 he gave this property to the singer Bonafini, the last but one of his mistresses, and in 1772 to Francisca, whom he considered as his wife from the day when the divorce had delivered the girl from her tiresome husband On a visit to London with his mistress (1775), the English gardens came as a revelation, to him and at Hohenheim, over a period of fifteen years, he accumulated about sixty of those 'fripperies'—pavilions, kiosks, and cottages—demanded by the tyrannical and dubious taste reigning at that time in Europe In an area of 23 acres there arose a woodcutter's hut built of coarsely assembled pine-logs and consisting of a small bedroom and a library which Francisca noted in her diary as being her favourite retreat, a *pavillon de Fantaisie*, a mill, including the miller's quarters and a large mahogany-panelled hall, a gaming-hall, a Swiss chalet; a hermitage with its Gothic church perched on a cliff above a water-

[1] Francisca's diary Scharnhausen, which Karl-Eugen called 'my retreat', occupied an agreeable site in the upper valley of the Lorch to the north-east of Stuttgart The castle, flanked by two pavilions, the work of Fischer, is vaguely reminiscent of a Palladian villa The exterior has been preserved intact No trace remains of the original decoration except in a dining-room in the right wing and a bathroom in the left wing, still used today as a potting-shed In the park one can still see on a small hillock a temple with twelve Doric columns, erected in 1788

[2] Hohenheim is six miles from Stuttgart in the Lorch Valley, near Plieningen with a view of the Swabian Alps

fall, a boudoir, hidden in a green island in the centre of a lake upon which swans glided, etc.

This was not all. Karl-Eugen discovered a taste for antiquities on a journey to Rome and Naples in 1774–5. He wished Hohenheim to evoke the memory of the monuments which he had found most striking. From now on, in the few square yards still available, appeared a Roman villa with its baths, Nero's villa, a prison with its dungeons and an inn over which hung a sign *Alla Città di Roma*, a Temple of the Sibyl with a very fastidious interior, a Temple of Vesta surrounded by a chaos of rocks, a Temple of Mercury, a few fragments of the wall of the Baths of Diocletian, the Pyramid of Cestius, three columns of the Temple of Jupiter Tonans, and near them, oddly enough, a small concert hall. One can imagine the nauseating effect produced by these miniature ruins, which the Chevalier de l'Isle called *des antiquités menteuses*,[1] transplanted into a Nordic setting and isolated from each other only by a few curtains of trees.

Nevertheless, the park of Hohenheim found grace in the eyes of many visitors who have left us most enthusiastic descriptions. The Prince de Ligne, the greatest aesthete of his time, declared that Karl-Eugen's creation 'was both magnificent and rare.'

'The garden,' he says, 'is in the best taste and the most marvellous one can imagine; it embraces more than sixty different ideas . . . the finest of the Italian monuments have been carried out in the proportion of 4 to 1. . . . The Duke, to give an original touch, has joined to each of these monuments a little dwelling which looks like a peasant's hut complete with tools, bunk and kitchen. And in the midst of all this, where it is least expected, there is a most luxurious salon, sometimes in the best taste . . . All the paths leading from one building to the other are edged with flower-beds containing the rarest flowers. Everywhere are charming places of refreshment, where big windows look out upon beautifully tended lawns. The concept and the detail contrived by the Duke are most ingenious. One would think that a colony, coming upon the ruins of some Roman

[1] *Lettres au prince de Ligne sur la cour de France.*

settlement in this region, has made use of the buildings to live in them.'[1]

Mme de Genlis, fleeing from Paris in 1789 with her niece, passed through Wurttemberg, and after visiting 'the magnificent and charming gardens of Oheim' [*sic*] was moved to philosophize: 'The general plan is as ingenious as it is picturesque, it is bound to impress in particular the French *émigrés*, for the diverse buildings represent the vicissitudes of fate and human life '

Many tourists of the period, however, seem to have been dismayed by this incredible jumble of ruins, temples and palaces, alternating with gloomy dungeons and rustic chalets They could not understand 'what fantasy would dare to unite in a single whole such disparate objects'. Goethe, who once said 'economy is the most necessary expression of order', was shocked by the waste of imagination and money in which Karl-Eugen had indulged He notes acrimoniously in his diary that he has just seen 'a series of monstrosities created by a disturbed and insignificant imagination At Stuttgart, Hohenheim and Ludwigsburg, far too much money has been lavished, and too little good taste.' He concludes 'So many little things, unfortunately, do not go to make a big one.'[2] Finally Nicolai is surprised at 'these dairies without milk, this hermitage without hermits ' True, having neglected to get permission to visit the park he was not allowed in and admits that he speaks of these curiosities from hearsay alone.

In 1782 Karl-Eugen became restless only a few rooms of the dairy farm had so far been in use and he felt the need for quarters worthier of him. Fischer therefore had to produce plans for a castle which, on his master's instructions, was to have nothing in common with Ludwigsburg or Solitude as regards sumptuousness but should be a big country villa worthy of a prince The first stone of the new building was laid only on the 24th June 1785 [3] To make up for the time lost the work, which the Duke inspected

[1] Prince de Ligne *Coup d'œil sur Belœil*, 1786

[2] Goethe's journal, September 1797

[3] According to Francisca's diary, the stone bore the architect's plans engraved on a silver plate with an inscription denoting the Duke's intention to preserve the rustic appearance of the castle

three times a week, was carried out at great speed. It was finished in 1787

Schloss Hohenheim, the greater part of which still stands today, is a huge building consisting of a ground floor and a first storey. We share the opinion of Goethe, who described it as being 'architecturally cold and characterless . . it is difficult to find anything really good about it. . . The castle is one of the most unedifying sights in the world One might say of the exterior that it was built without taste for it arouses no vestige of sympathy or antipathy.'

After crossing a courtyard, closed in the old days by a wrought-iron gate, and embellished with lawns, one reaches the main building A fine antechamber leads to a big central hall (originally decorated with marble, which displeased Goethe). From here one enters the former picture gallery which the Duke filled with a few good canvases borrowed from the Ludwigsburg collection (Goethe reports a Titian, a Rembrandt and a fine Holbein portrait), then the library, panelled with white-and-gold wood where Karl-Eugen placed some of Lejeune's finest works—the statue of Apollo[1] and two large bas-reliefs, 'Meditation' and 'Silence',[2] and four groups representing the Seasons by Dannecker The left wing of the castle continued through a very long orangery leading to a winter garden (these two rooms have been destroyed) and ending in the dairy farm, with a sloping roof Francisca occupied four rooms on the first floor [3] They were converted into a kitchen in the nineteenth century The entrance courtyard was flanked on one side by the stables and the riding school,[4] and on the other by a chapel dedicated to both the Catholic and Protestant faiths

The interior decoration of Hohenheim was entrusted to the

[1] Commissioned for Solitude—it was first placed by the Duke in the Hohenheim Palace at Stuttgart and later in the picture gallery of Ludwigsburg where it remains today

[2] Destined at first for Solitude, they went to the Hohenheim library and from there to the Conference Hall in the Stuttgart Castle

[3] The main room has preserved its stucco decoration with wreaths of roses and the repeated initials of Francisca von Hohenheim, another room still possesses its original plaster fireplace It was in one of these small attic rooms of the dairy farm that Karl-Eugen died in 1793

[4] Only the riding school remains, converted into a hay-barn.

stucco worker Isopi,[1] who, probably in great haste, carried it out in an icy classical style. One looks in vain for those 'charming ornamental motifs in such excellent taste' of which Schiller speaks.[2] The Duke insisted that Isopi should use some of the pupils from the Karlsschule. The result hardly does credit to the artistic teaching given at the school. Part of the furniture was borrowed from various ducal residences at that time abandoned but most of it was bought in Paris.[3] Schiller extolled 'its elegant magnificence, with excellent taste allied to prodigality'.

Francisca's diary depicts the rustic existence led by the couple at Hohenheim. Karl-Eugen was attended by only one chamberlain, a head groom and a chaplain. His wife had no ladies-in-waiting and there were very few servants. The Duke, who was in robust health, got up early, hastily gave a few necessary signatures and then embarked upon his favourite sport—horsemanship. He took a meal in some local farm and before midday returned to his study where, for two hours, he dealt with affairs of state, dictated, and read the newspapers. Francisca 'dressed in a quarter of an hour', and her peasant garb allowed her to perform small tasks in the garden, or to make plum jam, at which she excelled. Then she strolled in the park, followed by her favourite sheep on a leash of silver ribbon, and fed the swans. She administered her domain as a shrewd farmer's wife and never allowed anyone else to buy the cattle. Her happiness was complete when she could earn a few florins by selling the produce of her vegetable garden or the fish from the ponds. She liked to read and draw in the Roman Inn or to panel the walls of her apartment with materials from a factory of her foundation.

The couple, after inspecting the greenhouses (soon to be the most famous in Europe),[4] the hives, the sheepfolds, the sowing or the haymaking, stopped to lunch in the woodcutter's hut, the Swiss chalet or the mill. The afternoon was devoted to long rides

[1] Antonio Isopi, an Italian by origin, worked at Stuttgart until 1832.

[2] Letter of 30th August 1797. [3] Francisca's diary.

[4] They were copied from those of Potemkin in St Petersburg. Lang noticed a number of fig trees and flowers in bloom at all seasons. 'It is a fairyland,' he says, 'where magnificent trees grow in the open, shrubs on the walls, in all the colours of the rainbow. A real enchanted grotto.'

in a carriage or on horseback through the neighbouring woods. They would go as far as Busnau,[1] a royal farm surrounded by charming gardens which Karl-Eugen had given to Franziska in 1778, to the Fasanengarten[2] or to Einsiedel, a hunting lodge and stud farm. Immediately after supper, at which he ate well and drank little, the Duke retired to bed.

On certain anniversaries, small rustic fêtes were given and the clearing in front of the Roman Inn served as a setting for peasant dances, the distribution of provisions, and finally a modest firework display.

One evening Karl-Eugen, charmingly attentive towards his wife, wished to give her the surprise on waking of seeing the study next to her bedroom redecorated with a new wallpaper. He insisted that the workmen should wear slippers and use only screws instead of nails so that no noise should betray his plan.[3]

When he was forced to leave his wife for a few days, he wrote her tender billets-doux—he was then sixty—in which he called her 'little angel' and 'my sweet companion'. Sometimes to the note he attached a heart cut out of paper which he surrounded with the phrase: 'For thee alone.'[4]

The peaceful monotony of these idyllic pleasures was only disturbed by the occasional visits of royal guests. On these occasions the pride of Karl-Eugen came to the fore and his wild extravagance showed, as Burney so rightly says, that 'his vocation for economy was more apparent than real'. In 1777 the news spread that the Emperor Joseph II, travelling incognito under the name of Count Falkenstein, was to pass through Stuttgart. Great preparations were made to receive him. It was then learned that the noble visitor, refusing the Duke's hospitality, had ordered rooms in one

[1] Busnau, to the north east of Vaihingen, still exists today.

[2] Fasanengarten—the Pheasantry—a few miles from Hohenheim on the Echterdingen–Mohringen road, was built by Friedrich-Eugen, Karl-Eugen's brother, as a farm to raise gamebirds. A little Temple of Flora, rising in the middle of a lake, gave it its name of La Floride. Its owner called it Fasanenhof when, in 1790, he built a villa where he spent several weeks a year. The *Koenigliche Staatssammlung Vaterländischer Altertümer* of Stuttgart possesses a charming picture showing the house and the park.

[3] Risbeck, op. cit. [4] Franziska's journal.

of the city's inns. Karl-Eugen devised a stratagem to force the Emperor to lodge under his roof. He had the façade of the castle covered with a huge panel bearing the sign *Herberge Zum Roehmischen Reich* He disguised himself as the innkeeper and dressed his courtiers as valets. This courtesy, says Bachaumont, 'quite French in sentiment, did credit to the German prince and achieved its merited success'[1] Karl-Eugen took advantage of the opportunity to try and obtain the title of Princess of the Empire for his wife The Emperor turned a deaf ear, making as the excuse that he could not increase indefinitely the number of beneficiaries who already held this title

On another occasion, in September 1782, the court of Stuttgart was in a state of great excitement at the arrival of Grand Duke Paul of Russia, the future Tsar Paul I, only son of Catherine the Great, with his wife, the daughter of Prince Friedrich-Eugen, Karl-Eugen's younger brother No expense was spared to dazzle these illustrious visitors although they were travelling incognito as the Comte and Comtesse du Nord Karl-Eugen went to meet them at Montbéliard where Friedrich-Eugen was governor At Stuttgart a triumphal arch awaited the procession On a lawn, where among other visitors present were the Dukes of Zweibrucken and Hesse-Darmstadt, a performance was given of the opera *Les Fêtes Thessaliennes*, with a libretto by Uriot and music by the Italian Poli, followed by the ballet *Callirrhoé*. The following day was spent at Hohenheim The visitors inspected the site chosen for the building of the new castle, strolled through the park, stopping at the hermitage and the baths, and laying the first stone of a monument to commemorate their visit in front of the woodcutter's hut. Next day they were driven to Ludwigsburg where they visited the porcelain factory and attended a ball at the opera house

[1] *Mémoires Secrets*, 25th March 1777 When the Emperor left Stuttgart he made fun of the threadbare coat and dirty boots of the postillion who drove him. 'It is easy to see', he said, 'that this fellow is not a courtier' At the first relay he tried to recompense the valet but could not get him to accept the slightest reward The Emperor understood the motive for the refusal The coach, which had been put at his disposal, belonged to Prince X who, to pay homage to his illustrious guest, had himself acted as the postillion. (Biedermann *Die Mode*)

The programme of festivities included a series of entertainments at Solitude The guests drove along a brilliantly lit avenue to the castle which, according to Mme d'Oberkirch, the Comtesse du Nord's lady-in-waiting, seemed to be the 'Le Palais du Soleil'. The same writer is unsparing in her praise of the Italian opera given that evening and the great supper served 'in the "Laurel Gallery", where the statues, vases, well-laden tables and the profusion of lights were a magnificent sight' On this occasion the Duke had acquired from Paris a complete suite of furniture[1] and did the honours of his splendid domain to his illustrious niece, while excusing himself for past extravagance 'I repent, I repent, madame, but I was carried away by my youth I did not think enough of my people who need constant thought Today I build no more palaces, I build almshouses'[2] And the Comte du Nord replied, to allay his uncle's scruples 'Monsieur, it is not so foolish to build palaces as you maintain The grandeur of princes is that of their people also All the money you have spent here has given work and, in consequence, wealth to your subjects.'[3]

The following day's programme included hunting on the Barensee Stands had been erected round the lake so that the guests could see the arrival of four thousand stag and does, trotting in a herd It was an incredible sight. The hunters were enthusiastic but the spectators were moved by the unfortunate creatures, sacrificed in advance, and butchered in the most horrible manner. Wagons full of game were taken away and presented by the Duke to his guests[4] When the visitors took leave of their hosts on the 25th September 'everyone wept'[5]

Since Karl-Eugen had changed his way of life he had felt a renewed urge to travel In the old days he had considered it as mere excuse for pleasure but now it was an opportunity to educate himself We meet him wandering all over Europe He spent the

[1] Francisca's diary

[2] Mme d Oberkirch *Mémoires* Karl-Eugen admitted that a single one of these fetes given to the Comte du Nord cost him 330,000 florins

[3] *Idem* [4] *Idem* [5] Francisca's diary.

winter of 1774–5 in Italy with Francisca She wrote down her impressions of the journey in her diary and related some curious excursions such as the climbing of Vesuvius In 1781 the Duke decided to tour Germany incognito [1]

The couple passed through Karlsruhe and Bruchsal, the residence of the Bishop of Speyer, and Frankfort, they stopped at Cassel to visit the famous picture gallery and the no less famous baths, and at Hanover, where the library held their interest for several weeks At Schwerin a pleasant surprise was in store for Francisca She was invited to dinner by the Duchess of Mecklenburg, *née* Princess of Wurttemberg At Jena, Karl-Eugen met Karl-August of Weimar The latter gave an account of this meeting to Goethe 'The Duke of Wurttemberg,' he wrote, 'was here yesterday. You know that he explores all the universities and likes to see all the faculties parade, or rather, prostitute themselves before him But he offers them quite an amusing spectacle in return, an old hussar general with a big round Swabian head and a formidable moustache is ordered to follow the lectures assiduously and to take notes He swears and storms but he obeys '[2]

In 1782[3] Karl-Eugen and Francisca reached Ansbach, where they were well received, but avoided Bayreuth, which still held too many memories of an unhappy marriage They crossed Switzerland where they studied the manufacture of printed cloth with the intention of founding similar workshops in Wurttemberg At last they reached Vienna The Emperor refused to receive the morganatic wife and merely deigned to meet her 'by chance' at Laxenburg Francisca was not to be received at the Imperial Court until 1791, the year in which the Pope officially recognized her marriage

In 1789 Karl-Eugen was in Holland and Denmark, in whose

[1] On leaving Stuttgart he had intended to stop at Schloss Weillingen and visit his brother Ludwig The two brothers had been on bad terms since Karl-Eugen's marriage to Francisca He gave up his plan when he learned that Ludwig would be delighted to see him but without his wife

[2] *Correspondence of Goethe with Duke Karl-August of Weimar*, 2 vols, 1856

[3] From this year onwards the Prince kept a diary of his travels It has been published

capital he found little of interest. 'It is a town devoid of all luxury,' he wrote. He then travelled to England. Francisca, being a Protestant, was presented to the Royal Family. Her jewels, which were valued at a quarter of a million livres, caused a sensation at a dinner given by the Prince of Wales. The young woman conquered London society by her simplicity and the grace with which she wore her 'shepherdess's bonnet.' Karl-Eugen devoted his time to serious tasks, visiting the universities. He did not spare his criticisms.

'At Cambridge,' he notes, 'the students have far too much liberty and obtain permission too easily to stay out at night. This is very dangerous.'[1] His judgements on England show a certain perspicacity. 'Most of the English live in opulence. They do not realise that, beyond the sea, people think. The Englishman is dry and always phlegmatic. He easily forgets services rendered and too often neglects what he might have learned on his European travels. The masses have an easy life, luxury is very widespread, agriculture is in a good state, the Navy magnificent, the army weak and undisciplined.'[2]

The couple often made Paris the goal of their travels. On the first journey to the capital in 1776 Francisca was cold-shouldered by the Court at Versailles and Marie Antoinette wrote to her mother on June 27th: 'The Duke of Wurttemberg takes his mistress everywhere. She is rather a sickly looking Countess.' Such severity is surprising, for although the girl lacked beauty, she was undoubtedly well dressed. The Duke had her dressed by the Queen's dressmaker, Mlle Rose Bertin, who enjoyed a European reputation. The Opéra was severely criticized by the two tourists, who found the music 'too noisy and lacking in taste.'

The Duke's second journey to Paris in 1787 caused him to utter a few melancholy reflections. 'And thus ends our journey in one of the greatest cities in the world where religion, knowledge and respect seem forgotten but where dissipation and frivolity hold sway. All the enthusiasm and sentiments are superficial.'

In 1789, at the outbreak of the Revolution, the couple were once more in Paris visiting the theatre, even attending the per-

[1] Karl-Eugen's diary. [2] *Idem.*

formance of a topical play *La Prise de la Bastille* They were surprised to notice that the stalls once occupied by gentry had now been invaded by the rabble That such a radical change in the customs of a nation could have been brought about in the space of two years thoroughly bewildered Karl-Eugen In summing up his impressions, with a certain clairvoyance he diagnosed the extreme danger in which the monarchy stood 'France,' he wrote, 'is in her death throes. Every means, even the most energetic, seem powerless to revive her. A weakly king, a queen who indulges in all manner of eccentricities, justly detested by the people, ministers who are not capable of their tasks, these are the pillars on which this crumbling realm rests' According to him, from the moment the King agreed to take orders from those to whom he should have been giving them, catastrophe was imminent Out of prudence the Duke sported a tricolour on his hat But in spite of this precaution he was recognized on the Cours la Reine and jostled so violently by the *sans-culottes* that he had no wish to prolong his stay in a place where he could be subjected to such indignities In 1791, on their return from London, the couple passed through Paris for the last time while it was in full revolution Out of curiosity Karl-Eugen attended the sittings of the National Assembly, a step which earned him the reproach of having 'sold himself to the Jacobins' [1] This accusation was unfair for, if at the outset the Duke wished to be initiated into revolutionary theories, he was quick to manifest an implacable hostility towards them

With the object of sparing Wurttemberg the reprisals which France might have tried to take on a country so close to her frontiers, he received with distrust only a small number of French *émigrés*. He would only receive officially a member of the House of France, the Prince de Condé, their head In 1791 he allowed the prince to stay for several weeks with his family in an inn on the Stuttgart–Mannheim road.[2]

For several years now Karl-Eugen had suffered from violent attacks of gout and his health was on the decline It was said that his death was hastened by an incident during a *ridotto* given at

[1] D'Espinchal *Souvenirs*

[2] Augéard *Mémoires*.

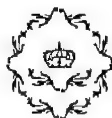
the Karlsschule, when predictions, written in the pure style of the Parisian Revolutionary Club, were distributed by three figures in fancy dress who slipped away before they could be apprehended. At the age of sixty-five, after a reign of nearly fifty years, Karl-Eugen died at Hohenheim on the 23rd October 1793 Francisca nursed him tenderly and did not leave his bedside for six nights [1] His subjects mourned him and remembered only his repentance. The poet J. Kerner gives a striking picture of 'the immense procession of horses galloping across the silent countryside by torch-light', on its way to Ludwigsburg where the Prince was laid to rest And when this nocturnal cavalcade had disappeared in the dusk and darkness, symbolical of the tumultuous existence of an unbalanced prince, the bewildered eyewitness wondered if he had not been the victim of one of those tragic and mysterious visions which so often haunted the German imagination

Francisca retired to Schloss Bachingen in Bavaria The Duke had given her this castle in 1790 as a refuge in case Wurttemberg should be invaded by the revolutionary armies In 1796 she had to flee before the French troops, and stayed for some time in Vienna As soon as the danger was over she settled permanently in Schloss Kircheim, a legacy, together with a pension of 20,000 florins, from her late husband In a portrait dating from the last few years of the century she appears, at the age of fifty, as an austere and respectable woman, tending to stoutness. Her nun's coif would make the stranger take her for some old, rather dreamy, sister She died in 1811

[1] Francisca's diary

CHAPTER TWENTY-ONE

Karl-Eugen's Successors



On Karl-Eugen's death the throne passed to his brother Ludwig-Eugen, at that time aged sixty-two As a young man he had served in the French Army, distinguishing himself during the Minorca campaign and particularly in the capture of Mahon (1756). The Prince was stationed in Paris and his correspondence shows that he wrote French correctly and with wit [1] He was a well known figure in the fashionable salons, of which his favourite was that of M de la Popelinière, the ostentatious Maecenas of the Château de Passy, at that time the rendezvous of the greatest artists and wits. He knew Buffon, La Tour, Rameau and J-J. Rousseau, with whom he corresponded in 1760 He was on very good terms with Voltaire 'I love you,' he wrote to him in 1755, 'from the bottom of my heart and with a tender friendship You say, monsieur, that I am an exile and you cannot see why I should serve France I think that I am in a better position here to render important services to my country than by remaining at home '

The Prince led a very dissipated life in Paris and according to the scandal sheets was constantly to be seen in the wings of the Parisian theatre, 'often laying down the helmet of Mars to break a lance in the lists of Venus' He was credited with numerous affairs, among others with Mlle Gaussin,[2] star of the Théâtre Français who created Voltaire's *Alzire* and *Zaire*, with Mlle Guéant of the Comédie-Française, Clairon's mistress, and with Mlle Coraline, for whose favours Casanova was his rival.

[1] He wrote verses and read them quite charmingly, according to Mme d'Oberkirch

[2] Mlle Gaussin when reproached for her facile morals replied, 'What would you? It gives them so much pleasure and it costs me so little '

During the Seven Years War he offered his services to Austria and fought in the ranks of Prussia's enemies.[1] The Prince de Ligne, who met him during the campaign, speaks of him as 'a most amiable man who composes and recites verses admirably'. One day he quarrelled with Marshal Daun (the general in command of Maria Theresa's army) as the result of an epigram, in which he occasionally indulged out of gaiety or impatience. The Duke in fact had a taste for the pun, 'the wit of people who have none', according to Voltaire.

Ludwig-Eugen at the age of thirty had an attack of conscience rather like that which had overcome his brother. He gave up his military career, turned his back on the gay life which Paris had made so attractive for him, and returned to his own country. He gave Voltaire the reasons for his sudden retirement: 'You tell me that life in Paris is more suited to myself than to you. The brilliant pleasures to be found there fail to tempt me. I wish for something more solid . . . The charming fetes in Paris seem to me insipid and gloomy. I find a terrible void unworthy of any thinking man.'

Ludwig-Eugen decided never to recognize Francisca as a sister-in-law and was forced to leave Stuttgart. At first he lived in Schloss Weitlingen near Hanau, and then in Switzerland, leaving his family in ignorance of his whereabouts (the Château de Renan in the Vaud). He intended to live there peacefully with a charming Saxon woman, Countess von Beichlingen, whom he had just married, and Voltaire, with whom he was on friendly terms.

> 'I have come to live in Switzerland so that I can wear my country clothes,' he wrote to the sage of Ferney. 'Moreover I am happy with my gentle wife who has won my heart . . . We are passionately devoted to each other. By day she is my friend, at night I am her lover, and we only remember that we are married because it sets a seal on our happiness, and makes

[1] Frederick II in 1755 got wind of Ludwig-Eugen's hostile intentions and confided to his sister in Bayreuth on the 25th June of the same year: 'I fear that he will commit a stupidity. I hear from Paris that he intends to enter the services of the Empress. He is irresponsible, I might say mad. I foresee nothing good for him.'

us cherish all the more the bonds which join us You see, monsieur, that in this respect it is easy for me to be a little philosophical. The glances from her black sparkling eyes would express far more vividly than my humble pen the gratitude she bears you for the interest you are kind enough to take in our well-being She hopes, when her health allows it, to come and see you at Ferney, to pay to you homage which I am sure you will not find displeasing . . I have just learned that I am in your debt for the excellent chocolate I have been drinking for some days It is the most suitable present for a married man; my wife, too, is most obliged to you.'[1]

No sooner had he taken possession of the Duchy of Wurttemberg than he instituted some reforms From his long stay in Paris he had retained a very active taste for French culture He spoke French more willingly than German and his manners bore the stamp of that urbanity and tone so characteristic of the Court of Versailles Thus in 1794 he closed the Karlsschule which he considered infected with the Prussian spirit, and far too costly into the bargain. He was the implacable enemy of the new ideas and at the outbreak of the Revolution this aversion changed into such a violent hatred that he wanted to join the coalition against France at the head of his troops

Ludwig-Eugen died in May 1795 from an attack of apoplexy whilst walking in the park at Ludwigsburg His reign, which is of little account, had lasted only two years The two daughters of his marriage to the Countess of Beichlingen were brought up in a Parisian convent [2]

The throne of Wurttemberg passed to Karl-Eugen's second brother Friedrich-Eugen, who at that time was sixty-three years

[1] Letter of 1st February and 20th March 1763 During his stay in Switzerland the Prince became the father of two girls On the birth of his first daughter he wrote to Voltaire (29th June 1763): 'Now new duties have been imposed upon me So far I have tried my best to be a tender husband, I shall now make every effort to fulfil my duties as a good father My happiness will endure because I have nothing to reproach myself with This happiness is not based on the misfortune of others and I feel that I enjoy the inner satisfaction which is the greatest of all joys '

[2] Mme d'Oberkirch *Mémoires*

old. This prince was originally destined to be a churchman but Frederick II had dissuaded him from this vocation and he had become a soldier Promoted to General in the Prussian Army, as husband of the Princess Sophia Dorothea of Brandenburg-Schwedt (a niece of Frederick II) in 1769 he was appointed governor of the County of Montbéliard, a possession of the House of Wurttemberg He held court in his small capital surrounded by a large family of eight sons and three daughters 'He joined the ranks of the great men who tried to become enlightened,' says Goethe, 'asking advice on the education of his children from the most famous pedagogues of the period He wrote one day to J.-J Rousseau whose famous reply began with these words "Were I unfortunate enough to have been born a Prince . . ."'[1]

Friedrich-Eugen had little time to enjoy his power. The French Army under Moreau invaded Wurttemberg in 1796 The Duke was forced to flee and take refuge in Ansbach He returned to Stuttgart only to die there on the 23rd December 1797

He was succeeded by his son Friedrich II, whose majority was declared in 1803 This prince, two years later, was to face the thunder of Napoleon The Emperor, during the campaign which was to terminate with the capitulation of Ulm, notified Friedrich that he would visit him at Ludwigsburg on the 3rd October 1805. Dazzled by his magnificent reception, Napoleon said to his host with a smile 'I am not sure whether I could ever entertain you so magnificently' He conquered the Duchess by a few graceful compliments, praised the Duke to the skies and admitted that he had not met such an enlightened prince in the whole of Germany. Such rare capacities, he declared, were out of proportion to a country which held such a small place in the European concert He promised that he would change the title of Duke of Wurttemberg to that of King The charm worked and Friedrich, filled with gratitude, proclaimed his host to be 'charming and the equal of Frederick the Great' The ground having thus been prepared, the Emperor began to discuss the matter which had brought him to Ludwigsburg After meeting with strong resistance he persuaded the Duke to declare war on Austria and to co-operate in the cam-

[1] For Rousseau's letter, cf page 266

paign by furnishing 8,000 Wurttemberg troops. The reward was not long delayed In the following year, 1806, Friedrich-Eugen was given the title of Friedrich II with the pretentious Gothic addition of Emperor of Swabia and King of Wurttemberg, in other words of the smallest kingdom in Europe [1]

Friedrich II, proud of his new title, seemed anxious to emulate the youthful follies of his uncle, Karl-Eugen, whose unbounded vanity and lust for pleasure he had inherited The petty despot exercised his authority down to the smallest details, to the point of forbidding his subjects to smoke in the street. An enormous eater, he soon became so disgustingly fat that a piece had to be cut out of the table so that he could sit down [2] Napoleon said that he always arrived in Paris *ventre à terre*

He wished to leave traces everywhere of his artistic taste—in Stuttgart, in Ludwigsburg, La Favorite and Monrepos With the disastrous encouragement of his favourite architect Thouret, the the interiors of these palaces were deprived of most of their pretty eighteenth-century decorations The Empire style triumphed The gardens succumbed to the rigours of the prevailing fashion and were transformed into English parks.

After Friedrich II's death in 1816 Ludwigsburg remained uninhabited for many years Fortunately time in its work of destruction forgot it, and the castle, thanks to skilful restoration undertaken at the end of the nineteenth century, has to a great extent preserved its original aspect

Hohenheim suffered the gravest vicissitudes Ludwig-Eugen, who made it his favourite residence, had preserved it intact. But in 1797 Friedrich-Eugen dispossessed it of all its art treasures in favour of Ludwigsburg and Monrepos; then for reasons of economy he demolished several of the main buildings and most of the fripperies that adorned the park.[3] The devastation was completed at

[1] In 1807 his daughter Catherine married Jérôme Bonaparte, who that year became King of Westphalia

[2] At Solitude one can still see Friedrich II's desk, hollowed out in a semicircle to fit his stomach

[3] All that remains of these buildings are the Roman inn, the gaming house, and the cells of the Roman prison One column survives of the Temple of Vesta, the Swiss chalet, the mill, the woodcutter's hut and the dairy farm have disappeared

the end of the same year when the Revolutionary armies turned it into a barracks and a military hospital. Today, Hohenheim is an agricultural college. Its gardens exist but bear no resemblance to the original.

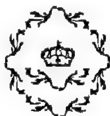
As for Solitude, already 'very neglected and ruined', according to Nicolai who visited it in 1781, it suffered but little from Thouret's reconstruction and the interior still remains almost as Karl-Eugen conceived it. Solitude remains one of those places which most vividly evoke the figure of a small German despot of the eighteenth century.

PART III

The County of Montbéliard

CHAPTER TWENTY-TWO

The County of Montbéliard



It is important to cast a glance at the County of Montbéliard unless one wishes to overlook a chapter in the history of Wurttemberg which provides a few highly amusing characters.

For a long time the province of Montbéliard was a kind of small sovereign state Originally the apanage of the Montfaucon family, descendants of the old Count of Alsace, a branch of Habsburg Lorraine, it passed to Wurttemberg on the marriage of Eberhard IV (1394) to the last heiress of the Montfaucons. Nevertheless, it continued to be ruled according to its own laws At the end of the seventeenth century Prince Friedrich of Wurttemberg found himself head of the reigning branch of Montbéliard

Montbéliard, in German Mompelgard, a mountainous region bordering on Switzerland, forms an enclave in French territory From the ethnological and political point of view it was a compromise between France and Germany Although French blood flowed in the veins of its inhabitants, German infiltration had conquered the region, favoured by the Protestant religion generally practised there, and, above all, encouraged by the German princes who governed it Customs were entirely German, the men wore long beards and old-fashioned surtouts. Civilization had stood still The terms of an Imperial decree laying down a code of behaviour for 'cadets and young officers of Alsace and Montbéliard when invited by a prince' seem to be addressed to young brutes, ignorant of the most elementary rules of *savoir-vivre* [1]

[1] This decree, dated 1624 and preserved in the National Archives, shows the apprehension felt as regards the behaviour of these young men

(1) Respects must be paid to His Highness in correct attire (coat and boots) and young officers are not to arrive half-drunk

At the beginning of the eighteenth century the capital of the County possessed a main square, into which several streets converged, and suburbs of ill repute where it was dangerous to wander at night It was an agglomeration of one- or two-storeyed houses with huge roofs pierced with mullioned windows such as can still be seen in Alsace The interiors were very simple, with wooden cottage furniture In the main room, which also served as a kitchen, the people lived a sober existence, their staple diet being onion soup and flour pancakes.

Until 1699 the ruler of Montbéliard was Duke Georg, the husband of Anne de Coligny, the great-granddaughter of the famous victim of St Bartholomew's Night One of Louis XIV's journeys led him through this small country Mlle de Montpensier, who was in the party, describes in her memoirs the impression produced upon the royal suite by the appearance of the ruler who had ridden out to pay homage to the royal traveller.

> 'When we left for Sainte-Marie-aux-Mines,' she writes, 'a petty sovereign came to greet the King. It was the Prince of Montbéliard-Wurttemberg I found him hideous He was dressed like a village schoolmaster, without a sword, and his lumbering carriage was painted black because he was in mourning for the Empress The horses had black cloths reaching to the ground, the pages and lackeys were dressed in yellow with trappings of red ribbon. I remember that his whole court was in the same carriage and that ten or a dozen people emerged from it to pay their respects.'

Duke Georg lived up to his appearance and was in fact, if not

(ii) At table, they must not lean back in their chairs or stretch their legs out to full length

(iii) They must not drink after each mouthful because they would get drunk too quickly After each dish, half-empty the tankard and before drinking carefully wipe the moustaches and the lips

(iv) They must not stick their fingers in the dish or throw the bones over their shoulders or under the table

(v) They must not lick their fingers, spit in the plate or wipe their noses on the napkin

(vi) They must not drink like brutes until they fall under the table or cannot walk upright, etc (Montbeliard Archives K 1755)

actually mad, 'a great eccentric' Steeped in a nebulous mysticism, he had composed a hermetic bible for the use of his heir, based on the strangest educational principles But that was not all For some reason, according to Mme d'Oberkirch, he made his son learn Arabic instead of French and German, and entirely warped his judgement, particularly on marriage, by giving him the Koran instead of a breviary 'In this false book the boy found justification and an excuse for his debauches and his perpetual change of women and mistresses, which offended respectable people, were the shame of his reign and his own undoing as we shall see '[1] In fact he profited so well from these paternal lessons that he became polygamous and encouraged incest in his own family

The education of Leopold-Eberhard, born in 1670, son of this Duke Georg, was therefore both Moslem and neglected At the age of twelve he was incapable of reading German In 1688 hostilities broke out between France and Austria (War of the Augsburg Coalition), the French armies entered Montbéliard, which for several years found itself incorporated into French territory Duke Georg was forced to leave with his son for Silesia He took refuge with his daughter, Eleonora Carlotta, the reigning Pricess of Oels, near Breslau [2]

At the age of twenty-three Leopold-Eberhard entered the service of Austria and was in command of Tokay when the Turks laid siege to that city Given the reputation of being a great soldier for having repelled the enemy, he acquired a taste for the military profession and took part in several of the campaigns in Hungary. He lived at Oels when his presence was not needed with the army There he met the daughter of a Lignitz baker, Anna Sabina Hedwiger, who was employed as a servant at the court This young woman, 'of great beauty and a character as noble as it was disinterested, inspired a great passion in Leopold-Eberhard She soon became his accredited mistress' (Mme d'Oberkirch) As soon as signs of pregnancy were visible her lover made her marry in all

[1] Mme d'Oberkirch *Mémoires* We shall have occasion to borrow largely from this author who, having lived at the Court of Montbeliard in the second part of the eighteenth century, was able to collect some very savoury details regarding the characters of this story

[2] This small principality was a dependency of the House of Brunswick

haste a Herr von Sedlitz (21st May 1695). On the arrival of a second child the unfortunate husband, aware that he had played as little part in this birth as he had played in the first, and rebelling against having to share his wife, requested and obtained an annulment of the marriage.

The husband having gracefully retired, the Duke decided to marry his mistress. The ceremony, celebrated secretly at Rejouitz in Poland on the 31st May 1696, was a mixture of tragedy and comedy. Since the affair had to be conducted in the utmost secrecy the bride appeared at the altar disguised as a man. In the marriage lines the couple were only mentioned by their initials and the priest, refusing to bless the union of two people whose identity he did not know, found himself forced to continue the service at the point of a pistol. The marriage was not made public until the 1st June 1697, it was then proclaimed with all appropriate solemnity. Nevertheless, Leopold-Eberhard's love-life was soon to become exceedingly complicated. We shall try our best to throw some light upon this family imbroglio and to show it in all its strange monstrosity.

A certain Curie, a Montbéliard tailor, had married the daughter of a butcher from the same town. By this woman he had a son and four daughters who were as 'beautiful as the day and as witty and able as they were beautiful' (Mme d'Oberkirch). One day this tailor abandoned his needle for the sword and attained the rank of captain in the Lorraine army, according to the prevailing custom he had taken as *nom de guerre* the name of L'Espérance. The hazard of the campaigns—or rather some astute *arrière pensée*—brought him to Posen in Silesia escorted by his daughters, whom he managed to introduce to Leopold-Eberhard. The arrival of the de l'Espérance girls was the beginning of poor Anna Sabina's troubles. The Duke, seduced by the wiles of these dangerous sirens, thought of nothing except how to keep them with him. 'It was not easy,' writes Mme d'Oberkirch, 'for their lowly birth excluded them from almost everything.' Leopold-Eberhard overcame these difficulties. He obtained from the Emperor Leopold I the title of Baron of the Empire for the father. This title embraced the whole family, which found itself raised above the rank of

commoner. 'This difficulty overcome,' goes on Mme d'Oberkirch, 'the Prince introduced the ladies to his wife, Anna Sabina Hedwiger At first they pleased her very much They were well brought up and talented, possessing grace, gentleness and charming characters, they showed her great respect and lavished attentions upon her.' Leopold-Eberhard, not content with his first success, soon suggested that the sisters should be admitted into the house as ladies-in-waiting The all-too-credulous Anna Sabina, 'still not suspecting the truth, in other words her husband's passion" asked for some days to think the matter over 'She soon had a presentiment and refused the offer The Prince insisted, she obeyed him with her usual docility, but with a certain repugnance which the future would justify only too soon' (Mme d'Oberkirch). In fact, the Prince became enamoured of Sebastienne, the eldest of the de l'Espérance girls, 'a tall, majestic blonde with soft and winning manners, and with a most alluring and languishing expression in her large blue eyes' He fell madly in love with her.

This idyll continued after the Peace of Ryswick (1697) had put an end to hostilities between France and Austria and, eventually, to the exile of the Princes of Montbéliard In 1698 Duke Georg returned to his estates and sent for his son

The future must have appeared unclouded to Leopold-Eberhard The amazement caused at Montbéliard by the triumphal entrance of the young couple, escorted by four Baronesses de l'Espérance, soon died down Anna Sabina, well received by her father-in-law, despite her plebeian origin, lived in the castle as hereditary princess (In her luggage she had, of course, brought a child who guaranteed the continuity of the family line) Moreover, Sebastienne de l'Espérance was content to exercise her power over her lover behind the scenes But Montbéliard was shortly to witness a scandalous romance which aroused protests from foreign courts and made the whole of Europe laugh

Anna Sabina was soon to see her suspicions of her husband's infidelity confirmed The latter, suddenly losing all restraint, openly showed his passion for Sebastienne de l'Espérance by presenting her with the castle of Séloncourt and naming her

'Maîtresse d'hôtel at the court, a post previously given only to ladies of the highest rank'.

At this point, on 21st May 1699, Duke Georg died and Leopold-Eberhard inherited Montbéliard together with considerable domains from his mother, Châtillon-Coligny. In order to give his outraged wife at least a sop to her self-esteem, he badgered the Emperor until he obtained for her the title of Countess of Sponeck, a title which devolved upon the children and her brothers who, of course, automatically became Counts [1]

The new Countess could not for long conceal the jealousy which her rivals inspired Moreover she was subjected to the greatest brutality by the Duke, who one day even beat her and left her for dead in her boudoir 'To remove the cause of his wife's jealousy, Leopold-Eberhard pretended to be interested in the sister Polyxène ' She was the youngest of the de l'Espérance daughters, 'one of Nature's masterpieces' The Duke, by playing this comedy, became so enamoured of the charming creature that he simultaneously deceived his wife and his mistress Polyxène, according to Mme d'Oberkirch, 'encouraged him to the greatest follies. But she soon died in the flower of her youth [1708']

Leopold-Eberhard behaved with these four women exactly as Louis XV was to behave with the de Nesles sisters In fact, at the same time that he was having an affair with the eldest and the youngest of the de l'Espérance girls, he publicized his passion for the second, Henrietta Edwiga, a 'passionate and fiery brunette, often gloomy and jealous to the point of uttering threats and all the more dangerous because, fundamentally, she was self-controlled, very aware of her own interests and very prompt to see where those interests lay' (Mme d'Oberkirch) The Duke's intrigue with the third of the sisters was already of ten years' standing It had started at Oels while the Montbéliard family was still in exile Leopold-Eberhard, after making Henrietta Edwiga twice a mother, had married her in February 1697 to a Silesian count,

[1] This Imperial accolade at the same time rewarded Georg-Wilhelm, Anna Sabina's brother, for his loyal services in the army Sponeck was the name of a castle situated on the banks of the Rhine in the region of Breisgau and was a dependency of Montbéliard

Johann Ludwig von Sandersleben, a gentleman of his suite. During the first years of this union two sons were born who bore the name of Sandersleben. In 1701 the husband, having doubts on the paternity of his offspring, and not without justification, obtained a divorce. Leopold-Eberhard legitimized Henrietta-Edwiga's two eldest sons, adopted the two younger, gave all these bastards the name of Sandersleben, brought them back to Montbéliard, and presented them with estates in the County of Coligny.[1] The Countess of Sponeck's patience was now at an end. After resorting to reproaches which merely irritated and soured her husband, she retired to her own apartments and refused to share her life with this prince who was devoid of all principles and whose mistaken ideas from the Koran had obviously turned his head. Finally, treated with almost unparalleled insolence, she recovered her dignity and banished from her presence at the first opportunity these contemptible women, the cause of her misfortunes. The same evening she asked permission to leave the court with her children and to live in future far from those who had insulted her. Leopold-Eberhard agreed and they separated by mutual consent in 1709. He gave her for her lifetime the enjoyment of the Castle of Héricourt and its dependent lands, rights and revenue (Mme d'Oberkirch).[2] The Countess of Sponeck was 'much beloved in Montbéliard. The entire court escorted her to her new domain—forty young horsemen from the most honourable families in the town, including the Prince of Montbéliard-Oels, Leopold-Eberhard's own brother-in-law. This incident aroused great rage among her enemies, Henrietta Edwiga nearly suffocated with rage' (Mme d'Oberkirch).

Suddenly, at the end of 1709, Henrietta Edwiga, the favourite of the moment, died. Leopold-Eberhard, recovering swiftly from the tragedy, conceived a great passion for Elizabeth Charlotte, the last member of the de l'Espérance family. 'She was a small,

[1] For his two adopted children the Duke obtained French naturalization from Louis XV—the domain of Coligny being on French soil. The eldest received the County of Coligny in Burgundy, the others were given Baldenheim and other Alsatian fiefs. The former took the name of Sandersleben-Coligny and the latter de l'Espérance-Coligny.

[2] The property of Héricourt is a mile and a half from Montbéliard.

dainty, charming creature, gay, frivolous and carefree, she lived entirely for pleasure. She sang and danced from morning to night and had not an iota of sense in her head' (Mme d'Oberkirch).

This new adventure was to embroil the Duke further than he had anticipated. Five years sufficed for the new favourite to gain complete control over her lover and the moment arrived when, in order to obtain legitimacy for her children, she insisted on no less than marriage. The Duke, completely outwitted, agreed to the ultimatum and on the 6th October 1714 published his divorce 'on the grounds of incompatibility of temper' with Anna Sabina, whom he now called his 'widow'. On the 15th April 1718, in a room at the Montéliard palace, he morganatically married Elizabeth Charlotte de l'Espérance, named in the marriage lines as 'my reigning spouse'.[1] Anna Sabina only learned this news, which had long been kept secret, on her return from a journey to Denmark where she had visited her brother Sponeck recently appointed general and Governor of Copenhagen.

It now remained for Leopold-Eberhard to ensure the future of the five children he had by this new wife—two others were to be born later—and to arrange the civic status of the son and daughter of his first marriage. He was most punctilious in legitimizing Anna Sabina's two bastards, and even more so when it came to the progeny he had heaped upon Elizabeth Charlotte.

He thought that he had found a clever scheme to achieve the required results. Approaching his relation, Eberhard-Ludwig of Wurttemberg, the lover of the Gravenitz, he offered him the succession of the County of Montbéliard in exchange for a recognition of the legitimacy of all the fruits of his adultery. The two cousins met at Wildbad on the 18th May 1715. The Duke of Wurttemberg insisted upon the forfeiture of any rights to paternal heritage for the three sets of natural children: those of Countess Sponeck, those of Henrietta Edwiga and those of Elizabeth Charlotte, in

[1] In the divorce document Leopold-Eberhard granted to his ex-wife the Chateau de Blamont, the surrounding lands and a pension of 4,000 livres. In the event of Sabina remarrying, the gift of Blamont was revoked and the pension reduced to 2,000 livres. The repudiated wife continued to live in complete retirement at Héricourt, where she died in 1735.

consideration of which he offered them a joint revenue of 12,000 florins and agreed that an attempt should be made to obtain for them the title of Counts of the Empire.

A treaty to this effect signed in May by the contracting parties was ratified in September. Then in October, as an extra precaution, young Sponeck was summoned to Ludwigsburg to guarantee under oath the execution of the contract.

Leopold-Eberhard, satisfied that by this treaty he had ensured the future of his eleven children, now lived surrounded by his heterogeneous family in the palace of Montbéliard. This medieval manor built at the edge of an escarpment had been half-demolished in 1677 on the orders of Louis XIV; its far from comfortable rooms were heated by tall German stoves.

His court was undistinguished and only a desire to be surrounded by a host of courtiers accounts for the great number of high dignitaries it comprised.[1] At table, if we are to believe certain household accounts, an extraordinary number of dishes were served.[2] Occasionally he went out at night on escapades, finding his pleasure in thrashing the guard or the passers-by. His favourite pastime, however, remained the chase.

Despite his outward serenity, the Prince lived rather a hectic existence. He was surrounded by a host of intrigues. No one dreamed of according the least value to the Wildbad Treaty and everyone was convinced that both the Sponeck and the de l'Espérance children had not lost their rights to their paternal heritage. Tragedy mingled with comedy, for there was even men-

[1] In the Prince's service we find a Frenchman, the Comte de la Verne, who on return from a mission abroad imitated his master's cynicism and did not fear to add as a postscript to his travel expense account: 'for gambling and girls, whatever figure your Serene Highness thinks fit.' (Duvernoy.)

[2] The expenses of the table between 1st September 1720 and 1st Janary 1st 1721 amounted to nearly 4,000 livres, a sum which will seem quite reasonable when we consider that, over this period, were delivered to the royal kitchens: '8,700 lb. of meat and venison, 54 fat pigs, 91 hams, 30 sucking pigs, 1,224 lb. of fish, 118 hares, 1,400 head of game, 1,400 head of poultry, geese, turkeys, chickens, etc.' In September 1720 the Prince fed 7,700 people at his court, in October 2,800, in November 3,500, etc. (National Archives, Montbeliard K. 1775.)

tion of attempted poisonings by one or other of the mothers of their rivals' children.

To bring a little order into this confusion and to reconcile at least four of his bastards, Leopold-Eberhard found a solution which can be considered the epitome of his Moslem fanaticism: he decided, in accordance with 'the excellent Persian custom' to celebrate in his family a double incestuous marriage In February 1719 was announced the marriage of Leopold, Count Sponeck, son of the Duke and Anna Sabina, to Charlotte, Countess of Coligny, named in the marriage contract 'daughter of the noble, Sandersleben' but in fact the daughter of the Duke and Henrietta Edwiga. On the following 31st August a second marriage was announced—if one can call it a marriage—between Karl-Leopold, Count of Coligny, son of the same Henrietta Edwiga, to Eberhardine von Sponeck, daughter of Anna Sabina [1]

As a result of these complicated marriages, the Prince, father of the four young people, became at the same time the father-in-law of two of his children . . . According to Saint Simon, 'he gave his affection to the first of these strange couples, assuring them as far as possible of the succession, and recognising them as the future sovereigns All manner of roguery and falsification of the most complicated nature were employed to support the validity of these pretended marriages and to legitimise both the Sponecks, as issue of the one, and the de l'Espérances the issue of the other '

One can envisage the scandal provoked by this double marriage Anna Sabina rebelled when she learned of the marriage of her two children to her husband's bastards The country was infuriated by the cynical immorality of its sovereign. The news spread to Wurttemberg where Duke Eberhard-Ludwig protested vehemently against this manœuvre which was a breach of the recently concluded family pact. He insisted that the newly married couples should be deprived of the princely rank accorded them in such a brazen manner and in violation of the document signed at Wildbad. Leopold-Eberhard refused to be defeated He embarked upon a campaign, which only death was to interrupt, with

[1] This particular couple has no history The wife went mad shortly after her marriage and was sent to an asylum The husband disappeared

the object of obtaining official sanction to the rights of succession of his Sponeck children After furnishing legal proof of the legality of his marriage to Anna Sabina, and the legitimacy of the children born in wedlock, he resolutely confirmed the eldest in his hereditary title of Prince of Montbéliard. In 1719 he went to Versailles, hoping to win the support of France in obtaining an annulment of the Treaty of Wildbad, or at least, in event of his failure, in ensuring his son a reasonable fortune The Regent refused to arbitrate on the pretext that it was not his affair, and asked the Imperial Aulic Council for a decision After eight months of fruitless effort Leopold-Eberhard left Paris with the jeers of the public ringing in his ears.

In November 1721 the Aulic Council annulled the titles which Sponeck had assumed and 'forbade the burghers of Montbéliard and the inhabitants of the County to recognise any of Leopold-Eberhard's children'

A new decree by this Council, dated the 8th April 1723, maintained that 'all the children, those of Anna Sabina Hedwiger and Elizabeth Charlotte de l'Espérance, were unfit to assume their father's dignity', the same applying to the children of Henrietta Edwiga declared by the Duke, their father, 'to be natural children', and, finally, that the Wurttemberg branch 'was the sole heir to Montbéliard' (Mme d'Oberkirch) Leopold-Eberhard opposed this decision He sent his son Sponeck to Vienna to defend his claims, but the Emperor refused to receive him except as a private individual

The unfortunate plaintiff had not long returned to Montbéliard when in 1723 his father, whose health had been undermined by his disorderly life, had a stroke during a ball given for his illegitimate children He was fifty-three He lingered for three weeks during which his wife, Anna Sabina, hastened from Héricourt and, forgetting her resentment, nursed him with the most touching care, while Elizabeth Charlotte disappeared, abandoning the man whom she, too, called her husband.[1] Some maintained

[1] She retired to Clairval in France and died in Alsace in 1731 Her sons bore the name of de l'Espérance In 1758 they relinquished their French properties and all their claims to the titles and arms of the

that the Prince died in poverty, others, like Saint Simon, that he left a great deal of cash and precious stones He had to be buried secretly The scandals which had been a feature of his reign had aroused a sullen hatred among his subjects. It was feared that the coffin would be desecrated

The day after his cousin's death Duke Eberhard-Ludwig of Wurttemberg prepared, in accordance with the Wildbad Treaty, to take possession of the County of Montbéliard He immediately appointed as governor his chief minister, the Count von Gravenitz, the brother of the favourite who was at the height of her power The Count of Sponeck tried to resist He seized the keys to the city and the Schloss and took oaths of fidelity from his subjects A few councillors and a group of burghers at first declared themselves to be his partisans but abandoned him in a cowardly manner as soon as his star seemed to be on the wane Sponeck made a last protest to the Emperor against what he considered to be spoliation His letters were 'returned to him with the arms of his seal and his signature cancelled' (Saint-Simon) At this moment the sons of Henrietta Edwiga de l'Espérance entered the lists, 'trying to exclude the Sponecks and to pose as the legitimate heirs' (*idem*). The Emperor, in a rage, declared all Leopold-Eberhard's children bastards without exception, and forbade them 'to bear the names and arms of Wurttemberg and the title of Montbéliard' (*idem*).

Finally French troops, under General de Montigny, were ordered to put an end to the matter They laid siege to the town and the castle of Montbéliard Sponeck was forced to capitulate. Held prisoner for some time, he was finally allowed to retire to Alsace After the flight of Leopold-Eberhard's progeny it was discovered that all the jewels and objects of value mentioned in the dead man's inventory had disappeared from the palace, 'everything having been carried off by the wives and children of the late Duke'[1]

princes of Montbéliard in exchange for a pension The eldest took the name of Comte de Hornberg, the second, after a life of debauch, went mad, the youngest served in the French Army

[1] National Archives, Montbeliard K 1775

In spite of his setbacks, Sponeck refused to consider the cause irrevocably lost. In 1735 he went to Paris in an attempt to obtain a revocation of the Imperial sentence from the King of France. The Parlement, 'having no power over a German', prolonged the trial indefinitely 'in order to amuse the Emperor', who showed himself to be intractable The case was finally heard before the Paris courts on the 23rd June 1735 According to Saint-Simon, Sponeck was treated 'even worse' Although the legitimacy of his birth was not questioned, his right to the Montbéliard inheritance was seriously contested

Sponeck and his wife, 'proved also to be his sister' according to Saint-Simon, lived in Paris where they abjured the Protestant faith in the archiepiscopal chapel For this ceremony they had prevailed upon the Duc de Luynes and the Princesse de Carignan to be their godparents The neophytes, concludes Saint-Simon, 'did not stir from Saint-Sulpice, the Jesuits and all the fashionable pious haunts They were saints, despite their incest and their desire to expropriate the property of others ' The de Rohan family took up their cause in the hope of procuring the hand of the Sponeck son for one of their daughters, who would thus acquire the rank of a foreign princess The Sponeck couple were very well received by the French nobility 'He had a name and was wealthy. People did not inquire too closely into their origins' (Saint-Simon)

The result of the trial, which lasted until 1740, was disastrous and 'cast this infamous rabble back into the oblivion from which it should never have emerged' (Saint-Simon) On the 24th April of the same year, the French court, anxious to appease the Emperor, launched a general attack upon Sponeck 'The misery of the vanquished and of their protectors was great' (Saint-Simon). Karl-Eugen, at this time ruling Duke of Wurttemberg, came to Versailles in 1748 to thank Louis XV for the moral support which he had given him in the question of the Montbéliard succession.

The following year Sponeck's adventurous career finished in a tragic manner when he broke his neck on the road from Paris to Versailles His wife, with great impertinence, although she no longer had the right to the name of Princesse de Montbéliard

appared in public with the full arms of Wurttemberg on her carriage 'She continued,' says Saint-Simon, 'to flaunt herself brazenly everywhere with a pair of breasts as big as drums which, in spite of her piety, she did not bother to hide '

Duke Eberhard-Ludwig of Wurttemberg paid several visits to the County with which he had been officially invested His successor Duke Karl-Alexander lost the habit of residing there In 1769 the eldest son of the latter, Karl-Eugen, entrusted the government of the principality to his younger brother Friedrich-Eugen, who held the appointment for twenty years Friedrich-Eugen led the frugal existence of a country squire at Montbéliard He brought life and prosperity to the County, and was benevolent to his subjects, who adored him [1]

A taste for the arts which had been dormant in the region seems to have been awakened under the Princess, *née* Brandenburg-Schwedt, Frederick the Great's niece She herself was an artist and painter with a certain talent

At the outset the Prince was obliged to install himself in a villa built in 1751 by Baron Gemmingen, this was temporarily put at his disposal until the work on the palace should be completed Several of the picturesque towers of the medieval building which had served as a court for the sovereigns of the country were destroyed, but the old bastions flanking the new castle were preserved The architecture is rather cold and can still be seen today.

The Princes of Montbéliard had never dreamed of having a country house. In 1770 Friedrich-Eugen decided to build one He chose Étupes, three miles east of Montbéliard and charmingly situated in fields and willow groves, through which ran a little stream The plans were drawn up in Stuttgart,[2] and the Prince

[1] A war wound forced Friedrich-Eugen to travel only in his carriage The good folk of Montbéliard respectfully saluted the Prince's carriage as soon as they saw it appear, whether it was occupied or empty

[2] It is probable that La Guépière, who as we have seen built so many palaces in Wurttemberg, had a hand in the plans of Étupes In Montbéliard he is known to have built the Rathaus With the Church of Saint Martin it adorns the present square, which has virtually remained unchanged

entrusted the work to the architect Morel The castle, built in less than a year according to contemporary documents, seems to have been lacking in accommodation and style. The main building with a bare nine windows contained the reception rooms The Entrance Court was framed by two huge wings, one of which contained a long gallery aping Versailles, and the other a small theatre [1]

The interior decoration, carried out too hastily, was unpretentious The appointments remained modest until 1776, the year Friedrich-Eugen married his daughter Dorothea to the Tsarevitch, the future Paul I, an epileptic who, when he was on the point of becoming reconciled with France, was assassinated in 1801 [2]

This unexpected marriage suddenly brought wealth to the Prince's family which, on the day of the ceremony, received from Catherine the Great a revenue of 60,000 livres and numerous presents of all kinds

The gardens of Étupes, rather restricted in size, soon became as famous as those of Mortefontaine, Ermenonville or Méréville [3] They were terraced and their design was a combination of the French style and the new English fashion The rather puerile sentimentality of the period, which often exceeded the bounds of good taste, insisted that they should be dotted with various structures and traversed by brooks trickling in cascades beneath Chinese bridges At the side of an old summer-house built by Leopold-

[1] In 1802 the right wing still existed almost intact The rest of the building had fallen in ruins

[2] Princess Dorothea had originally been betrothed to the eldest son of the Landgrave of Hesse-Darmstadt For political reasons Frederick II forced the fiancé to stand down in favour of the Russian Tsarevitch Dorothea, who became Tsarina in 1796 under the title Maria Fedorovna, was the mother of the Emperor Alexander I, Napoleon's enemy

[3] Cf the work of Kraft *Plans des plus beaux jardins d'Angleterre, de France et d'Allemagne*, Strasbourg, 1809 According to this author, the architect Kléber had apparently been ordered to carry out the plans furnished by the Prince for the gardens of Étupes Kléber, a pupil of Chalgrin, was at the time Inspector of Public Buildings at Belfort Prior to 1792, the year he joined the Revolutionary armies, nothing pointed to the fact that this modest architect would rise to such heights in the military profession

Eberhard and known as the Tower because of its curious winding staircase, now stood an elegant villa surrounded by lawns of flowers, the Princess's favourite retreat, the woodcutter's hut, rustic in appearance but full of valuable furniture from Paris, the dairy farm in the form of a Swiss chalet; a temple of Flora with rose trellises and a tall column dedicated 'to the Absent', a vast orangery, said to be one of the finest in Europe and which, on occasion, could be transformed into a theatre; an aviary full of rare birds, a grotto whose coloured crystal stalactites took on a fairy-like quality when illuminated, and a maze reached by a triumphal arch made of Roman ruins discovered nearby at Mandeur Finally, perched on a steep rock opposite the castle, the anchorites' hermitage where Friedrich-Eugen studied his Plutarch [1]

In the immediate neighbourhood of Étupes on the Delle road near Exincourt was another small country villa called 'Les Rêveries' built by the Princess It consisted of a salon and two simply decorated boudoirs whose windows opened on to gardens full of flowers and bushes, relieved by statues and vases. They have all disappeared.

At Étupes, the court of Friedrich-Eugen, despite his vast retinue of butlers, couriers, trumpeters, and a small, well-drilled guard, remained intimate and exempt from etiquette [2] Friedrich-Eugen, father of ten children, seemed to have been mainly preoccupied in educating this large progeny He corresponded with Jean-Jacques Rousseau, whose principles for teaching children had been adopted throughout Europe Among the replies which the author of *Émile* addressed to the Prince is the famous letter whose opening sentence is worth quoting

> 'Were I unfortunate enough to have been born a Prince, to be fettered by my status and forced to have a retinue, a suite and servants, that is to say, masters, and that nevertheless, I had a sufficiently elevated soul to wish to be a man despite my rank,

[1] Dr Berdot *Voyage de Montbéliard à Potsdam*, 1775

[2] The accounts of the Court of Montbéliard never mention tobacco as an item It was probably forbidden to smoke or to take snuff in the castle Nor is there any mention of soap Did they wash? Possibly But then only the tips of their fingers! (National Archives, Montbéliard K 1775)

a wish to fulfil the great duties of father, husband and citizen of the human republic, I should soon feel great difficulties in reconciling all this, particularly in educating my children to the state ordained for them by nature, despite that which they have among their peers ’

The Prince's entourage was composed of serious-minded, cautious, austere and somewhat boring people. The philosophers, the ancient and the very modern historians were read a great deal. Great interest was taken in new discoveries, such as Mesmer's magnetism and the Montgolfier brothers 'attempts to fly in balloons However, the season at Étupes always became more animated on the visit of some person of mark the Emperor Joseph II; Karl-Eugen of Wurttemberg and his wife the Countess of Hohenheim, who stayed there for four months in 1771, the Elector of Cologne, Prince Henry of Prussia, Frederick II's brother, the Prince of Hesse, the Duke of Brunswick, the Margrave of Ansbach with his mistress Lady Craven, and many others.

In August 1782 Friedrich-Eugen received his daughter and son-in-law, the Tsarevitch Paul For this sensational occasion the tables of the palace were laden with victuals requisitioned in haste from all parts of the country A series of fêtes offered to the Imperial couple occupy many pages in the *Mémoires* of Mme d'Oberkirch

At Étupes, scholars and famous literary men were assured of a warm welcome, and included Lavater, the Abbé Raynal and Dr Tronchin of Geneva La Harpe stayed there frequently but his rather too obvious vanity and caustic wit were not found particularly agreeable by this peaceful little court [1] The Chevalier Florian, on the contrary, was very popular 'He was an amusing, very gay man from Languedoc who could tell a racy story He was

[1] A few verses addressed by La Harpe in 1781 to their Serene Royal Highnesses at Étupes reflect the patriarchal life at the Court of Montbeliard

Que ces lieux fortunés ont des maîtres aimables!
Quel spectacle nouveau! J'ai vu, dans ce séjour,
Le bonheur que l'on croit étranger à la cour
Et les antiques mœurs que l'on traite de fables
Que la simplicité sied bien à la grandeur! .

short and stocky with a big round head and looked a trifle common.' The gentle, gallant poet recited his graceful verses to the court and his sentimental writings were a pleasant contrast to the philosophical theories which had recently come from France and were considered subversive.

Then the revolutionary era arrived. A few days after the taking of the Bastille, the population of Montbéliard took refuge in the capital to make an armed stand against French patriots. A few *émigrés* entered the region and, not feeling that they were in a foreign country, went straight through. The Marquise de Lage and young Polastron, who accompanied her, were mistaken for the Queen and the Dauphin. As soon as the Princess of Montbéliard was informed of their arrival she sent squires and chamberlains to offer them the hospitality of her castle.[1]

In April 1792, Friedrich-Eugen, terrified by the turn of events in France, sent his fortune and his most precious furniture to Wurttemberg for safe custody. As soon as he learned of the disastrous flight to Varennes he decided to return to his own country, to the despair of a population which loved its princes and feared nothing so much as a change of ruler or of policy. Events were not long delayed. In September 4,000 French troops entered Montbéliard armed with pitchforks and took the garrison prisoner. Officers from Belfort proclaimed that 'all peoples who fought against slavery would receive help from France.' On the 10th October 1793 appeared the People's Representative, Bernard de Saintes, sent by the Convention to Montbéliard to establish French law in the country. His first visit was to the mayor, to whom he made a brief speech: 'I bring you liberty,' he declared. 'You are wrong,' replied that worthy man. 'We have known liberty for longer than you have, and a liberty as complete as possible. It has been one of the virtues of our princes. We feel nothing except gratitude for them.' 'Not a word more,' said the representative, 'my cannon are outside.'[2]

[1] Marquise de Lage. *Souvenirs*.

[2] The guillotine claimed no victims in Montbéliard. According to local chronicles a cat was guillotined to ensure that the instrument was in working order and to intimidate the population by the sight of blood.

The local revolutionary party, which grew more and more threatening, insisted that trees of liberty should be planted by the townsmen, apprentice *sans-culottes* who felt little enthusiasm for the new gospel Finally, it imposed French law on the County of Montbéliard which, cut off from Wurttemberg, was a few years later attached to France by the Treaty of Lunéville (1801). Thus what was annexation pure and simple became an accomplished fact, 'it was the end of a county which had continued as an independent state for more than 750 years' (Mme d'Oberkirch) The Revolution, considering Friedrich-Eugen as an *emigré*, confiscated and nationalized all his domains The little furniture which still remained in the castles of Montbéliard and Étupes was put up to auction in December 1793, or burnt on the orders of Bernard de Saintes. All that survived the disaster was a portrait of Friedrich-Eugen which is in the city museum today

Étupes was bought for 25,000 livres by a Belfort Jew named Dreyfus who installed a cloth factory in it only to demolish it on the orders of the Convention which had just decreed the destruction of all buildings that recalled the loathed régime With the materials from it, houses were built in the neighbourhood and gradually all trace vanished of the charming domain which today is marked only by a tumbledown wall

Bibliography

Württemberg

CONTEMPORARY WORKS

BERDOT, DR *Voyage de Montbéliard à Potsdam*, 1775, pub by Max Dufner Grief, Breslau, 1936

BIELEFELD, BARON DE *Lettres familières*, 1763

BURNEY. *The present state of music in Germany . . .*, 1773

BUSCHING *Beitrage zu der Lebensgeschichte denkwurdiger Personen*, Part IV Extracts from the *Journal de Lynar*, coll. by Gensau.

BUSWINGHAUSEN-WALLMERODE, FREIHERR VON *Uber die Landreise des Herzogs Karl-Eugen in der Zeit 1767–1772*, edited by I von Ziegesar, Stuttgart, 1911

GOETHE *Journal*

HEIDELHOFF, VICTOR *Ansichten der Herzogl Wurttembergischen Landsitze Hohenheim*, 37 plates, Nuremberg, 1795

HOHENHEIM, FRANCISCA VON *Journal*, pub by Oslerberg, Stuttgart, 1913.

KERNER, JUSTINUS· *Bilder aus meiner Knabenzeit*, work pub by his daughter, Marie Niethemmer

KEYSSLER. *Reisen durch Deutschland*, 1729–30

LANG, RITTER VON *Skizzen aus meinem Leben*, 1842.

LA TOURNELLE· *Mémoires inédits*, MSS No 29,603, Bibl Saint-Fargeau, Paris

LIEBERT, ABBÉ *Voyage pittoresque sur le Rhin*, 1807

MAUBERT DE GOUVEST *La Pure Vérité; Lettres et Mémoires sur le duché de Wurtemberg*, Augsburg, 1765

MONTESQUIEU· *Voyages*, 1728–9

MOSER, J -J · *Patriotisches Archiv*

OBERKIRCH, BARONNE D'. *Mémoires.*

PFAU, HOFRATH *Geschichte der alemanishen Hofe*

RIEDER *Geographie und Statistik Wurttembergs*, 1789

RISBECK *Lettres d'un voyageur français en Allemagne*, 1785

SCHONHAAR, W. F *Ausfuhrliche Beschreibung des zu Bayreuth im Sept. 1748 Beilagers*, Stuttgart, 1749 (Description of Karl-Eugen's marriage feast)

SPITTLER *Geschichte der Grafen und Herzoge von Wurttemberg. Urkunden zur neuesten Wurttembergischen Geschichte*, 1791.

STREICHER, ANDREAS *La fuite de Schiller de Stuttgart et son séjour à Mannheim de 1782 à 1785*, Berlin, 1905.

WEBER, C JUL *Deutschland, oder Briefe eines in Deutschland Reisenden*, 4 vols, Stuttgart, 1834.

WIMPFFEN, FR LOUIS BARON DE *Mémoires*, Paris, 1788

Vie parisienne des princes de Wurtemberg-Montbéliard à Paris au XVIII^e siècle, MSS. No 12,756, Bibl. Saint-Fargeau, Paris, pub by G. Cucuel, Montbéliard, 1912

Hoch Furstlichen Beilagers Carls, Herzog zu Wurttemberg und Furstin Frederica Elisabetha Sophiae, Jena, 1749. (Celebrations on the occasion of Karl-Eugen's marriage)

MODERN WORKS

BAC, FERDINAND *La vieille Allemagne*, vol I, 1906

BACH and LOTTER *Bilder aus dem alten Stuttgart*

BELLERMANN *Vie de Schiller*

BELSCHNER, C. *Geschichte von Wurttemberg*, Stuttgart, 1902

BOEHN, MAX VON· *Deutschland im 18ten Jahrhundert*, Berlin.

BRACHTVOGEL *Schubart und seine Zeitgenossen*

CAPON. *Les Vestris*, Paris, 1908

DEHIO· *Geschichte der Kunst*

DUSSIEUX, L *Les artistes français à l'étranger*, Paris, 1876

ELVENSPOEK· *Der Jude Suss Oppenheimer*, Stuttgart, 1926

FASS, K . *Geschichte der Furstenhauser und Landes Wurttemberg*

FEUCHTWANGER *Jud Suss*, Paris, 1929

FIECHTER, ERNST *Schloss Ludwigsburg*, with 60 illustrations by Otto Lossen, Stuttgart, 1924.

FRIEDEL· *Kulturgeschichte der Neuzeit*, Munich, 1928.

GRADMANN, EUG *Kunst Wanderungen in Wurttemberg*, 148 illustrations, Stuttgart, 1814

HAENLE *Wurttembergische Lustschlosser*, 2 vols, 1847

HARCOURT, BER D'. *La jeunesse de Schiller*, Paris, 1928.
HAUFF *Der Jude Suss Oppenheimer*
KIRCK. *Rococo und Louis XVI aus Schwaben und der Schweiz*
KRAUSS, R.. *Das Stuttgarter Hoftheater von den altesten Zeiten bis zur Gegenwart*, Stuttgart, 1908
LANG, PAUL *Durch Schwaben*, Zurich, n d.
LELY, E . *Herzog Karl von Wurttemberg und Franciska von Hohenheim.*
MARMIER, XAVIER *Voyage en Allemagne*, 1858
MOZIN *Les charmes du Wurtemberg.*
PAHL, GOTTFRIED *Histoire du Wurtemberg*, Stuttgart, 1827
ROSSEL, FRED.· *Voltaire créancier du Wurtemberg*, 1909
SACKMANN, PAUL *Eine ungedruckte Voltaire Korrespondenz*, Stuttgart, 1899, 162 letters of Voltaire in Stuttgart Library
SCHERR, JOH *Deutsche Kultur*, Leipzig, 1887
SCHMIDT and STAEHELIN, G. *Wurttembergische Furstensitze*, with a preface by Julius Baum Collection *Die Architektonische Auslese*, Stuttgart, 1913
SCHUBART, MLLE *Schubarts Leben*, pub by Strauss
SEYTTER, WILH. *Unser Stuttgart*, 1904
SITTARD, JOS *Zur Geschichte der Musik und des Theaters am Wurttembergischen Hofe*, 2 vols, Stuttgart, 1891
WIDMANN, WILLY. *Stuttgart und Umgebung*, Stuttgart, 1896
ZIMMER, JOS *Suss Oppenheimer*, Stuttgart, 1874
Karl Eugen von Wurttemberg und seine Zeit, from *Bulletin de la Société d'Histoire et des Antiquités du Wurtemberg*, 1907, 2 vols, Esslingen
Chronik der Kgl Haupt und Residenzstadt, Stuttgart, 1898
Konigreich Wurttemberg, pub by Emile Hausselmann, Stuttgart, 1896

Montbéliard

BARBIER· *Journal.*

BERDOT, DR *Voyage de Montbéliard à Potsdam en 1775*, pub by Max Dufner-Grief from a MS. in the possession of the doctor's family, Breslau, 1936

COCHIN, HENRI *Œuvres complètes*, 1751–7, vol. II *Procès Sponeck*

Vie parisienne des princes de Wurtemberg-Montbéliard au XVIII^e siècle, MSS No 12,756, Bibliothèque Saint-Fargeau, Paris, pub by G Cucuel, Monbéliard, 1912

DANGEAU *Journal*

DUVERNOY *Montbéliard au XVIII^e siècle*, from *Mémoires de la Société d'Emulation de Montbéliard*, vol. XXII, 1891

HENRI-ROSIER, MME MARG *En Franche-Comté*

KRAFT *Plans des plus beaux jardins pittoresques d'Angleterre, de France et d'Allemagne*, Strasbourg, 1809

LODS *Un conventionnel en mission, Bernard de Saintes à Montbéliard*, from *Mémoires de la Société d'Emulation de Montbéliard*, 1887.

MORERI *Dictionnaire*

OBERKIRCH, BARONNE D' *Mémoires.*

ROY *Notice historique sur le pays de Montbéliard à l'époque de la Révolution*, from *Mémoires de la Société d'Emulation de Montbéliard*, 1880

SAHLER, LÉON *Notes sur Montbéliard*, Paris, 1905

Portraits Montbéliardais.

Montbéliard à table

SAINT-SIMON *Mémoires*

SCHANZENBACH, OTTO *Mompelgards schone Tage*, 1887.

TUEFFERD, P -E. *Histoire des comtes souverains de Montbéliard*

Notice historique sur Montbéliard et les environs, from *Mémoires de la Société d'Emulation de Montbéliard*, 1868.

General

EIGHTEENTH-CENTURY WORKS

BERNOUILLI, J *Reise Archiv, Journal de voyage*, Coblenz, 1769

Lettres sur différents sujets, voyage en Allemagne, Suisse, France . en 1774–5, 3 vols, 1777

BIELFFELD, BARON DE *Progrès des Allemands dans les Sciences et les Arts*, Amsterdam, 1752

Lettres familières, 1763.

BJORNSTAHL, JAC.-JOS. *Journal de voyage en France, Italie, Suisse*, Stockholm, 1778

BLAINVILLE, DE *Travels through Holland, Germany . . , journeys made in 1705*, 3 vols, 1757

BLONDEL, J.-FR *Cours d'architecture*, cont by Patte, Paris, 1773

BŒTTIGER *Reise Tagebuch*

BOSWELL, JAMES *Private Papers* (18 vols), vol III *Journal of a Tour through the courts of Germany*, pub U S A , 1928

BURNEY *Musical Tour, or Present state of music in France, Germany and Italy*, London, 1772

CARACCIOLI, A DE *Paris, le modèle des nations étrangères ou l'Europe française*

Le voyage de la Raison en Europe, Compiègne, 1772

CASANOVA *Mémoires*, original ed pub by Laforgue, 1825, and edit de la Sirène, 1924

COLLINI *Lettres sur les Allemands*, 1790

COULANGES, DE *Mémoires*, Paris, 1829, containing *Voyage fait en Allemagne en 1657–8*

EICKEMEYER *Denkwurdigkeiten*

FREDERICK II *Œuvres complètes*, incl *Correspondances*, *Histoire de mon temps*, *Des Mœurs et des Coutumes sous la dynastie des Hohenzollern*, *Mémoires de la Maison de Brandebourg*, etc

GARAMPI, CARDINAL *Voyage en Allemagne, fait en 1769*, Rome, 1889

GLEICHEN, BARON DE *Souvenirs*, Paris, 1868

GUIBERT, C A. H *Journal d'un voyage en Allemagne en 1773*, Paris, 1803

HAXTHAUSEN *Mémoires*, 1710–25, MSS. from the Library of Dresden

HESS, LOUIS VON *Durchfluge durch Deutschland*, Hamburg, 1798.

JORDAN *Voyage historique de l'Europe*, vol VI *L'Allemagne*, 1696

KEYSSLER *Reise durch Deutschland, voyage fait en 1729–30*, Hanover, 1776

KLEINER, SALOMON *Recueil d'estampes d'après les châteaux de la famille Schonborn*, Augsburg, 1731.

KREBEL *Beschreibung der versehensten Reisen in europaischen Landern*, Frankfort, 1784

LANG, J -G (after) *Voyage sur le Rhin depuis Mayence jusqu'à Dusseldorf*, 1789

LANG, RITTER VON *Skizzen aus meinen Leben, meinen Reisen und meiner Zeit*, 2 vols, Brunswick, 1842

LEIZEWITZ, JOS *Tagebucher*

LIGNE, PRINCE DE *Lettres inédites du Prince de Ligne et de ses familiers*, Brussels, 1919

Mémoires, édit du Centenaire, 1914

LYNAR, GRAF VON *Reise Journal*, from the *Reisebeschreibung Archiv de Bernouilli*

MAUVILLON· *Lettres françaises et germaniques*, London, 1740.

MONTAGU, LADY MARY *Letters and works*, 2 vols, London, 1867

MONTESQUIEU *Voyage fait en 1728–9*, pub by Baron de Montesquieu, 2 vols, Bordeaux, 1894

MOORE, JOHN *View of society and manners in France, Germany* . . ., 1779

MORERI *Dictionnaire*.

MOSER, J -J *Deutsches Staatsrecht*.

Deutsches Staatsarchiv

MOSER, JUSTUS *Patriotische Phantasien*, 1774–86

Histoire du Wurtemberg

MOSER, K -F. *Deutsches Hofrecht*

Patriotisches Archiv, 1784–91

Neues Patriotisches Archiv, 1792–4.

NICOLAI· *Beschreibung einer Reise durch Deutschland und die Schweiz im Jahre 1781*, Berlin and Stettin, 1786

NOSTIZ, VON *Reise Journal*.

NUGENT, TH *Travels through Germany*, London, 1768.

Grand tour of Europe, 1778

OBERKIRCH, BARONNE D' *Mémoires*

ORLÉANS, DUCH D'· *Correspondance complète*, ed Brunet, 2 vols, 1885

Correspondance de la duchesse d'Orléans, pub Holland, trs. Jaeglé, 1890

POLLNITZ, BARON CH DE *Mémoires*, 4 vols, London, 1735.

Nouveaux Mémoires, 2 vols , Amsterdam, 1737

RABIOSUS, ANSELME *Kreuz- und Querzuge durch Deutschland*, 1778

RECKE, ELISE VON DER *Vor hundert Jahren*, cont Becker's *Reise durch Deutschland*, 1784–6, Stuttgart, n d

RISBECK, BARON VON *Briefe eines reisenden Franzosen uber Deutschland, an seinen Bruder in Paris*, 2 vols, 1783

SAINT-SIMON, DUC DE *Mémoires.*

SCHLOSSER, JOH -GEORG *Kleine Schriften*

SCHLOZER, AUG.-LOUIS *Briefwechsel*, 1776–82, vol XXVI

Staats Anzeigen, 1783–93

Allgemeines Staatsrecht.

STENGEL, BARON DE *Mémoires*

VOLTAIRE *Correspondance générale*

WILLE, J -G · *Journal*, 2 vols, 1857.

Deutschland im achtzehnten Jahrhundert, 2 vols, 1782

Periodicals

L'Année littéraire, 1754–90.

Mercure de France

Nouvelles de la République des Lettres et des Arts, 1779–87

ENGLISH AND FRENCH WORKS AFTER THE EIGHTEENTH CENTURY

AULNEAU *Le Rhin français.*

AUSTIN, MRS *Germany from 1760 to 1814*, London, 1854.

BAC, FERDINAND· *La vieille Allemagne.*

BOURDEAU· *L'Allemagne au XVIII^e siècle, Revue des Deux-Mondes*, 1st Aug 1866

BRUNOT, F. *Histoire de la langue française.*

COLOMBIER, DU. *L'art français dans les cours rhénanes*, Paris, 1930

CROUSLÉ· *Lessing et le goût français.*

DENIS *L'Allemagne, de 1789 à 1810*

DESNOIRESTERRES *Voltaire et la société française au XVIII^e siècle*, 8 vols, 1875

DUSSIEUX *Les artistes français à l'étranger*

HILDEBRANDT, KARL *Six lectures on the history of German thought*, London, 1880

JORET, CH. *Mélanges*

LEFÉBRE-SAINT-OGAN *Essai sur l'influence française*, 1894

LÉVY-BRUHL *L'Allemagne, il y a cent ans*

L'Allemagne depuis Leibniz

LIBERT, ABBÉ *Voyage pittoresque sur le Rhin* . , Frankfort, 1807

LOMBARD DE LANGRES *Des Sociétés secrètes en Allemagne*, Paris, 1819

MARMIER, XAV *Voyage pittoresque en Allemagne*, 1858

OLIVIER, J -J *Les comédiens français dans les cours d'Allemagne au XVIII^e siècle*, 4 vols, Paris, 1900–5

RAMBAUD *Les Français sur le Rhin.*

RÉAU, LOUIS *Histoire de l'expansion de l'art français*, 4 vols, Paris, 1924–33

L'Europe française, Paris, 1938

L'art français sur le Rhin au XVIII^e siècle, Paris, 1922

REYNAUD *Histoire générale de l'influence française en Allemagne*, Paris, 1914

SAGNAC *Le Rhin français pendant la Révolution et l'Empire*, Paris, 1917

SAYOUS *Les Français sur le Rhin pendant la Révolution et l'Empire*

Histoire de la littérature française à l'étranger, ou le XVIII^e siècle à l'étranger, 2 vols, 1861.

SCHERER, ED *Diderot*, 1880.

Melchior Grimm, 1887

TEXTE, J *Les relations littéraires de la France à l'étranger au XVIII^e siècle*, from *Histoire de la littérature française*, by Petit de Julleville, 1896

L'hégémonie littéraire de la France au XVIII^e siècle, from *Revue Universitaire*, Feb 1896

Voyage sur les bords du Rhin fait en 1817, trs from the English, Paris, 1818

GERMAN WORKS AFTER THE EIGHTEENTH CENTURY

BAUER, BRUNO *Geschichte der Politik, Kultur und Aufklarung*, 1843

BERGAUS, MAX. *Deutschland im 18 Jahrhundert*, 3 vols, Leipzig, 1880

BŒHN, MAX VON *Deutschland im 18 Jahrhundert*, Berlin, 1921
Die Mode, Menschen und Moden

CLEMEN *Die Kunstdenkmaler des Rheinprovinz* vol V, *Bonn*, vol. VII, *Cologne*, Dusseldorf

DAEHNE *Heroen in Négligé*, 1911

DEHIO, GEORG *Geschichte der deutschen Kunst*, Berlin-Leipzig, 1926
Handbuch der deutschen Kunstmaler, 5 vols, Berlin, 1905–12

DEVRIENT, EDW *Geschichte der deutschen Schauspielkunst*, 1830

DIEFFENBACH *Der franzosiche Einfluss in Deutschland unter Ludwig XIV*, 1891

DOHNE, R *Barock und Rococo Architektur*, 3 vols, Berlin, 1884–1891
Geschichte der deutschen Baukunst, Berlin, 1886

ENNEN *Frankreich und der Niederrhein*, 2 vols, 1855–6.

FEULNER, ADOLF *Skulptur und Malerei des XVIII Jahrhunderts in Deutschland*, Potsdam, 1929

FORSTER, F *Hofe und Cabinette Europas*

FORSTER, G · *Ansichten von Niederrhein*

FREUND, H *Aus der deutschen Gesellschaft des XVIII Jahrhunderts*, 1902

FREYTAG, GUST. *Bilder aus der deutschen Vergangenheit*, 4 vols, Leipzig, 1867.

FRIEDEL *Kulturgeschichte der Neuzeit*, Munich, 1928

GLEICHEN-RUSSWURM *Geschichte der europaischen Geselligkeit*, vol V, *Das galante Europa*, 1921
Aus den Wanderjahren eines frankischen Edelmannes

GŒKINGK *Journal von und fur Deutschland*

GOTHEIM, M.-L. *Geschichte der Gartenkunst*, 2 vols, Jena, 1914

GURLITT, CORNELIUS· *Geschichte des Barokstils und des Rococo in Deutschland,* Stuttgart, 1887–9.

HAUFLEIN, ADAL. VON *Die Frauen in der Geschichte des deutschen Geistlebens.*

HONNEGER *Kritische Geschichte des franzosichen Kultureinflusses in dem letzten Jahrhundert,* Berlin, 1875

HUTTIG *Geschichte des Gartenhaus,* Berlin, 1879

JACOBI *Europaisch-Genealogisches Handbuch* (Genealogy of the royal families)

JENISCH *Geist des XVIII Jahrhunderts.*

KAPP *Der Soldathandel deutscher Fursten nach Amerika,* Berlin, 1884

KRITZSCHMEIER· *Geschichte der Oper,* Leipzig, 1919

LAMBERT and STAHL *Architektur von 1750 zu 1850,* Berlin, 1903

Deutsche Residenzen und Garten des XVIII Jahrhunderts, 1909

LOHMEYER, KARL *J -Fr. Stengel,* Dusseldorf, 1911.

LORENZ, OTTOCAR *Genealogisches Handbuch der europaischen Staaten Geschichte,* Berlin, 1895

LUBKE-SEMRAN *Die Kunst der Barockzeit und des Rococo,* Stuttgart, 1905

MEYER *Hohenzollernische Forschungen,* Munich, 1893

NAUMANN, H and MULLER, G *Hofische Kultur,* 1929

PAHL, GOTFRIED *Denkwurdigkeiten.*

PFRTHES *Das deutsche Staatsleben vor der Revolution,* Hamburg-Gotha

Politische Zustande und Personen in Deutschland zur Zeit der franzosichen Herrschaft

PINDER, WILHELM *Deutscher Barock des XVIII Jahrhunderts,* Leipzig, 1929

PIOHLER, CAROLINE *Denkwurdigkeiten aus meinem Leben.*

POPP *Die Architektur der Barock-und-Rococozeit in Deutschland,* Stuttgart, 1912

RIEHL, W -H *Kulturstudien aus drei Jahrhunderten,* 3rd ed., 1903.

ROBITSCHEK, K.· *Kœnige in Unterhosen,* 1925

RÜBEL, RUDOLPH *Die Bautatigkeit*

RÜHS, FR *Historische Entwickelung des Einflusses Frankreichs und der Franzosen auf Deutschland und die Deutschen*, Berlin, 1815

SCHERR, JOH *Deutsche Kultur und Sittengeschichte*, Leipzig, 1887

SCHEUBE, H *Aus den Tagen unserer Grossvater*, Berlin, 1873.

SCHLOSSER *Geschichte des XVIII Jahrhunderts*

SCHMIDT, JUL : *Geschichte des geistlichen Lebens in Deutschland*, 2 vols, Brunswick, 1839.

SCHOPENHAUER, JOHANNA *Jugendleben und Wanderbilder*, 2 vols, Brunswick, 1839

SCHRAPPAU, A. *Grundriss der Forst- und Jagdgeschichte Deutschlands*, 1892.

SITTARD, JOS *Zur Geschichte der Musik und des Theaters am Wurttembergischen Hof*, 2 vols, Stuttgart, 1891

STEINHAUSEN *Geschichte der deutschen Kultur*

STERN, A *Der Einfluss der franzosichen Revolution auf das deutsche Geistleben*, Berlin, 1927

STERNBERG, VON *Beruhmte Frauen des XVIII Jahrhunderts*, Leipzig, 1855

SYBEL *L'Europe et la Révolution française*, trs by Mlle Dosquet, 6 vols, 1869–76

TURNIUS *Charactere und Bilder aus der galanten Welt*, 1923

Die gute alte Zeit, 1924

Salons, Bilder, Gesellschaft, Kultur aus funf Jahrhunderten, 1925

VEHSE *Geschichte der deutschen Hofe*, 44 vols, Hamburg, 1851–1859

WACKERNAGEL *Handbuch der Kunstwissenschaft*

Baukunst der XVII und XVIII Jahrhunderten in germanischen Landern, Akademische Athenaion, Potsdam, 1915.

WEBER, H *Geschichte der Oper in Deutschland*, Zurich, 1890.

WEBER, K.-JUL : *Deutschland, oder Briefe eines in Deutschland reisenden Deutschen*, 4 vols, Stuttgart, 1834.

WEBER, K VON *Aus vier Jahrhunderten*, Leipzig, 1857.

WENCK, WALDEMAR *Deutschland vor hundert Jahren*, 1887.

WENDE and HOCH *Magazin fur Geschichte und Statistik der Geistlichen Staaten Deutschlands*

Index